"बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सन्दर्भ में उदारीकरण नीति की उपादेयता"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डी० फिल० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

द्वारा

राजेश केसरी, एम०काम

निर्देशक
प्रो० के.एम. शर्मा

वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1999

वर दे, वीणावादिनी, वर दे !

अनुक्रमणिका

तालिकाओं की सूची

प्राक्कथन

अति प्राचीन काल मे भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व मे एक शक्तिशाली सुदृढ़ अर्थव्यवस्था का घटक रहा है। सिन्धु सभ्यता के ऐतिहासिक साक्ष्य यह सिद्ध करते है कि तत्कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था अधिशेष अर्थव्यवस्था थी परन्तु समय के काल चक्र से यह अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई और अपने विनाश को न बचा सकी।

इसी प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था मे तमाम उतार-चढाव के कई दौर आये और चले गये। ब्रिटिश आगमन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था एक स्वावलम्बी एव सुदृढ अर्थव्यवस्था के रूप मे विकसित थी। ब्रिटिशो के आगमन के पश्चात, निरन्तर शोषण के परिणाम स्वरूप यह अर्थव्यवस्था जीर्ण-क्षीर्ण अवस्था को प्राप्त होती रही, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात प० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व मे आधुनिक भारत के निर्माण की नींव विदेशी सहायता के आधार पर चहुमुखी विकास के उद्देश्य से रखी गयी। नेहरू जी के विचार महात्मा गॉधी से भिन्न रहते हुए भी भारी उद्योगो की स्थापना की रही है और इन भारी उद्योगो को स्थापित करने के लिये विदेशी पूॅजी का आगमन शुरू हुआ। पचवर्षीय योजनाओ के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रतिपादित किये जाने लगा।

हम यह स्पष्टतः कह सकते है कि वास्तविक रूप मे उदारीकरण की प्रक्रिया की नींव प० जवाहर लाल नेहरू ने रखी और 1991 मे तत्कालीन वित्त मत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने इसे पूर्णतया प्रदान कर दी। सन् 1991 कि उदारीकरण प्रक्रिया की सारे राजनैतिक दलो ने भर्त्सना करते हुए कहा कि डॉ० मनमोहन सिंह ने सारे निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक के दबाव में भारत को गिरवी रखने की प्रक्रिया है, परन्तु सारे राजनैतिक दलो ने किसी न किसी रूप में सत्ता प्राप्ति के बाद इस प्रक्रिया को अपनाये रखा और इसका विरोध सत्ता में रहते हुए नहीं किया। निष्पक्ष रूप से हम कह सकते है कि उदारीकरण प्रक्रिया वर्तमान भारत की आवश्यकता थी जिसको भारतीय शासन व्यवस्था ने अपनाया और विश्व अर्थव्यवस्था में अपनी भागीदारी सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। इन्हीं सब तथ्यो को ध्यान में रखते हुए शोध कार्य निम्नलिखित अध्यायों मे विभक्त कर अध्ययन किया गया है.-

प्रथम अध्याय मे भारत मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के शोध अध्ययन का उद्देश्य, विधि एवं सीमाओं का वर्णन किया गया है। जिसमे यह लिखा गया है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का भारत मे प्रवेश सन् 1498 ई० मे वास्कोडिगामा के भारत आगमन से शुरू होता है। इसके बाद पुर्तगाली, डच, अग्रेज, फ्रांसीसी कम्पनियो का आगमन भारत में हआ, लेकिन इनमें सबसे सफल अंग्रेजी कम्पनियाँ ही

हुई और भारत मे लगभग 150 वर्षो तक शासन करके भारत की आर्थिक, राजनैतिक एव प्रशासनिक अर्थव्यवस्थाओ को तहस-नहस कर दिया अर्थात हमारी अर्थव्यवस्था लगडी अर्थव्यवस्था बन गई। कहने का तात्पर्य यह है कि हम खडे होने का प्रयास करते रहे फिर भी हम खड़े नहीं हो पाये और लडखडाते हुए गिर जाते रहे। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात दुनिया के विभिन्न देशों के द्वारा हमारी लडखडाती हुई अर्थव्यवस्था को सहयोग प्राप्त होता रहा है, परन्तु पूर्ण विकसित अवस्था की प्राप्ति से हम दूर ही रहे। शोध अध्ययन मे जिसमे शोध के द्वारा यह जानकारी करने का प्रयास किया गया है कि विकासशील देश तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुराष्ट्रीय निगमो का क्या प्रभाव पड़ रहा है या पड सकता है, क्योकि वह एक महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर भारत का औद्योगिक एव आर्थिक विकास निर्भर करता है।

द्वितीय अध्याय मे उदारीकरण की आवश्यकता, औचित्य एव समीक्षा का वर्णन किया गया है, जिसमे यह दर्शाया गया है कि 'उदारीकरण की जरूरत'1985 मे ही महसूस होने लगी थी। जिसके कारण नई औद्योगिक नीति में बदलाव, व्यापार नीति मे परिवर्तन, प्रारक्षित विदेशी मुद्रा कोष मे वृद्धि, राजकोषीयघाटा, रूपये की चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता आदि के बारे मे विस्तृत जानकारियो का उल्लेख किया गया है, यही सुखद परिणाम है कि विश्व स्तर पर यूरोपीय साझा बाजार, यूरोपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र, नाफ्टा, आसियान, एशिया प्रशान्त क्षेत्र तथा दक्षेस के रूप मे प्रमुख आर्थिक मंच स्थापित हुए है जिससे आर्थिक उदारवाद तथा विश्वीकरण की अवधारणा फलीभूत होती नजर आने लगी है।

तृतीय अध्याय में बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की भूमिका का वर्णन किया गया है, जिसके अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय निगमो के कार्यक्षेत्र की सीमाओ को उल्लेख किया गया है। इसके अलावा भारत मे बहुराष्ट्रीय निगमो की शाखाओ एव विदेशी कम्पनियो द्वारा भारत से भेजी गयी राशियो का उल्लेख किया गया है।

चौथे अध्याय में बहुराष्ट्रीय कम्पनियो से आशय, उद्देश्य, गुण-दोष एव उसके प्रभावों का वर्णन किया गया है, जिसके अन्तर्गत शोध एवं विकास, विदेशी पूॅजी और तकनीक की आपूर्ति, औद्योगिक उत्पादन का व्यापक आधार, विपणन सम्बन्धी सुविधाऍ,सेवा क्षेत्र मे सहायता, गुणवत्ता में सुधार, मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों एवं रोजगार के उपलब्धियों का वर्णन किया गया है।

पॉचवे अध्याय में भारत मे विदेशी सहयोग एव उसके दुष्परिणामो का उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत विदेशी ऋण, विदेशी अनुदान और विदेशी निवेश का उल्लेख किया गया है और

इसके साथ-साथ सहायता देने वाले देशो के नामो के बारे मे भी बतलाया गया है। विदेशी निवेश मे वृद्धि करने के उद्देश्य से विदेशी निवेश नीति मे कई बार व्यापक परिवर्तन किये गये और इनकी सहायता से भारत मे बहुत सी परियोजनाए स्थापित की गयीं, जो आज भी सुचारू रूप से चल रही है।

छठवे अध्याय मे यूरोपीय समुदाय मे भारत की सभावनाओ को व्यक्त किया गया है, जिसके अन्तर्गत 'विश्व व्यापार सगठन' के द्वारा यूरोपीय समुदाय एक मजबूत व्यापार गुट के तौर पर उभरा है, जहॉ पर व्यापार क सभावनाओ के बढने के अच्छे अवसर दिखाई पड रहे है, यही यूरोप के पन्द्रह देशो ने अपनी सीमाऍ गिराकर अपनी आर्थिक और विकास से जुडी चिताओ को साझा कर लिया है।

सातवे अध्याय मे, बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के सफलताओ एव असफलताओ के आलोचनात्मक मूल्याकन का वर्णन किया गया है, जिसके अन्तर्गत द्वितीय विश्व युद्ध से लेकर अब तक की समस्त उपलब्धियो एवं उपलब्धियो मे कमियो को दर्शाया गया है और इसके अलावा समर्थक और विरोधी वर्ग के विचारो को प्रस्तुत करते हुए अपनी राय को भी प्रस्तुत किया गया है।

आठवे अध्याय मे, निष्कर्ष एव सुझावो का उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत सभी अध्यायो के विश्लेषणात्मक स्वरूप के अन्तिम सार को प्रस्तुत किया गया है और इसके अलावा लोगो के मन मे जो एक आम धारणा बन गई है कि ये कम्पनियॉ सिर्फ शोषण करती हैं, ऐसा पूर्णत सही नहीं है, आदि बातो का भी उल्लेख किया गया है।

साभारोक्ति :

प्रथमत· मैं अपने शोध निर्देशक उत्कृष्ट विद्वान वाणिज्य जगत के पुरोधा प्रो० के.एम शर्मा के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूॅ जिनके विशेष सहयोग एव पुत्रवत स्नेहशीष के कारण ही मैं अपना शोध कार्य सरलता पूर्वक सम्पादित कर सका।

मैं वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग के अधिष्ठाता प्रो० एस.पी. सिह का विशेष आभारी हूॅ जिन्होने विभिन्न प्रकार के सहयोग प्रदान कर मेरे शोधकार्य को सरल बनाया।

मैं वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग के अध्यक्ष प्रो० जगदीश प्रकाश का विशेष आभारी हूॅ जिन्होने मुझे शोध कार्य का अवसर प्रदान कर सहयोग प्रदान किया।

मै अपने गुरूजन वृन्द प्रो० पी सी शर्मा, प्रो० जे के जैन, डॉ० जगदीश नारायण मिश्र एव डॉ० प्रदीप जैन के प्रति विशेष आभारी हूँ जिन्होने समय-समय पर शोधकर्ता के प्रति उत्साह वर्धन कर मेरे शोधकार्य को सरल बनाया।

मै अपने माता-पिता का विशेष आभारी हूँ जिन्होने सदैव मुझे वात्सल्य स्नेह प्रदान करते हुए विभिन्न प्रकार का सहयोग प्रदान किया, जिससे मुझे शोध कार्य सम्पन्न करने मे सरलता का अनुभव हुआ। मै उनके चरणो मे कोटिश प्रणाम करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सदैव जन्म-जन्मान्तर तक इनकी छत्र-छाया प्राप्त होती रहे।

मै अपने चाचा जी (श्री लालजी केसरी) एव चाची जी के प्रति भी विशेष आभारी हूँ जिनके स्नेहाशीष आशीर्वाद की छाया मे शोध कार्य को पूर्ण करने मे सरलता का अनुभव हुआ।

मै अपनी जीवन सगिनी कोमलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति श्रीमती नीलम केसरी के प्रति विशेष आभारी हूँ हिन्होने विषम परिस्थितियो मे सहनशीलता का परिचय देते हुए अनन्य उत्साहवर्धन कर शोध कार्य के लिये प्रेरित किया। वास्तव मे शोधकार्य सम्पन्न करने मे इनकी पूर्ण भागीदारी निहित है।

मै अपने प्रिय अनुज राकेश केसरी के प्रति विशेष कृतज्ञ हूँ जिसने मुझे शोध कार्य पूर्ण करने मे विशेष सहयोग प्रदान किया।

मै अपने परम मित्र डॉ० श्याम कृष्ण पाण्डेय का विशेष आभारी हूँ जिन्होने अपने उत्कृष्ट गुणो से मुझे सदैव सहयोग किया साथ ही मै उनकी पत्नी एव परिवार का भी विशेष आभारी हूँ जिनके सानिध्य मे शोध कार्य पूर्ण करने मे सरलता का अनुभव हुआ।

मै अपने अभिन्न "अनिद्य, अगणित गुणो के आगार" मित्र डॉ० जितेन्द्र नाथ दुबे का विशेष रूप से आभारी हूँ, मै डॉ० दूबे के उत्कृष्ट सहयोग के लिये सपत्नीक आजीवन ऋणी रहूँगा तथा मैं सरस्वती के इस वरद पुत्र की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

मै अपने मित्र श्री रूद्र प्रभाकर मिश्र, के प्रति विशेष आभारी हूँ जिनके सहयोग और सानिध्य मे शोध कार्य सम्पन्न करने मे सरलता का अनुभव हुआ।
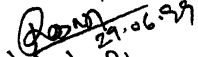
विषय सामग्री को अधिक अद्यतन और उपयोगी बनाने के लिये जिन प्रतिवेदनों पत्रिकाओ और

सन्दर्भ ग्रन्थो का उपयोग किया गया, उनके प्रणेताओ और प्रकाशनो के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

अन्त मे मोहम्मद इस्तियाक एव श्री मनोज कुमार शुक्ल 'शीलू' को विशेष धान्यवाद ज्ञापित करना चाहूँगा जिनके सहयोग से मुद्रण कार्य सरलता से सम्पन्न हो सका।

शोधकर्ता,
29.06.99
(राजेश केसरी)
वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1

शोध अध्ययन का उद्देश्य, विधि एवं सीमाएं

शोध अध्ययन का उद्देश्य, विधि एवं सीमाएं

अर्थव्यवस्था के स्वावलम्बन की स्थिति से ऊपर उठने पर व्यापारिक गतिविधियॉ स्वत तीव्र होने लगती है। भारत के परिप्रेक्ष्य मे जब हम ऐतिहासिक विश्लेषण करते है तो ऐसा विदित होता है कि प्राचीन काल से विदेशी व्यापार होते रहे है। इन व्यापारिक गतिविधियो के द्वारा ही आर्थिक स्थिति के क्रियाकलापो का मूल्याकन किया जाता रहा है। आधुनिक भारत मे विदेशी कम्पनियो का प्रवेश 1498 ई० मे वास्कोडिगामा के भारत आगमन से शुरू होता है।[1] वह एक पुर्तगाली था, जिसने सर्वप्रथम व्यापारिक उद्देश्य से भारत आया, इसके पूर्व भी भारत मे आने का प्रयास किया गया जो आधुनिक भारत मे सभव नहीं हो पाया, परन्तु प्राचीन भारत मे विदेशी व्यापार होते रहे। इसके साक्ष्य सिधु सभ्यता, मेसोपोटामिया, बेबीलोन आदि सभ्यताओ से मिलता है, जहॉ पर व्यापारिक गतिविधियॉ विदेशो से होती रही है, परन्तु पुर्तगालियो के आगमन के बाद आधुनिक भारत मे विदेशी कम्पनियो का सिलसिला शुरू होता है।

पुर्तगाली, डच, अग्रेज, फ्रासीसी कम्पनियो का आगमन भारत मे हुआ और इन कम्पनियो ने भारत को व्यापारिक केन्द्र मे रखकर के व्यापार के साथ-साथ सत्ता स्थापित करने के लिए भी प्रयास किये, जिसके कारण एक दूसरे मे आपसी युद्ध भी शुरू हुए, परन्तु कालान्तर मे इन कम्पनियो का आपसी विवाद बढ़ता गया। आर्थिक युद्ध से शस्त्र युद्ध शुरू हुए। अन्ततः अग्रेज इस युद्ध मे सफल हुए और भारत की लगभग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर कब्जा करते हुए प्रशासनिक क्षेत्रो पर भी कब्जा कर लिया और भारत गुलामी की जजीर मे लगभग 150 वर्षो तक जकड़ा रहा।

"सन् 1757 से जब अग्रेजो ने प्लासी का युद्ध जीता, कम्पनी का बगाल के साथ व्यापार तथा लूट के एक विशेष युग का आरम्भ हुआ। यह वणिकवाद का युग था[2]। "वणिकवाद जो 16वीं से 18वीं शताब्दी तक बहुत लोकप्रिय था, प्राचीन साम्राज्यवादी प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग था। वास्तव मे यह आक्रामक राष्ट्रवाद का आर्थिक प्रतिकार था। इसका मूलभूत आधार यह था कि समस्त आर्थिक कार्यविधि को राष्ट्र के हित में तथा शक्तिशाली बनाने के लिए नियमित किया जाना चाहिए। जहॉ तक विदेशी व्यापार का सम्बन्ध था, इसका अर्थ यह था कि राजपत्रित व्यापारिक कम्पनियो द्वारा इसका

---

1 *शर्मा, एल पी. मध्यकालीन भारत (15वॉ सस्करण) सन् 1996 पृष्ठ सख्या 332*

2 *ग्रोवर, बी एल. यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास (10वॉ सस्करण) 1994 पृष्ठ सख्या 633*

नियमन किया जाय, ताकि आयात से अधिक निर्यात किया जाय अर्थात सतुलन देश के हित मे हो और दूसरे मातृभूमि के अन्दर सोना, चॉदी अधिकाधिक आये।

व्यापारिक कम्पनियॉ यह उद्देश्य तीन तरीको से प्राप्त करती थीं –

1. व्यापार पर एकाधिकार हो और सभी सम्भव प्रतिद्वन्द्वी समाप्त कर दिये जायॅ।
2. वस्तुएं कम से कम मूल्य पर खरीदी जाय और अधिकाधिक मूल्य पर बेची जाय।
3. ऊपर लिखित उद्देश्य·तभी प्राप्त हो सकते थे जब व्यापार किये जाने वाले देश पर राजनैतिक नियन्त्रण हो।

अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्य व्यापारी कम्पनियों से (डच कम्पनी तथा फ्रासीसी कम्पनी से) झगडे का मूल उद्देश्य यह था कि प्रतिद्वन्द्वी भारतीय व्यापार से बाहर कर दिये जायॅ। भारत मे जो युद्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय राजाओं से लडे जैसे बगाल की विजय, आांग्ल मैसूर युद्ध, आग्ल मराठा युद्ध तथा अन्य भारतीय शक्तियों के विरूद्ध युद्ध सभी का उद्देश्य भारत में राजनीतिक शक्ति ग्रहण करना तथा भारतीय व्यापार का अधिग्रहण करना था।

कम्पनी ने जो राजनीतिक सत्ता प्राप्त की उस का उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करने का था, ताकि आतरिक और वाह्य व्यापार और भारतीय धन के स्रोतों पर नियन्त्रण किया जा सके। भारतीय व्यापारियो को उत्पादको से सीधे वस्तुएं खरीदने की अनुमति नहीं थी, क्योकि उन पर एकाधिकार अग्रेजो का था। कम्पनी के गुमाश्ते भारतीय व्यापारियो को अपनी वस्तुएं मण्डी में प्रचलित मूल्यो से अधिक मूल्यो पर खरीदने के लिए बाध्य करते थे।

"सन् 1757 के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वरूप में परिवर्तन आया, अब यह व्यापारी कम्पनी नहीं रह गयी थी। अब यह बंगाल में व्यापारिक, सैनिक तथा राजनीतिक निकाय की भूमिका निभा रहीं थी[3]"

भारत के धन का अविरल प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर था जिसके बदले भारत को पर्याप्त आर्थिक व्यापारिक, भौतिक फल नहीं मिला। ऐसे धन को भारतीय राष्ट्रीय नेताओं तथा अर्थशास्त्रियों ने ''धन के निकास'' की संज्ञा दी है। उस धन के निकास को इंग्लैण्ड ने भारत से अप्रत्यक्ष रूप में भेट अथवा अंशदान माना है। वणिकवाद विचारधारा के अनुसार आर्थिक निकास उस समय होता है जब किसी देश के प्रतिकूल व्यापार संतुलन के फलस्वरूप सोने और चॉदी का निकास होते रहे। प्लासी के युद्ध से पूर्व 50 वर्षों मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में दो करोड़ पौण्ड मूल्य का सोना चाँदी, इसलिए भेजा

---

3 ग्रोवर, बी एल. यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास (10वॉ सस्करण) सन् 1994, पृष्ठ सख्या 633

कि वह भारत से निर्यात किये जाने वाली वस्तुओ का मूल्य दे सके। इग्लैण्ड के वणिकवादी शास्त्रियो ने व्यापारिक नीति की आलोचना की। अँग्रेजी सरकार ने भी बहुत से ऐसे कानून बनाये और प्रतिबन्ध लगाये, जिससे भारत का माल पहुॅचना कम हो सके, अन्य साधनो के अतिरिक्त 1720 मे संसद मे एक ऐसा कानून बनाया जिसके अधीन इग्लैण्ड मे भारतीय रेशमी तथा सूती कपडा पहनने वालो पर जुर्माना किया जाता था।

प्लासी के युद्ध के पश्चात् यह स्थिति उल्टी हो गयी। इग्लैण्ड का भारतीय अर्थव्यवस्था पर एकाधिकार हो गया और भारतीय धन का प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर होने लगा। ज्यो-ज्यो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय क्षेत्रो पर अधिकार जमा लिया, वह अधिशेष भारतीय राजस्व उनके हाथ लगना आरम्भ हो गया। इस धन के निकास ने एक अन्य रूप धारण कर लिया। अब कम्पनी के पास धन लगातार बरसने लगा जो कई स्रोतो से आता था-

1 वह लाभ जो भारत मे उत्पीड़ित कर प्रणाली से बचता था।
2 वह लाभ जो भारतीय मन्डियो पर एकाधिकार नियत्रण के फलस्वरूप व्यापार से होता था।
3 वह बलपूर्वक धन की प्राप्ति जो कम्पनी के अफसर भारत मे प्राप्त करते थे।
4 वह मोटे-मोटे वेतनो के रूप मे प्राप्त किया हुआ धन जो ससार मे किसी भी वेतन भोगी को वेतन के रूप में नहीं मिलता था गवर्नर जनरल का वेतन 20 हजार रूपया प्रति मास था सैनिक पदाधिकारियो के वेतन समकालीन इग्लैण्ड के पदाधिकारियो के कई गुना थे।[4]

यह सब अधिशेष धन कम्पनी पुन भारत मे पूॅजी के रूप मे लगा देती थी। इस पूॅजी के प्रतिकार के रूप मो भारत को कुछ भी प्राप्त नहीं होता था। यह व्यवस्था 1813 के चार्टर ऐक्ट से समाप्त की गयी। जब कम्पनी के व्यापारिक और क्षेत्रीय राजस्व को अलग-अलग कर दिया गया। 1813 के पश्चात् इस आर्थिक निकास ने 'अप्रतिफल' निर्यात का रूप धारण कर लिया। कुछ अपवाद स्वरूप शुरू के वर्षों को छोडकर भारत का इग्लैण्ड के साथ द्वितीय विश्व युद्ध तक प्रतिकूल व्यापार सतुलन ही बना रहा। इस निकास सिद्धान्त का मुख्य पक्ष यह है कि भारत के राष्ट्रीय उत्पादन का कुछ भी भाग भारत की जनता के उपयोग अथवा पूॅजी निर्माण के लिए उपलब्ध नहीं था। यह केवल राजनीतिक कारणों के लिए इग्लैण्ड मे भेजा जा रहा था और भारत को उसके रूप मे कुछ नहीं मिला।

"सर थियोडोर मोरिसन" ने अपने एक भाषण में भारत के आर्थिक सक्रमण की ओर ध्यान

---

4. ग्रोवर, बी.एल यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास (10वॉ सस्करण) सन् 1994, पृष्ठ सख्या 636

आकार्षित करते हुए कहा था कि रेलवे मे पूँजी लगाने से भारत मे एक अन्य उद्योग का आरम्भ हुआ है, जिसमे नियुक्तियो के अवसर उत्पन्न हुए है और भारत के लिए औद्योगिक सवृद्धि का युग प्रस्तुत हुआ। इसी प्रकार यह भी कहा गया कि सिचाई परियोजनाओ को प्रारम्भ होने से भारत की अधिक भूमि अधिकार क्षेत्र मे आ गयी है और उत्पादन बढा है और भारत को लाभ हुआ है। मोरिसन के अनुसार भारत को यह ऋण बहुत सस्ती दर पर मिला, परन्तु यह याद रहे कि रेलवे और सिचाई परियोजनाए मुख्य रूप से केवल इग्लैण्ड के हित मे ही बनायी गयी थी। चूँकि इग्लैण्ड का भारतीय अर्थव्यवस्था पर अधिकार था, इससे भारत का औद्योगीकरण नहीं हुआ, क्योकि रेलो का सभी सामान इग्लैण्ड से खरीदा गया (इजन से लेकर माल ढोने के डिब्बे तक), जिससे देश मे न सिर्फ नियुक्तियो के अवसर घढे अपितु देश मे बेकारी की समस्या और बढ गयी, क्योकि इग्लैण्ड का बना सूती कपड़ा हर जगह मिलने लगा और स्थानीय बुनकरो का धन्धा ठप्प हो गया। इसमे तो कार्लमार्क्स की भविष्यवाणी भी अशुद्ध निकली।[5] दादाभाई नौरोजी ने धन के निकास को 'अनिष्ठो का अनिष्ठ' की सज्ञा दी है और भारत की निर्धनता का मुख्य कारण बताया। उनके अनुसार इंग्लैण्ड भारत का लहू चूषण कर उसे समाप्त कर रहा है। 1905 मे सुन्दरलैण्ड को लिखे गये एक पत्र में उन्होने कहा,"भारत की अवस्था बहुत बुरी है।" उसकी अवस्था स्वामी और दास की नहीं है, परन्तु उससे भी गिरी हुई है।यह एक ऐसे लूटे हुए राष्ट्र की अवस्था है, जहॉ लुटेरा लगातार लूट रहा है और फिर साफ बचकर निकल जाता है। भारत मे अंग्रेजो के पूर्व भी लुटेरे आते रहे, परन्तु वे लुटेरे लूट कर चले जाते थे, परन्तु यह लुटेरा सिर पर बैठा हुआ है। पुराने मध्ययुगीन लुटेरो की ओर अग्रेजी लुटेरो की तुलना करते हुए एक अन्य आलोचक ने कहा "पुराना लुटेरा केवल धनी आदमी की दुकानो को लुटता था, जहॉ धन एकत्रित होता था और छोटे ग्रामों और झोपड़ियो को नहीं लूटता था। उसकी तुलना मे साम्राज्यीय लुटेरा सबसे छोटे, सबसे गरीब और दूर क्षेत्रों मे भी पहुॅच गया और इस प्रकार अंग्रेजी शोषण की पद्धतियॉ कम कष्टदायी तो अवश्य हैं, परन्तु हैं अधिक पक्की और वे खून चूसने के नाई है।[6]

इस धन के निकास से भारत के रोजगार तथा आय की सम्भावनाओं पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। बहुत सी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपनी नियन्त्रित कम्पनियों द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में अपना काम करना आरम्भ कर दिया। इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज, हिन्दुस्तान लीवर, डनलप, इम्पीरियल टुबैको कम्पनी जी.ई.सी , जी.के.डब्ल्यू, यूनियन कार्बाइड,

---

5. धर्म कुमार कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया,(द्वितीय खण्ड) पृष्ठ संख्या 33
6. Pavlov -VI, Economic Freedom Versum Imperialism [New Delhi 1963] P- 7

लेलैण्ड तथा बहुत सी अन्य फार्मोसिटिकल कम्पनियॉ स्वतन्त्रता के उपरान्त भी हजारो करोडो रूपये का व्यापार करती है और प्रतिवर्ष कई सौ करोड रूपया इग्लैण्ड को भेजती है। यद्यपि 1979 मे सरकार ने एकाधिकार तथा सीमित व्यापार व्यवहार अधिनियम द्वारा और 1973 मे विदेशी मुद्रा अधिनियम द्वारा विदेश को भेजे जाने वाले धन पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न किया है फिर भी इनकी भारतीय मण्डियों पर जकड कम नहीं हुई इस धन के निकास के कारण देश मे पूॅजी एकत्रित नही हो सकी जिसे देश के औद्योगिक विकास के गति बहुत धीमी हो गयी। भारतीय धन इंग्लैण्ड को निकास होने से इग्लैण्ड मे औद्योगिक विकास के साधन तथा गति बहुत बढ़ गयी है। विशेषकर औद्योगिक क्राति के दिनो में इसका अधिक घिनौना पक्ष यह भी था कि यही धन पुन भारत में पूॅजी के रूप में लगा दिया जाता था और भारत का शोषण निरन्तर बढता जा रहा था। नौरोजी ने एक बार कहा था, "भारत का धन बाहर जाता है और फिर वही धन भारत मे ऋण के रूप मे आ जाता है और इस ऋण के लिये और अधिक ब्याज एक प्रकार का यह ऋण कुचक्र -सा बन जाता है।[7]"

150 वर्षों के अंग्रेजी राज्य ने भारत मे अत्यन्त निर्भरता कृषि और औद्योगिक दोनो क्षेत्रों मे पिछड़ापन एक रिक्थ (Heritage) के रूप मे दिया है। जब 1947 में अग्रेज यहॉ से गये तो वे संसार का सबसे विकृत,भूमि का प्रश्न छोड गए, जिसमे अधिकाधिक भूमि अधिकार, पट्टेदारी की अनिश्चितता,कृषि के आदिम ढंग,प्रति एकड़ कम उपज, छोटी-छोटी जोतें, साहूकारों को ऋण और उपज के बेचने पर नियन्त्रण और कृषि मे धन लगाने से भय, विशेष महत्वपूर्ण प्रश्न थे। थोड़े में हम यह कह सकते हैं कि अकाल का दैत्य भारत के सामने खड़ा था और भारत जो एक समय में एशिया का अन्न भण्डार था, अब शाश्वत अकाल अथवा सूखे की स्थिति मे पहुॅच गया था। औद्योगिक क्षेत्र की स्थिति इतनी ही बुरी थी, एकमुखी विकास, कम उत्पादन के ढंग, श्रमिक की बुरी अवस्था और सबसे बड़ी बात यह है कि अंग्रेजों का पूॅजी पर नियन्त्रण बना हुआ था। अंग्रेज भारत को एक निर्धन देश छोड़ गए जिसमें प्रति व्यक्ति आय बहुत कम थी। दादा भाई नौराजी पहले भारतीय थे, जिन्होंने प्रति व्यक्ति आय का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया। उन्होंने 1867-78 की प्रति व्यक्ति की आय का अनुमान छोटे तौर पर 20 रूपये प्रतिवर्ष लगाया।

छोटी सी व्यापारिक संस्था से आरम्भ करके अंग्रेज इस समय तक भारत में सर्वश्रेष्ठ शक्ति बन चुके थे। इसके प्रसार में कम्पनी के प्रबंधकों का लालच, उसके कार्यकर्ताओं को धन लोलुपता और बेईमानी, सैनिक शक्ति और भारतीय राजाओं के स्वार्थ सभी ने सहायता की थी। घटनाओं का यहीं

---

7. ग्रोवर, बी.एल. यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास, (10वॉं संस्करण) सन् 1994, पृष्ठ संख्या 639

क्रम सिन्ध के विषय मे भी प्रत्यक्ष देखने को मिला।[8]

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि 1947 ई० से पूर्व भारत अंग्रजो के अधीन था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन से पूर्व भारत की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ थी। इस बात की पुष्टि ऐतिहासिक साक्ष्यो से भी होती है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आरम्भिक स्वरूप व्यापारिक था, किन्तु बाद मे इसने भारत मे सत्ता स्थापित कर ली और 'सत्ता व्यापार का अनुसरण करती है' की कहावत को चरितार्थ कर दिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के समस्त साधनो, उद्योगों एव कृषि का इस निर्ममता के साथ शोषण किया गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था का दम निकल गया। अदक्ष कृषि प्रणाली और भूमि के असमान वितरण ने कृषि को मात्र जीविका का साधन बनाकर रख दिया। लघु एव कुटीर उद्योग तो प्राय नष्ट हो चके थे और जो कुछ औद्योगिक इकाइयॉ जीवित रह भी गई थीं, वे मात्र उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन तक ही सीमित रह गई थी। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास के लिये आधारिक सरचना का आभाव प्रत्येक रूप से परिलक्षित था।

समय के परिवर्तन के साथ अत्यन्त विषम आर्थिक परिस्थितियों में भारत को राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त हुई। 1947 ई० मे जब भारत का नवोदय हुआ उस समय भारत को अधिकांश निर्मित वस्तुओ का आयात करना पड रहा था। स्वतत्रता से वर्तमान समय तक भारतीय अर्थव्यवस्था चार दसको से अधिक का समय व्यतीत कर चुकी है। इस चार दसकों में अर्थव्यवस्था में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए तथा अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिये अनेकानेक प्रयास भी किये गये। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु योजनाबद्ध प्रयास सर्वाधिक महत्वपूर्ण और क्रातिकारी कदम है। अप्रैल 1951 मे प्रथम पंचवर्षीय योजना का श्रीगणेश किया गया। 1947 से लेकर 1950 तक की अवधि अनियोजित विकास की अवधि रही है। जिस समय भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश शासकों से मुक्ति मिली उस मसय उसकी स्थिति एक साफ स्लेट की भॉति नहीं थी, जिस पर स्पष्ट कुछ लिखा जा सके। दूसरे शब्दों में, भारतीय अर्थव्यवस्था इतनी जर्जर स्थिति को प्राप्त कर चुकी थी कि कोई भी योजना बनाकर उसे पूर्णरूप से सफल बनाना लगभग असंभव सा दिखाई पड रहा था। ब्रिटिश शासको ने अर्थव्यवस्था पर इतना अधिक दबाव बना दिया था कि उससे विकास की सभी संभावनायें समाप्त सी दिखाई देने लगी थीं। वह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि ब्रिटिश शासकों द्वारा भारत को अंग्रेजी माल की बिक्री का बाजार बना दिया गया था। अंग्रेज वहॉं से कच्चा माल खाद्यान्न तथा अन्य

---

8. P.E. Roberts - History fo British India, Page 326

कृषि उत्पाद इग्लैण्ड को निर्यात करते थे और बदले मे यहाँ के उद्योगो द्वारा निर्मित उपभोक्ता सामानो का आयात करते थे। इसी का परिणाम था कि अर्थव्यवस्था की अत्यन्त धीमी प्रगति कुछ लोगो के अनुसार 1860 से 1950 के बीच राष्ट्रीय आय मे 1 5 प्रतिशत रही थी। अत किसी भी स्तर से मापने पर भारतीय अर्थव्यवस्था की तत्कालीन स्थिति को सतोषजनक नहीं कहा जा सकता था। यदि यह गतिहीन अवस्था मे नहीं थे तो गतिहीनता की स्थिति के निकट अवश्य थी। जब से भारत अंग्रेजी प्रशासन के अधीन आया है अग्रेजी राज्य के तथाकथित वरदान के नाम पर अभागे भारतीय लोग अपनी सम्पत्ति पर अधिकार खो बैठे है। उनका न्याय का अधिकार छीन लिया गया है, उनका और मानवता का अधिकार पैरो तले रौदा गया है। उनके उत्पादक, नगर कृषक नष्ट कर दिये गये है। उनकी उत्तम नगरीय सस्थाए भग कर दी गई हैं। न्यायिक सत्ता छीन ली गई है। उनकी नैतिकता भ्रष्ट कर दी गयी है तथा उनके धार्मिक रीति-रिवाजो का अतिक्रमण किया गया है। भारत में अगेजी शासन वट वृक्ष के समान ही था। एक वटवृक्ष के नीचे थोड़ा अथवा कुछ भी नहीं उग सकता। वृष अपने नीचे सभी पदार्थो को आच्छादित कर देता हैतथा मार डालता है। केवल वही उद्भव जी अथवा पनप सकते है। जो ऊपर से वृक्ष पतली-पतली डंडियों अथवा शाखाओं के रूप में भूमि की ओर भेजता है। वे जड पकड़ लेते हैं और विकसित हो जाते हैं। अन्य कुछ नहीं। इन बहुराष्ट्रीय निगमो या कम्पनियों की कार्यप्रणाली काफी पुरानी है। लगभग उन सभी देशो मे इनका प्रवेश था जो साम्राज्यवाद के अधीन थे। जैसे भारत के मामले मे ब्रिटेन तथा इडोचीन एव अफ्रीका देशों में फ्रांस प्रारम्भिक अवस्था में इन कम्पनियों द्वारा जो निवेश किया गया वह औपनिवेशिक देशो द्वारा साम्राज्यवादी देशों के उद्योगों के कच्चेमाल की आपूर्ति के लिये था। दूसरी ओर साम्राज्यवादी देशों द्वारा निर्मित माल को विभिन्न उपनिवेशों मे बेचना था, क्योकि वे उपनिवेश उनके सबसे बड़े बाजार थे। बहुराष्ट्रीय निगमों के कारण दुनिया में उपनिवेशवाद का जन्म एव विकास हुआ। पूर्व काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इसी कोटि मे रखा जा सकता है। द्वितीय महाविश्वयुद्ध के पश्चात् जब बहुत से उपनिवेशों ने अपने को स्वतंत्र कर लिया तो इन निगमों को हटा लेने के विषय में यह तर्क दिया गया कि इससे अर्थव्यवस्था में संकट की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी और यदि राष्ट्रीयकरण किया जाता है तो तुरन्त स्वतन्त्र हुए देशों के पास वित्तीय ससाधनों का अभाव है, जिससे क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त भार वहन नहीं कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अमेरिका एक सशक्त पूँजीवादी एवं औद्योगिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया और उसने इन बहुराष्ट्रीय निगमों की अनुषंगियों की सहायता से अल्पविकसित

या विकासशील देशो की पूँजी के निर्यात की रूपरेखा प्रस्तुत की। कालान्तर मे चलकर सयुक्त राज्य अमेरिका ने उसमे सफलता भी प्राप्त की।

भारत मे इन निगमो का प्रवेश ब्रिटिश काल में हुआ। पहले ब्रिटिश कम्पनियो ने जूट, चाय और रबर जैसे उद्योगो मे अपनी पूँजी का निवेश किया और धीरे-धीरे आगे चलकर सार्वजनिक कल्याण की सस्थाओं या उपक्रमों में हिस्सेदारी की। भारत में रेलो मे जो कुछ भी प्रारम्भिक अवस्था मे पूँजी निवेश किया गया, वह ब्रिटिश कम्पनियों द्वारा ही किया गया।[9] संक्षेप में इतना ही कहना काफी होगा कि ब्रिटिश कम्पनियो ने भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रवेश किया और भारत मे बहुत बड़ी मात्रा में लाभ कमाया तथा उस लाभ को ब्रिटेन को भेजा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दुनिया के विभिन्न देशों मे बहुराष्ट्रीय निगमों (विशेषकर सयुक्त राज्य अमेरिका) ने विभिन्न रूपो मे विदेशी सहयोग किया। भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस विषय पर विचार विनिमय हुआ और नेहरू ने 1949 में यह विचार व्यक्त किया कि ''भारतीय पूँजी की विदेशी पूँजी से संवृद्धि करने की आवश्यकता है, जिसका कारण यह नहीं है कि हमारी राष्ट्रीय बचते देश मे तीव्र गति से विकास के लिए उसी पैमाने पर पर्याप्त नहीं होगी जैसा कि हम चाहते है, बल्कि इसका कारण यह है हम 'कई मामलो में वैज्ञानिक, तकनीकी और रोचक ज्ञान तथा पूँजीगत साज-सामान पूँजी की सहायता से हासिल कर सकते है। 4 जुलाई 1957 को इस विचार अथवा निर्णय की पुष्टि की गई जब उन्होंने यह कहा "हमने बीते वर्षों में विदेशी पूँजी का सदैव स्वागत किया है और हम भविष्य में भी उसका स्वागत करेंगे।[10] "बहुराष्ट्रीय निगमो के समर्थन में लोगों का यह तर्क है कि विकासशील देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ष 1979 में निर्गुट सम्मेलन के प्रतिवेदन में यह कहा गया था कि बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील देशों में औद्योगिक उत्पादन के 40 प्रतिशत एवं विदेशी व्यापार के 50 प्रतिशत भाग पर नियन्त्रण रखते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों के विषय में यह भी कहा जाता है कि विकासशील देशों में औद्योगीकरण के लिए इनका प्रवेश आवश्यक है और इन निगमो ने औद्योगीकरण की गति को तेज भी किया है। इन बहुराष्ट्रीय निगमों ने न केवल पूँजी निवेश किया, बल्कि प्रौद्योगिकी भी प्रदान की है, जोकि औद्योगीकरण का आधार होती है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने अप्रयुक्त उपलब्ध संसाधनों का विदोहन करने एवं उत्पादन में परिवर्तन करके शोध एवं

---

9. मिश्र जगदीश नारायण भारतीय अर्थव्यवस्था (बारहवाँ संस्करण) सन् 1996, पृष्ठ संख्या 944-945

10. चरणसिंह : भारत की भयावह आर्थिक स्थिति, पृष्ठ संख्या 387

विकास को भी आगे बढाया है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य, विधि एवं सीमाएं :

उद्देश्य :

विगत पॉच दशको मे विश्व अर्थव्यवस्था मे बहु आयामी परिवर्तन हुए, जिसमें अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप भी प्रभावित होता रहा है यथा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप तथा समाजवादी अर्थव्यवस्थाओ में व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रवेश आदि आज विश्व मे कोई भी अर्थव्यवस्था न तो पूर्णतया पूँजीवादी और न पूर्णतया समाजवादी रह गयी है, अन्तर इतना है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिक प्रभुत्व है और समाजवादी अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप काफी मात्रा मे विद्यमान है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सभी अर्थव्यवस्थाएं मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वरूप की ओर अग्रसर है केवल मात्रा या प्रतिशत का अन्तर है।

दूसरी ओर 80 के दशक से विश्व के कई भागो मे आर्थिक सुधारो और उदारीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इन सुधारो में मुख्य रूप से वित्तीय क्षेत्र, राजकोषीय क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, विदेशी व्यापार एवं विदेशी विनिमय क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र, अधोसरचना क्षेत्र, बैंकिंग एव बीमा क्षेत्र, पूँजी बाजार आदि से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त यूरोपीय देशो में भी कुछ मंदी के आसार समय-समय पर परिलक्षित हुए हैं, जिनसे वहॉ रोजगार एवं औद्योगिक विकास की समस्या अनुभव की गयी। इसलिये विश्व अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय आर्थिक एव व्यापार से सम्बन्धित संगठनों का गठन हुआ। विश्व स्तर पर आर्थिक, औद्योगिक एवं व्यापार नीतियों में फेरबदल की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। व्यापार एवं तटकर सम्बन्धी सामान्य समझौते को समाप्त कर एक नये व्यापारिक विस्तृत समझौते को अस्तित्व मे लाया गया। नये समझौते मे न केवल पाश्चात्य यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लगभग सभी विकसित एवं विकासशील देशों को प्रभावित कर रहा है। अतः वर्तमान अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया मे विकसित एवं विकासशील सभी देश प्रभावित हो रहे हैं। हो सकता है कुछ देशों पर सकारात्मक और कुछ देशों पर नकारात्मक प्रभाव पड़े, परन्तु यह निश्चित है कि अर्थव्यवस्थायें किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित होगी।

विकासशील अर्थव्यवस्थायें आर्थिक सुधारों व आर्थिक पुनर्संरचना से किसी न किसी रूप में गहरी सीमा तक प्रभावित हो रही है। विकासशील देशों की अपनी विशेषताएं एवं अपनी सीमाएं है। जहॉ संसाधनों का अल्पदोहन है वही पर पूँजी की कमी एवं परम्परागत ढाँचा विद्यामान है। इस प्रकार

की अर्थ व्यवस्थाओ का विचलन परम्परागत वादी अर्थव्यवस्था के ढॉचे से आधुनिक, वैज्ञानिक, प्रविधि की ओर हो रहा है। औद्योगिक उत्पादन ढॉचे एव बाजार व्यवस्था मे परिवर्तन विकासशील देशो की अपनी इच्छा से नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता यथा विश्व व्यापार सगठन से प्रभावित होगा। वर्तमान समय मे मौद्रिक, औद्योगिक एव व्यापारिक गतिविधियॉ किसी देश के ऊपर समग्र रूप से नहीं निर्भर करती है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियॉ उनके क्रियाकलापो को अवश्य ही निर्धारित करती है। विदेशी पूॅजी का आगमन, बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का विस्तार एव स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दिशा एव मात्रा समझौता द्वारा निर्धारित की जाती है। आज कोई भी देश यदि यह चाहे कि किस देश को कितना आयात और किस देश को कितना निर्यात करना है, स्वय निर्णय करे यह उसके ऊपर निर्भर नहीं करता है।

आर्थिक सुधार और उदारीकरण के दौर मे औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका विशेष रूप से निर्णायक मानी जाती है। औद्योगिक क्षेत्र मे अनेक प्रकार की कम्पनियॉ एव निगम कार्यरत है। इन्हीं मे से एक नव-साम्राज्यवाद के संदेशो का वाहक बहुराष्ट्रीय निगम भी है। एकाधिकार और आर्थिक केन्द्रीकरण की समस्याएं अब किसी राष्ट्र विशेष तक सीमित न रहकर विश्व के अन्य राष्ट्रो को भी प्रभावित करने लगी है। ऐसी ही बृहद आकार की कम्पनियॉ अथवा निगम है। जिनके कार्य क्षेत्र का विस्तार एक से अधिक देशो मे देखा जा सकता है। ऐसे बहुराष्ट्रीय निगमो के गुण भी है और अवगुण भी है। अत. इनका अध्ययन करना इनके प्रति नीति निर्धरण के लिए आवश्यक एवं प्रासगिक जान पडता है ताकि इनके द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाकर देश के आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जा सके और इनके दोषों से बचा जा सके।

बहुराष्ट्रीय निगमे विश्व के लगभग सभी देशो मे विद्यमान हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में इनकी सख्या सर्वाधिक है। इन निगमो का कार्यक्षेत्र अपने देशों के बाहर विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के देशो मे फैल चुका है। यहॉ तक कि सोवियत रूस जैसा समाजवादी देश भी इनकी पहुॅच से बाहर नहीं रह सका। बहुराष्ट्रीय निगमों का अस्तित्व अल्पविकसित देशो में भी देखा जा सकता है। इन देशो के बहुराष्ट्रीय निगम अन्य विकासशील देशो में कार्य करते है किन्तु विकसित देशो के बहुराष्ट्रीय निगमो की प्रतिस्पर्धा के सम्मुख यह कहीं नहीं ठहर पाते हैं।

विकसित राष्ट्रों में जन्मे इन बहुराष्ट्रीय निगमों के क्रियाकलाप विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। इनके क्रियाकलाप में वे सेवाएं शामिल है, जिनका सम्बन्ध पूॅजीगत, तकनीक अन्तरण, उत्पादन के वितरण आदि की जानकारी के लिए शोध और उनके विकास से है दूसरे स्तर

पर वस्तु और उत्पादन आते हैं। अस्सी के दशक के अन्तिम एव नब्बे के दशक के प्रारम्भिक वर्षों मे पूँजीवादी,यूरोपीय देशो मे औद्योगिक सकट एव बेरोजगारी के आसार नजर आये थे। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही है। ऐसी दशा मे पूँजीवादी देश विशेषकर अमेरिका के डंकल प्रस्ताव के माध्यम से ''गैट'' में परिवर्तन करके एक नयी विश्व अर्थव्यवस्था कायम करने की बात सोची गयी और जिसे अन्तत कार्य रूप दे दिया गया।

आज एशिया, लैटिन अमरीका, अफ्रीका महाद्वीप के तमाम ऐसे विकासशील देश हैं, जो आर्थिक सुधार और उदारीकरण की प्रक्रिया अपनाये हुए है, परन्तु आर्थिक एवं औद्योगिक उतार-चढाव की स्थिति से गुजर रहे हैं। इन अर्थव्यवस्थाओ मे निर्वाध रूप से विदेशी पूँजी का आगमन, बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना, विस्तार तथा आवश्यक वरीयतावाले उद्योग में भागीदारी आदि हो रही है, जोकि डंकल प्रस्ताव का ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव कहा जा सकता है।

इस शोध के द्वारा इस बात का पता लगा कि विकासशील देश तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुराष्ट्रीय निगमों का क्या प्रभाव पड़ रहा है या पड सकता है क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण विषय है जिस पर भारत का औद्योगिक एव आर्थिक विकास निर्भर करता है। इस अध्ययन के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप एव प्रकृति के साथ-साथ विचलनों को भी समझाया जायेगा जिससे भावी विकास रणनीति तय की जा सके इसलिए इस शोध प्रबन्ध मे विकासशील एवं भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप एवं लक्षणों को जानने के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था का अतीत वर्तमान एवं विचलन को जानने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही साथ शोध का केन्द्र बिन्दु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन के सम्बन्ध अर्थिक सुधार और उदारीकरण नीति के तहत् जो प्रक्रिया अपनाई गयी है, उन उपलब्धियो का विस्तृत रूप से अध्ययन करने एवं प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है। यद्यपि शोध का विषय विकासशील देशों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रभाव भारत के विशेष सन्दर्भ में है, परन्तु एक व्यक्तिगत शोधकर्ता के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह विकासशील देशों में जाकर उनका अध्ययन करें एवं उसके वास्तविक परिणाम निकालें। इसलिये शोध के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को एक विकासशील देश के प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है, परन्तु किसी वित्तीय एवं सरकारी सहयोग के अभाव में एक शोध छात्र के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का प्रारम्भिक आँकड़ों के आधार पर अध्ययन करना दुरूह कार्य है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ चयनित क्षेत्रों से सम्बन्धित अध्ययन कर निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है। इस विषय पर शोध करना एवं उसके परिणामों को जानना वर्तमान में ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि भविष्य में इसकी और अधिक

महत्व होगी, जो नये शोधकर्ता एक दिशा देगा।

संकल्पना :

1 उदारीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का विकास भारतीय अर्थवयवस्था में संभव हुआ है अथवा नहीं?

2 उदारीकरण के परिणाम स्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के द्वारा पूँजी निवेश किस सीमा तक हुआ है?

शोध विधि :

अध्ययन को अर्थपूर्ण एव वास्तविक विश्लेषण करने के लिए एक उचित उपयुक्त शोध प्रारूप का निर्माण आवश्यक होता है। जिसमे सम्भावित समस्याओ के हल अथवा सुधार के उपाय निहित होते हैं, क्योंकि दोषपूर्ण अध्ययन के कारण एक उपयुक्त अच्छा शोध विषय भी गलत विचार धारा प्रस्तुत कर सकता है। इसलिये एक वास्तविक शोध एव विधि आवश्यक होती है।

शोध की रूप रेखा शोध प्रारूप से सम्बन्धित होती है इस शोध में अध्याय 4, 5 एवं 6, में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओ को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में प्राथमिक एव द्वितीयक संमकों के द्वारा सूचनाओ को एकत्रित करने की कल्पना की गयी है, परन्तु द्वितीयक संमको के द्वारा ही सूचनाओं को एकत्रित किया गया है। कृषि,उद्योग एव सेवा क्षेत्र से कुछ लोगों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रभाव को जानने एवं लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सम्बन्ध में शोध के अन्तर्गत हमें सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। बहुत से बहुराष्ट्रीय् कम्पनियॉ अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऑकड़ों का संग्रहण, विश्लेषण और निर्वचन करती है। बिना सांख्यिकीय ऑकड़ों के कोई भी शोधकर्ता अपने लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है, इसलिए हमें शोध करते समय सांख्यिकीय विधियों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए, तभी शोध लक्ष्य की प्राप्ति होगी।[11]

द्वितीयक संमकों के प्रमुख स्रोत :

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सम्बन्ध में सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं तथा अन्य अनुसंधानकर्ता

---

11. एलहँस, देवकीनन्दन, वीना, एवं वैश्य, एम.पी. : साख्यिकी के सिद्धान्त (द्वितीय संशोधित सस्करण) 1997-98, पृष्ठ संख्या-9

महत्वपूर्ण समक एकत्र करके उन्हे समय-समय पर प्रकाशित करते रहते है। प्रकाशित समको के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित है --

1. सरकारी प्रकाशन :

प्रत्येक देश की सरकारे सम्बन्धित समक एकत्रित और प्रकाशित करते रहते है। ये समक बहुत विश्वसनीय और महत्वपूर्ण होते है। आजकल भारत मे लगभग सभी मन्त्रालयो द्वारा अनेक प्रकार की सूचनाए व समक प्रकाशित कराये जाते है। प्रमुख सरकारी प्रकाशन इस प्रकार है[12] -

1 भारतीय रिजर्व बैक बुलेटिन

2 स्टैटिस्टिकल एब्स्टैक्ट आफ इण्डिया

3 आर्थिक सर्वेक्षण

4 प्रगति रिपोर्ट

5 उद्योगो पर वार्षिक सर्वेक्षण

6 मुद्रा एव वित्त रिपोर्ट

2. अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन :

अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाए जैसे- सयुक्त राष्ट्र सघ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि समय-समय पर ऑकडो का सकलन तथा प्रकाशन करती है। विदेशी सरकारों के प्रकाशन भी इसी वर्ग मे आते है, ये प्रकाशन द्वितीय ऑकडो के स्रोत है।

3. आयोग व समितियों की रिपोर्ट:–

सरकार या अन्य किसी सस्था द्वारा आयोग या समितियॉ नियुक्त की जाती है। देश के आर्थिक नीतियो के अध्ययन के लिए ये आयोग या समितियॉ सम्बन्धित ऑकडे संकलित करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है -

1 वित्त आयोग के प्रतिवेदन

2. योजना आयोग के प्रतिवेदन

3. विदेशी नीति प्रतिवेदन

4 विदेशी निवेश प्रतिवेदन

---

12. शुक्ल एवं सहाय, डॉ० एस.एम , डॉ० शिवपूजन : सांख्यिकी के सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा- 1998 पृष्ठ संख्या- 62-63

4 व्यापारिक एवं वित्तीय संस्थाओं के प्रकाशन :

जैसे - भारतीय उद्योग व व्यापार सघ, जूट मिल्स एशोसिएशन, पेप्सी कोला, हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड।

5 विश्वविद्यालय एवं शोध संस्थाओं के प्रकाशन :

1 भारतीय साख्यिकीय सस्थान

2 व्यवहारिक आर्थिक शोध की राष्ट्रीय परिषद

3 राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण सगठन

4 विश्वविद्यालय शोध ब्यूरो

5 केन्द्रीय साख्यिकीय सगठन

6. समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं :

बहुत सी पत्र तथा पत्रिकाए अनेक प्रकार के ऑकडे एकत्र करके प्रकाशित करती है। जैसे .--

1 इकोनामिक टाइम्स (दैनिक)

2 दी फाइनैनाशियल एक्सप्रेस (दैनिक)

3 कामर्स (साप्ताहिक)

4 योजना (पाक्षिक)

अध्ययन की सीमाएं :

इस महत्वपूर्ण शोध विषय की कुछ सीमाये भी है जैसे --

1 सूचनाओं को प्राप्त करना एक जटिल कार्य है।

2 चूॅकि यह कृषि, उद्योग एव सेवा या अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित है, इसलिये किसी भी वर्ग विशेषकर कृषि वर्ग से प्रतिक्रिया जानना बहुत ही कठिन कार्य है, क्योकि अभी कृषकों को इसका पूरा ज्ञान नहीं है और दूसरे वे सरकारी विभाग का व्यक्ति जानकर दूर रहना चाहते हैं।

3. इस विषय पर अब तक शोध कार्य का अभाव रहा है। इसलिये इस दिशा मे कठिनाई अनुभव हुई है।

4 छितरे हुए व्यक्तिगत साहित्य जो उपलब्ध है उसमे पक्षपात पूर्ण विचार हो सकते है।

5 वित्तीय एव सरकारी सहयोग के अभाव मे व्यक्तिगत शोधकर्ता के सीमित साधनो को देखते हुए प्राथमिक आकडो का सकलन कठिन कार्य है।

6 राजनीतिक अस्थिरता के कारण नीतियो मे स्थायित्व की कमी।

7 समय पर आकडो का उपलब्ध न होना अर्थात वर्तमान आकडे एक या दो वर्ष के बाद प्राप्त होते है।

8 दर्शायी गयी सूचनाओ मे एकमत का अभाव होना।

यद्यपि इस विषय पर अभी तक विशेषकर उत्तर भारत मे शोध कार्य नहीं हुआ है, इसलिए पर्याप्त साहित्य का अभाव है।

2

उदारीकरण की आवश्यकता, औचित्य एवं समीक्षा

उदारीकरण की आवश्यकता, औचित्य एवं समीक्षा

उदारीकरण की जरूरत 1985 मे ही महसूस होने लगी थी। 1991 आते-आते आर्थिक हालात इस कदर खराब हो चले थे कि हमारे पास सिर्फ एक खरब डालर विदेशी मुद्रा रह गयी थी। ये मात्र 15 दिन के आयात का भुगतान था। मुद्रा स्फीति की दर 17 फीसदी हो गई थी, बजटीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 8 6 प्रतिशत हो गया था अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे हमारी साख दाव पर थी। पूर्व प्रधानमत्री चन्द्रशेखर सरकार जब सत्ता मे आयी। उसने खाते खोलकर देखे तो खाली थे। उस समय स्विस बैको मे सोना गिरवी रख करके हमारी लाज बची। बाद मे ये सोना भी हमने वापस ले लिया। मेरे विचार से सोना गिरवी रख के अपने को बकाएदार होने से बचाना बहुत महत्वपूर्ण निर्णय था। मुझे इस बात का गर्व है कि भारत बकाएदार होने का दाग लगने से बच गया, नहीं तो फिलीपीन्स जैसा अग्रणी देश भी इससे नहीं बच सका। उदारीकरण के चार मूल सिद्धान्त है, इन्हे प्राप्त करके ही देश मजबूत हो सकता है ये है उत्पादकता बढाना, कार्यक्षमता मे वृद्धि, गुणवत्ता मे श्रेष्ठता हासिल करना और टेक्नोलाजी उन्नयन।उदारीकरण के सिद्धान्तों को हासिल करने के तरीके भी इस प्रकार है–ये है प्रतिस्पर्धा परिश्रम और पारिश्रमिक के बीच सम्बन्ध और बाजारोन्मुख प्रणाली। अस्सी के दशक में ब्रिटेन की निवर्तमान प्रधानमत्री श्रीमती माग्रेट थैचर ने निजीकरण को प्रोत्साहन करके सम्पूर्ण विश्व के लिए आर्थिक सुधार का श्री गणेश किया। इस सुधार की हवा से ब्रिटेन ही नहीं, अपितु सपूर्ण यूरोप, दक्षिणी अमेरिका अफ्रीका और एशिया भी प्रभावित हुए। गोर्वाच्योब ने सोवियत सघ को एक नया स्वरूप प्रदान कर यह प्रमाणित कर दिया कि प्रत्येक व्यवस्था समय के साथ-साथ परिवर्तनशील है। यदि वर्तमान समाज परिस्थितियों की माग को नहीं स्वीकारता है तो यह भयकर भूल है। भारत में आर्थिक सुधार की प्रक्रिया भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गॉधी के समय में ही आरम्भ हो गयी थी। इसको वर्तमान सरकार पी वी. नरसिहाराव ने एक नई दिशा देकर प्रोत्साहित किया है। भारत में आर्थिक उदारीकरण की नीति अगस्त 1991 से प्रारम्भ हो गयी जो अब भी लागू है। उदारीकरण के लागू होने से अब तक देखे जा रहे थे कि बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा इसका प्रभाव लघु उद्योगों पर दोषपूर्ण रूप से पड़ेगा, किन्तु ऐसा नहीं है। मेरे अनुसार लघु उद्योगों से सम्बन्धित जो बिन्दु उभरकर सामने आये है कि उदारीकरण से लघु उद्योगों पर सकारात्मक प्रभाव पडेंगे, जबकि नकारात्मक बिन्दुओं की संख्या बहुत कम है, यही नहीं नकारात्मक बिन्दु भी यही सिद्ध करते है कि उदारीकरण को और विस्तारित करने की जरूरत है,

ताकि उसमे लघु उद्योगो को पूरी तरह से समाहित किया जा सके। कुल मिलाकर उदारीकरण को समग्र अवधारणा के तौर पर देखा जाना चाहिए। जिसका उद्देश्य बगैर किसी खेमे बाजी के सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र का विकास है। उदारीकरण के लागू करने से प्रतिस्पर्धा मे वृद्धि, निर्यात आदेशो मे वृद्धि, गुणवत्ता मे वृद्धि, प्रक्रियाओ मे पारदर्शिता, उत्पादो की श्रृखला मे वृद्धि, नये सयुक्त उद्योगो की स्थापना, उत्पादकता मे वृद्धि, उत्पादन लागत मे कमी। प्रतिस्पर्धा को देखते हुए लघु उद्योगो ने दो बातो पर ध्यान दिया। उत्पादन लागतो मे कमी, गुणवत्ता मे सुधार ये दोनो बाते अपने एजेडे मे सबसे ऊपर रखे है। उदारीकरण से आशय एक ऐसी अर्थव्यवस्था से है जिसमे प्रतिबन्धो एवं नियंत्रणों को कम करके त्वरित आर्थिक विकास हेतु श्रेष्ठ लचीली व्यवस्था अपनायी जाती है। इस हेतु 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक मे न केवल भारत वरन् विश्व के अधिकाश देश अपने लिए एक मजबूत आर्थिक मच तलाशने, अपनी अर्थव्यवस्था को ठोस अधोसरचनात्मक स्वरूप प्रदान करने, आन्तरिक एव वाह्य विनियत्रंण नीति को सरल-सुग्राह्य बनाने तथा गुणवत्ता प्रतिस्पर्धा तथा प्ररेणाप्रद लाभ अर्जित करने एवं मदी की विश्वव्यापी समस्या से उबरने हेतु उदारीकरण एव सम्बन्धित मूलभूत पूरक तत्व निजीकरण तथा विश्वीकरण प्रविधि को निजी अर्थतन्त्र के सानुरूप, सरचनात्मक सामजस्य स्थापित करने मे सलग्न एवं क्रियाशील है। इसी सुखद का परिणाम है कि विश्व स्तर पर यूरोपीय साझा बाजार, यूरोपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र, नाफ्टा, आसियान, एशिया प्रशान्त क्षेत्र तथा दक्षेस के रूप में प्रमुख आर्थिक मच स्थापित हुए है जिससे आर्थिक उदारवाद तथा विश्वीकरण की अवधारणा फलीभूत होती नजर आने लगी है।

विश्व के प्रमुख बाजारो मे जो विकासशील देश आते हैं, उनमे से भारत एक महत्वपूर्ण, विस्तृत माग प्रेरित बाजार क्षेत्र रहा है। इसके विकास के लिए उदारीकरण के रूप मे अनौपचारिक शुरूआत 1970 मे दत्त कमेटी की सिफारिशो तथा 1973 मे औद्योगिक लाइसेसिंग नीति मे सरलीकरण से होती है। इस क्रम में 1984,1985,1990,1994, की औद्योगिक नीतियो तथा निवेश स्तर की परिभाषाओ मे परिवर्तन एव अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व बैंक तथा जी-7 के निर्देशो पर मौद्रिक सामंजस्य नीति उल्लेखनीय रही है।

भारत के आम नागरिक को उदारीकरण के विचार से परिचय 1991 के मध्य मे हुआ। वैसे आर्थिक क्षेत्र मे इसका प्रारम्भ सही अर्थो मे 1985 मे ही हो चुका था, लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था मे उदारीकरण के लक्षण इससे भी पहले दिखाई दिये थे। छठी पचवर्षीय योजना (1980-85) में केन्द्र सरकार द्वारा कुछ उदारवादी परिवर्तन किये गये, जिसके अन्तर्गत औद्योगिक नीतियों और आयात

नीतियो मे परिवर्तन किया गया अर्थात भारतीय राजनीति मे अर्थव्यवस्था के प्रति उदारीकरण के लक्षण पहली बार 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध मे दिखने शुरू हुए थे, लेकिन 1991 का उदारीकरण सही अर्थ मे उदारवादी भले ही हो। यह सभी अर्थो मे उदारीकरण के वैश्वीकरण की परिभाषा से मेल नहीं खाता। निश्चित ही इसका सम्बन्ध आर्थिक उदारीकरण से है, जिसे दूसरे शब्दो मे आर्थिक सुधार कहा जाता है।

24 जुलाई 1991 को तात्कालीन केन्द्र सरकार ने आर्थिक नीतियो मे व्यापक परिवर्तन की घोषणा की। औद्योगिक क्षेत्र, वित्तीय क्षेत्र, सेवा क्षेत्र और आधारिक सरचना क्षेत्र से लेकर विदेश व्यापार तक सभी क्षेत्रो मे व्यापक नीतिगत परिवर्तन किया गया। चूँकि इस नीतिगत परिवर्तन की दिशा 'खुली अर्थव्यवस्था की ओर निर्देशित थी'। अतएव इस प्रक्रिया को आर्थिक उदारीकरण कहा जाने लगा। हालाकि उदारीकरण की आवश्यकता और उसके कारणो के बारे में राष्ट्र-स्तरीय विवाद होता रहा है, जिसकी गूँज भारतीय राजनीतिक दलो से लेकर अर्थशास्त्रियो और विशेषज्ञो तथा साधारण जनता तक सुनाई पड़ती रही है। फिर भी उदारीकरण के पूर्व की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करने पर इसकी आवश्यकता के बारे मे काफी हद तक तार्किक आधार मिल जाते है। इस बात को हम दो भागो मे बॉटकर समझ सकते है -पहली यह कि उस समय देश की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो चुकी थी कि देश के पास आवश्यक वस्तुओ के आयात के लिए मात्र आगामी तीन सप्ताह तक के विदेशी भडार रह गये थे। उद्योग की वृद्धि दर लगभग 0.5 प्रतिशत तक पहुँच चुकी थी, सार्वजनिक क्षेत्र पूँजी के अभाव से एकता की ओर अग्रसर हो रहा था, भुगतान सतुलन प्रतिदिन और अधिक गत्यात्मक होता जा रहा था। दूसरी बात पहली की तरह अशकालिक नहीं थी। यह बात भी देश की अर्थव्यवस्था के पिछले 45 वर्षों के निष्पादन की समीक्षा और आत्ममथन थी। मिश्रित अर्थव्यवस्था के द्वारा भारतीय सरकार बडे पैमाने पर उद्योग और व्यापार मे निवेश करती रही और साथ-साथ सामाजिक सेवाओ (शिक्षा,स्वास्थ्य,पेयजल,सामाजिक सुरक्षा और कल्याण आदि) का भी बोझ वहन करती रही, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र अतिरेक(Surplus)अर्जन करने के बजाय सरकार के सब्सिडियो पर चलता रहा जिस कारण रिसाव के सिद्धान्त(Trickle down theory)की मान्यता बिखरती गई और देश द्वारा इस क्षेत्र मे किए गये निवेश का लाभ भारतीय जनता तक नहीं पहुँच पाया।[1] बाद मे सार्वजनिक क्षेत्र की स्थिति इतनी बदहाल हो गयी कि इस क्षेत्र के विकास के लिए सरकार द्वारा किये गये बजटीय आवंटन का लगभग पूरा का पूरा भाग इस क्षेत्र के अनुदानों, प्रशासनिक कर्मचारियों के वेतन और इनके ऋणों के ब्याज के भुगतान मे जाने लगा। अतः अब वह समय आ गया था कि पूरी अर्थव्यवस्था को एक नया

1. मासिक पत्रिका · प्रतियोगिता किरण, अप्रैल 1998 पृष्ठ सख्या- 57

रूप प्रदान किया जाय। दूसरा उपाय यह था कि विदेशी विकास मे सभी अनुदानो और ऋणो को पुन इस घाटे मे चल रहे विशाल क्षेत्र मे झोक दी जाए।

लेकिन पिछले लगभग 35 वर्षो से वार्षिक और पचवर्षीय योजनाओ मे सरकार यही करती रही थी जिसका परिणाम सकारात्मक नही पाया था। इस प्रकार एक तरफ तो हानि अर्जित करने वाला विशाल सार्वजनिक क्षेत्र था दूसरी ओर सरकार अन्य विकास कार्यों के लिए धन नहीं जुटा पा रही थी। बढती हुई जनसख्या के साथ-साथ आधारिक सरचनाओ की माग के अनुसार आपूर्ति अब सरकार के वश के बाहर होता जा रहा था। कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था का विकास अवरोधित हो रहा था।

अत· उपर्युक्त दोनो बातो को ध्यान मे रखकर सरकार ने उदारीकरण को गले लगाया और भारत ने अपने आर्थिक दर्शन मे सरचनात्मक परिवर्तन किया। लम्बी अवधि से पूॅजी और धन के अभाव से ग्रसित भारतीय अर्थव्यवस्था को धन की आपूर्ति के लिए अब निजी क्षेत्र के विकास को प्रोत्साहित किया जाने लगा।

आधारिक सरचना क्षेत्र के उचित विकास मे व्यापक धन की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति घरेलू निजी निवेशक करने मे असमर्थ था अत· विदेशी निवेश की छूट दी गयी। चुने हुए उद्योगो मे 51 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक के विदेशी निवेश को मजूरी देकर सरकार ने अर्थव्यवस्था के तेज विकास का रास्ता खोला। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र मे अनगिनत परिवर्तन किए गए जिनको गिनाना इस लेख का मुख्य विषय नहीं है। कुल मिलाकर भारतीय अर्थव्यवस्था जो अब तक एक बद अर्थव्यवस्था मानी जाती थी, 'खुलेपन ' की ओर तेजी से चल पडी और शुरू हो गयी आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया। यह प्रक्रिया अभी आगे चल रही है। वैसे अक्टूबर 1997 में शुरू हुए पूर्व एशियाई मुद्रा संकट के कुप्रभाव से त्रस्त होकर भारतीय रिजर्व बैक ने मौद्रिक क्षेत्र मे किये गये उदारीकरण को थोडा सा उल्टी दिशा मे निर्देशित किया है जो किसी भी अर्थ मे उदारीकरण के दर्शन के विरूद्ध नहीं है, क्योंकि खुली अर्थव्यवस्थाएं विशेष स्थितियो, मे अपनी मौद्रिक नीतियो मे यथोचित और समसामयिक परिवर्तन करती रहती हैं।

उदारीकरण राजनीति कसौटी पर :

उदारीकरण की नीतियो के अनुसरण का श्रेय कांग्रेस ई को जाता है जो उस वक्त बहुमत से सरकार चला रही थी अर्थात यह दल उदारीकरण के दर्शन को अपने गले के नीचे चाहे जैसे हो उतारने को मजबूर थी। लेकिन भारत जैसे विभिन्नताओं वाले देश में राजनीतिक मतभेदो और आर्थिक

मतैक्यता की बाते विशेष महत्व रखता है। वह देश जो लगभग दो दशको से अपने सविधान के प्रस्तावना मे 'समाजवाद' के विचार से प्रेरित था एकाएक खुली अर्थव्यवस्था के दर्शन की शरण मे चला गया जो अपने आप मे कम से कम वामपथी दलो के लिए कभी भी पचनेवाली बात नहीं थी, लेकिन उन्हे भी इसे गले के नीचे उतारना पडा। इस बात मे उनके लिए प्रेरणा का स्रोत रहा हाल ही का विखडित पूर्व सोवियत सघ और चीन के खुलेपन की आर्थिक नीति वास्तविकता यह है कि वह राज्य जो पिछले दशको मे वामपथी सरकारो द्वारा शासित रहे थे, वहॉ उदारीकरण को सहर्ष स्वीकार किया गया, अर्थात वामपथी पहले तो सरकार पर विश्व बैक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबावो मे आकर उदारीकरण की नीतियो पर अमल करने की बात पर आलोचना करते रहे, लेकिन बाद मे इसकी तार्किकता के सामने उन्होने उदारीकरण को स्वीकार तो किया पर इसकी प्रकृति और स्वरूप को लेकर काग्रेस की आलोचना अवश्य करते रहे, लेकिन उनकी यह आलोचना भी लगभग दबती चली गई। जब केन्द्र की तात्कालीन सयुक्त मोर्चा सरकार में एक वामपथी दल ने शामिल होने का निर्णय लिया। हालाकि कई ऐसे मुद्दे आये जहॉ उदारीकरण के प्रति इनके कारण गतिरोध उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह सरकार कुछ क्षेत्रों मे आर्थिक उदारीकरण को चाहकर भी नहीं आगे बढा सकी। अब बात आती है भारत के अन्य राजनीतिक दलो की। विचारो की भिन्नता के आधार पर भारतीय राजनीति में दो राजनीतिक दल एक दूसरे के पूर्णत· विपरीत सिद्धान्तो पर आधारित है और दो ध्रुवो का प्रतिनिधित्व करते है। वामपथी और दक्षिणपथी। राष्ट्रीय स्तर की दो वामपथी दलो को छोडकर अन्य भारतीय दलो को दक्षिणपथी ही माना जाता है वैसे भारतीय जनता पार्टी को पूर्णत दक्षिणपथी माना जाता है। हालाकि इन बातो को कोई भी दक्षिणपथी दल स्वीकारता है, परन्तु राजनीति की शब्दावली मे अभी ऐसी ही अवधारणा है। अत· भाजपा की उदारवादी आर्थिक नीतियो के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही है, इसको जानना अति आवश्यक है। इस सम्बन्ध में भाजपा ने उदारीकरण का विरोध तो नहीं किया, लेकिन इसकी प्रक्रिया के प्रति इसने आलोचना अवश्य प्रस्तुत की। शुरू मे मूलत यह दल उदारीकरण के बिन्दु पर काग्रेस की आलोचना करता रहा, लेकिन बाद के वर्षों मे उसने स्वदेशी आन्दोलन के विचार का प्रतिपादन शुरू किया। वास्तव में भाजपा का स्वदेशी आन्दोलन एक प्रकार से उदारीकरण की एक विशेष प्रकार की विधि या विकल्प है जिससे वह देश के कुछ चुनिंदा उद्योगो या क्षेत्रों मे ही विदेशी निवेशकों को आमंत्रित करने की बात करता है। वैसे चुनिंदा उदारीकरण (Selective Liberalisation) की प्रक्रिया क्रियान्वयन की दृष्टि से सव्यवहारिक और नकारात्मक हो सकती है, फिर भी भाजपा ने स्वदेशी उद्योगो पर विदेशी निवेश के पड़ रहे प्रतिकूल प्रभाव की संवेदनशीलता को उगलना शुरू किया है और इसके लिए इसने आस्ट्रेलिया आदि देशों के उदारीकरण

नीतियो का उदाहरण पेश किया है। भाजपा इन स्वदेशी मुद्दे के मिश्रण से बने उदारीकरण के प्रारूप को सवेदनशील को उछालना शुरू किया और इसके लिए इसने आस्ट्रेलिया आदि देशो के उदारीकरण नीतियो का उदाहरण पेश किया है भाजपा उन स्वदेशी मुद्दे के मिश्रण से बने उदारीकरण के प्रारूप को किस प्रकार लागू करेगी। यह केन्द्र मे सत्ता सभालने के बाद पता चलेगा, लेकिन भाजपा शासित राज्यो मे यह दल किसी भी अर्थों मे अपने इस प्रारूप का क्रियान्वयन नहीं कर रहा है।

भारत के अन्य राजनीतिक दलो का जहॉ तक प्रश्न है। वह हाल के 13 दलो के सयुक्त मोर्चा सरकार के गठन के बाद पूर्णत स्पष्ट है। इस प्रकार भारतीय राजनैतिक विचारधारा अब उदारीकरण को वास्तविक सच्चाई ही नहीं मान बैठा है बल्कि शायद इसकी आवश्यकता के प्रति भी अब सदेह भरे नजरो से देखना भी छोड दिया है, लेकिन शुरू मे आर्थिक उदारीकरण को आर्थिक गुलामी ''नवसाम्राज्यवाद'' आदि रोज ही नये नामो से पुकारा गया अर्थात उदारीकरण के प्रति भारतीय राजनैतिक दलो मे इस मुद्दे पर आम सहमति दिखती है कि उदारीकरण आवश्यक है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था अतत वहॉं की राजनीतिक सोच को ही परिलक्षित करती है, क्योंकि विधायिका सम्बन्धी शक्तियॉ देश की राजनीति में निहित होती है। इस मामले मे भारत कोई अपवाद नहीं रहा है, लेकिन किसी भी देश की राजनीति दो सतहो पर कार्य करती है। एक सतह होती है उसकी वास्तविक नीति निर्माण की ओर और दूसरे का सम्बन्ध वहॉ की समसामयिक राजनीतिक माहौल से होता है। पहले सतह की राजनीति के कार्यान्वयन से पहले राजनैतिक दलो को सत्ता मे आने के लिए व्यापक स्तर पर समीकरणो का निर्माण करना पडता है।

भारत की सामाजिक विभिन्नताओ के कारण देश की राजनीतिक सत्ता पर आसीन होना आज किसी भी एक दल के लिए एक बहुत ही दुरूह कार्य हो चला है। अत. आम चुनावो मे मतदाताओ को इच्छित दिशा मे ध्रुवीकृत करने के उद्देश्य से राजनीतिक दलो मे एक प्रतिस्पर्धा सी चलती रहती है। इस प्रतिस्पर्धा मे कई बार सामाजिक तौर से सवेदनशील और अवाछनीय पहलुओं का राजनीतिकरण होता रहा है। किसी भी सवेदनशील पहलू का जरूरत से ज्यादा राजनीतिकरण होने के पश्चात् इनका देश के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है अर्थात राजनीतिक दल सत्ता तक पहुॅचने की असीम इच्छा मे इन दो सतहो की राजनीतियो मे कई बार धाल-मेल भी करती रहती है। अत. राजनीतिक लाभ के लिए घोषित एक राजनीतिक 'स्टट' जहॉ एक ओर देश की अर्थव्यवस्था को तात्कालिक नुकसान पहुॅचाता है वहीं इसका दीर्घकालिक कुप्रभाव भी पड़ता रहता है।

भारत के प्राकृतिक संसाधनों और मानव साधन की प्रचुरता एक सत्यापित वास्तविकता है,

लेकिन आजादी के पचास वर्षो मे देश आवश्यक वस्तुओ और सेवाओ को उनके मागो के अनुरूप आपूर्ति करने मे पूर्णत सफल नहीं रहा है। इसके लिए कई बाते जिम्मेदार रही है, लेकिन धन की कमी इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण रहा है। आधारिक सरचनाओ और सामाजिक सेवाओं के उचित आपूर्ति के लिए अपार पूँजीगत वस्तुओ की आवश्यकता पडती है और देश मे आने वाले वर्षों मे इस मामले मे और भी असमर्थ होता जाएगा। दूसरी तरफ विश्व के विकासशील ही नहीं बल्कि कई विकसित देशो मे भी आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण के प्रति सरकारे अग्रसर हो रही थी। इस तरह उदारीकरण का मुद्दा भी देश की राजनीति मे घुलती-मिलती कभी-कभी आर्थिक से ज्यादा राजनीतिक बात लगती रही है, लेकिन प्रश्न यह है कि वास्तव मे उदारीकरण और राजनीतिक दलो इन दो बातो के बीच कोई मिलन बिन्दु है तभी तो सरकारे भी बदली, लेकिन उदारीकरण के मामले मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। 'स्टंट' की राजनीति और वास्तविकता की राजनीति की जहॉ मिलन बिन्दु था वहीं पर आज खडा है देश का आर्थिक उदारीकरण।

निश्चित ही उदारीकरण वास्तविकता की राजनीति की श्रेणी मे आता है और इससे जुडी तमाम बाते या तो वह आर्थिक विकास के लिये जरूरी हो या मजबूरी कहीं भी किसी विशेष राजनीतिक लाभ लेने के ध्येय से लिया गया निर्णय नहीं है। उदारीकरण के पीछे 1991 से ही राजनीतिक इच्छा शक्ति भी परिलक्षित होती रही है। सत्तारूढ राजनीतिक दल और देश के अन्य राजनीतिक दलो मे उदारीकरण के प्रति उभरे हुए टीढी आम सहमति का मुख्य कारण देश की अर्थव्यवस्था को कैसे विकसित करने के प्रति एक समसामयिक ज्ञान के ऊँचे स्तर का होना है और वहीं पर उदारीकरण के दर्शन का आर्थिक मिलन बिन्दु आज के राजनीतिक दर्शन से है। बदले हुए समय मे अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित करने और अतराष्ट्रीय स्तर को बनाने के प्रति अपनी कटिबद्धता दर्शाते हुए चीन जैसा साम्यवादी देश भी अपनी अर्थव्यवस्था को खोलना शुरू कर दिया था। 1980 के दशक के उत्तरार्ध मे और चीन के इस उदारवादी नीतियो का परिणाम काफी उत्साह वर्धक रहा है। आज चीन विश्व की सबसे तेज आर्थिक सवृद्धि वाला देश हो गया है। एशिया महाद्वीप मे हो रहे कुल विदेशी निवेश का 70 प्रतिशत से अधिक भाग आज चीन में ही प्रवाहित हो रहा है।

उपर्युक्त सभी बातों ने देश को यह निर्णय लेने को उत्सुक और मजबूर भी किया। अंततः आर्थिक नीतियों में व्यापक बदलाव किया गया। चूँकि उपर्युक्त सभी बाते आज देश की अर्थव्यवस्था को विकसित करने और सुचारू रूप से चलाने के लिए एकमात्र उपलब्ध विकल्प रह गया था। इस विषय पर राजनीतिक दलों में एक आम सहमति का उभरना स्वाभाविक भी था, क्योंकि यह देश की सबसे

ज्वलन्त समस्या है, जिस पर अन्य सभी बाते निर्भर करती है। देश की यह वास्तविकता आज भारतीय राजनीतिक दलो को उदारीकरण के मुद्दे पर एक मिलन बिन्दु पर लाकर खडी करती है।

वर्तमान आम चुनाव के अवसर पर देश की सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दलो ने उदारीकरण के प्रति अपने विचारो को खुले अर्थो मे घोषित किया। किसी भी दल ने इसको स्थगित करने या विपरीत दिशा मे चलाने की बात नहीं की। कुछ दलो ने इसमे कुछ नये विचारो के समावेश की बात अवश्य की है। कुल मिलाकर उदारीकरण की प्रक्रिया चलती रहेगी इसमे कोई दो मत नहीं है अर्थात् इस मुद्दे पर राजनीतिक दलो मे मतैक्यता है कि उदारीकरण देश के हित मे हो रहा है और होता भी रहेगा।

उदारीकरण और राजनीतिक दलो के अर्तसम्बन्धो को विभिन्न पहलुओ की चर्चा करने के बाद एक अन्य महत्वपूर्ण बात की चर्चा आवश्यक हो जाती है। यह बात भूमण्डलीयकरण की जो विश्व की सभी अर्थव्यवस्था को खुली अर्थव्यवस्था बनने और एक दूसरे से जुडने पर मजबूर कर रहा है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो उदारीकरण के साथ स्वत ही शुरू हो जाता है। दूसरी तरफ विश्व की विकसित और शक्तिशाली अर्थव्यवस्था मे अन्य देशो को मजबूर कर रही है कि वे अपनी अर्थव्यवस्थाओं को विश्व निवेशको के लिए खोले। वास्तविकता यह है कि आज कोई भी विकास की इच्छा रखने वाला देश अपनी अर्थव्यवस्था को अधिक दिनो तक बद नहीं रख सकता। अत आज आर्थिक उदारीकरण एक घरेलू प्रक्रिया नहीं है बल्कि उसके लिए अतर्राष्ट्रीय कारक भी जिम्मेदार है और इन कारको पर भारत की राजनीतिक दलो का कोई नियत्रण नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ विश्व मे कुछ ऐसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का उदय हुआ है, जो विश्व के अधिकतम देशो मे उत्पादन और विपणन कर रही है। अत्यधिक लाभ और पूँजी की बहुलता के बल पर इन्होंने विश्व की सबसे बेहतर तकनीकी और प्रबन्धन पद्धतियो का प्रयोग करके अपनी उत्पादन खर्च के अन्य घरेलू कम्पनियो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और अतत ये कम्पनियॉ या तो इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियो मे समाहित हो जाती है। सयुक्त उद्यम लगाती है या फिर बन्द हो जाती है। कुल मिलाकर इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की शक्ति बढती ही जाती है। पोर्ट फोलियो के मामले मे भी यही बात है। दूसरी तरफ इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अपने उद्भव स्थान वाले देश की राजनीतिक सत्ता पर व्यापक अधिकार भी प्राप्त है, जो अपने देश की राजनीतिक को प्रभावित करके उस देश की विदेश नीति द्वारा भारत जैसे विकासशील देश को प्रभावित भी करती है। उपर्युक्त सभी बाते आज विश्व के विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के साथ लागू है और कोई भी देश इससे वंचित नहीं है अर्थात् भारतीय राजनीतिक दलों में उदारीकरण के मुद्दे पर एक समेकित विचारधारा का

उद्य होना घरेलू के अलावा एक विदेशी बात भी हो सकती है। इस प्रकार हमारे राजनीतिक दलो की आर्थिक उदारीकरण के प्रति रूख और विचारो का रूझान समझने मे आसानी होती है।

1970 से 1990 की अवधि मे ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका, जापान, मैक्सिको, न्यूजीलैण्ड, तथा इटली जैसे विकसित देशो मे आर्थिक उदारीकरण एव निजीकरण का दौर काफी सफल रहा है तो केन्या कोलम्बिया, कोस्टाराइका, घाना, चिली, जमैका, जाम्बिया टोगो, टर्की, तजानिया, नाइजीरिया, फिलिपाइन्स, ब्राजील, मालावी, मेडागास्कर, सेनेगल, तथा मोरक्को जैसे विकासशील देशों मे उदारीकरण एवं निजीकरण की प्रक्रिया उत्पादकता, रोजगार, पूँजी निवेश तथा औद्योगिक उत्पादन बढाने मे असफल रही है।[2] सफलता तथा असफलता का यह भेद विकसित एव 'विकासशील' की बजाय राजनीतिक स्थिरता एव पूर्ण वचनबद्धता की ओर विशेष सकेत करता है। चीन इसका स्पष्ट उदाहरण है, जहॉ राष्ट्रीय हितो के मद्देनजर आर्थिक सुधारो की प्रक्रिया विगत 15 वर्षों से जारी है तथा सुधारो के फलस्वरूप वह 'आर्थिक' महाशक्ति का रूप ग्रहण कर चुका है। भारत मे 1991 मे विकास की नयी राह के रूप मे आर्थिक उदारीकरण एव निजीकरण का अनुसरण किया गया है। यदि यह व्यूह रचना पूर्ण राजनैतिक इच्छा शक्ति तथा दृढ प्रशासनिक व्यवस्था के मद्देनजर तीव्र गति से जारी रखी जाती है तो सन् 2000 तक भारत न केवल चीन से आगे निकल सकता है वरन् विश्व की प्रमुख आर्थिक शक्ति का स्थान ग्रहण कर सकता है। आर्थिक उदारीकरण एव सरचनात्मक सुधारो के बाद अर्थव्यवस्था मे आर्थिक एव सामाजिक क्षेत्र मे गतिशीलता का मार्ग प्रशस्त हुआ है, बैंकिग एवं वित्त के क्षेत्र मे नवीन क्रान्ति का संचार हुआ है, सुदृढ़ मुद्रा एव पूँजी बाजार का विकास हुआ है। भुगतान सतुलन, विदेशी मुद्रा भडार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा निर्यातों मे महत्वपूर्ण सकारात्मक सुधार हुआ है। वैधानिक जटिलताओ तथा राजकीय नियमनो से क्रमश मुक्ति के कारण उद्योग कृषि, ऊर्जा, परिवहन, बिजली, एव वित्त के क्षेत्र मे निजी क्षेत्र एव विदेशी कम्पनियो की व्यापक सहभागिता निरन्तर बढती जा रही है तथा सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका आधारभूत एवं जन कल्याणकारी कार्यों तक सीमित होती जा रही है। इन सबके फलस्वरूप विश्व स्तर पर भारतीय अर्थव्यवस्था एक महत्वपूर्ण आर्थिक खिलाड़ी के रूप में उभरी है। यद्यपि उदारीकरण के बाद गरीबी, बेरोजगारी,मुद्रास्फीति,विदेशी कर्ज, राजकोषीय घाटे तथा कृषि की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है तथा आर्थिक परिवर्तनों को लेकर अर्थव्यवस्था में भय एवं अनिश्चितता का माहौल बना हुआ है फिर भी यह भय काल्पनिक, अल्पकालीन एवं ढुलमुल राजनीतिक व्यवस्था का परिणाम माना जा सकता है।

---

2. *योजना· सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अक 3, 31 मार्च 1995 पृष्ठ सख्या-3*

भारत, नेपाल, पाकिस्तान बाग्लादेश इसका स्पष्ट उदाहरण है जहाँ लबे समय से ढुलमुल एव राजनैतिक व्यवस्था के कारण आर्थिक उदारीकरण से वाछित सामाजिक-आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं हो पाये है। दूसरी ओर कोरिया, जापान, सिगापुर तथा ताइवान जैसे देश का उदाहरण भी हमारे सम्मुख है जिन्होने बेहतर राजनीतिक व्यवस्था से आर्थिक उदारीकरण एव निजीकरण के द्वारा बेहतर सामाजिक-आर्थिक विकास का लक्ष्य हासिल करते हुए मूलभूत समस्याओ का उपयुक्त समाधान किया है तथा विकास की प्रक्रिया मे इसमे मीलो आगे पहुँच गये है। चीन इसका सबसे सफल एव सर्वोत्तम उदाहरण है जिसने राष्ट्रीय हितो के मद्देनजर आर्थिक उदारीकरण एव निजीकरण को अपनाकर विगत 15 वर्षों मे न केवल व्यापक विदेशी निवेश आकर्षित किया है अपितु सुधार प्रक्रिया के कारण महत्वपूर्ण आर्थिक महाशक्ति के रूप मे उभरकर सामने आया है। 1980 के दशक के व्यापक मदी के बावजूद यूरोपीय राष्ट्रो मे आर्थिक उदारीकरण एव निजीकरण का सफल दौर भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास का लक्ष्य निजी क्षेत्र की अहम् भूमिका के द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

अब प्रश्न यह है कि आर्थिक विकास की जिस नयी राह मे प्रवेश किया जा चुका है, क्या पुन· उससे पीछे हटा जा सकता है? क्या वर्तमान परिवेश मे आर्थिक उदारीकरण ही एक मात्र उपयुक्त विकल्प है? क्या नयी व्यवस्था सामाजिक-आर्थिक समस्याओ का समाधान करने मे रचनात्मक साबित हो सकती है? क्या उदारीकरण की यह मात्रा एक निश्चित मात्रा बन सकती है।

जहाँ तक आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रमो से पीछे हटने का प्रश्न है, यह असभव तो नहीं अत्यधिक जटिल अवश्य है। विगत तीन वर्षों मे आर्थिक नीतियो में जिस तरीके से परिवर्तन किये गये है तथा सार्वजनिक क्षेत्र मे अपनिवेश के साथ अहम् क्षेत्रो मे निजी क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की भागीदारी को प्रवेश किया गया है, उससे अर्थव्यवस्था मे गतिशीलता आयी है तथा विश्व-स्तर पर भारत की एक नयी छवि उभरी है। यदि आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रमों से पुन· पीछे हटा जाता है या सार्वजनिक उपक्रम तथा लाइसेंस कोटा एव परमिट-राज पर पुन· बल दिया जाता है तो बीमार भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक दुष्चक्रों के ऐसे जाल में फस सकती है जहाँ से निकलने के सभी रास्ते बंद नजर आते हैं तथा जिस पर चलकर अर्थव्यवस्था कहीं की न होगी। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं कि 1990 के बाद विश्व के रंगमच पर जिस प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, उसमें आर्थिक उदारवाद तथा मुक्त व्यवस्था ही सर्वोत्तम नजर आती है। साम्यवाद के पतन, अमरीकी एकाधिकार तथा विश्व व्यापार संगठन गैट समझौतों से पूरी दुनिया एक ऐसी व्यवस्था में तब्दील हो चुकी है

जिससे पृथक रहना एक देश के लिए असभव है। आर्थिक उदारवाद तथा विश्व व्यापार सगठन व्यवस्था दुनिया को स्वतत्र व्यापार की दिशा मे बढाने जा रही है। भारत भी इस नयी व्यवस्था से जुड़कर अपने आर्थिक तन्त्र को बेहतर बना सकता है, यदि भारत विश्व व्यवस्था के साथ वर्तमान परिवेश मे नहीं जुड पाता है या तेजी से आर्थिक उदारवाद की राह पर नहीं चल पाता है तो विश्व अर्थव्यवस्था के साथ वह सदैव के लिए आर्थिक दुष्चक्र के गहरे जाल मे फंस सकता है।

औचित्य :

तीन वर्ष बीत जाने के बाद भी आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रमो के प्रति अनिश्चितता, भय तथा आशंका की स्थिति बनी हुई है। इसका मूल कारण निश्चित पारदर्शी उदारीकरण कार्यक्रम का न होना, दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति का अभाव तथा उदारीकरण से शीघ्र एवं व्यापक लाभों की उम्मीद है। यद्यपि तीन वर्षो के बाद भी अर्थ व्यवस्था में उदारीकरण कार्यक्रमों के प्रति अनिश्चितता बनी हुई है, फिर भी इस दिशा की प्रगति सर्वत्र ज्ञात है। बढ़ता विदेशी विनियोग, निर्यातो में वृद्धि, विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि, औद्योगिक क्षेत्र मे गतिशीलता आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। यदि पूर्ण राजनैतिक इच्छा शक्ति सामाजिक-आर्थिक मुद्दों (गरीबी, रोजगार, मुद्रास्फीति, संतुलन, पर्यावरण, मानव संसाधन विकास) के मद्देनजर आगामी पाँच वर्षों हेतु एक निश्चित पारदर्शी आर्थिक कार्यक्रम बनाया जाता है तो अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में अनिश्चितता का दौर समाप्त हो सकता है तथा समग्र सामाजिक-आर्थिक कायाकल्प हो सकता है।

भारत में बढ़ता व्यापार, बजट तथा राजकोषीय घाटा, व्यापारिक, वित्तीय एवं वाणिज्यिक नीति की कठोरता, मंदी एव तेजी की सह उपस्थिति, बिगड़ता भुगतान सतुलन एवं प्रारक्षित विदेशी मुद्रा कोष का दिवालियापन, आर्थिक स्थिरीकरण, हवाला बाजार में सुधार, रूपये की परिवर्तनीयता तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं, जिनकी पृष्ठभूमि में नेहरू-महालोनोबिस मॉडल का पटाक्षेप कर सुनियोजित नयी आर्थिक व्यवस्था की अवधारणा जुलाई, 1991 में स्वीकार की गयी। प्राथमिकताएं जो निम्नलिखित इस प्रकार हैं .

1. नयी औद्योगिक नीति में बदलाव :

आर्थिक उदारवाद भारत में 24 जुलाई 1991 में नयी औद्योगिक नीति की घोषणा के साथ शुरू होता है। इस नीति के प्रमुख अवयव इस प्रकार है -

1. औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति।

2. विदेशी पूँजी निवेश।

3 तकनीकी सहयोग।

4. सार्वजनिक क्षेत्र पर नया दृष्टिकोण तथा एकाधिकार प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार तथा विदेशी विनिमय नियमन, तथा फेरा अधिनियम 1973 के प्रति सुधार का प्रस्ताव।

औद्योगिक लाइसेसिग नीति के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक पर्यावरण इत्यादि से सम्बन्धित 18 उद्योगों को तथा सार्वजनिक क्षेत्र हेतु सरक्षित 17 उद्योगो में से 8 को संरक्षण प्राथमिकता प्राप्त हुई। 1993 मे लाइसेसिग क्षेत्र में और उदारीकृत व्यवस्था लागू करके तीन अन्य उद्योगो यथा आटोमोबाइल्स, श्वेत तथा चमडा उद्योग को लाइसेस से मुक्त कर दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र में 20 प्रतिशत शेयर बिक्री प्रस्ताव पारित हुए। 1994-95 मे 4000 करोड रूपये के सार्वजनिक क्षेत्र के शेयर निर्गत किये गये है। प्रदूषण वाले उद्योगो को नगर की सीमा से 20 कि.मी. दूर रखने की व्यवस्था की गयी। नयी औद्योगिक नीति के तहत यह व्यवस्था की गयी है कि देशी उद्यमी अपनी तकनीकों का एवं विदेशी तकनीको का आवश्यकतानुसार परीक्षण करवा सकते है तथा अपने निवेश व्यूह रचना में यथोचित परिवर्तन ला सकते हैं। एकाधिकार प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (M.R.T.P.) तथा फेरा में छूट के माध्यम से विदेशी निवेश प्रोत्साहित हुआ है तथा सरकारी तौर पर उच्च प्राथमिकता क्षेत्र हेतु 51 प्रतिशत इक्विटी आवटित की गयी है।[3] गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र हेतु विदेशी निवेश संबर्द्धन बोर्ड (F.I.P.B.) का गठन किया गया जिसके तहत् निवेश पर रायल्टी सीमा (C.I.F.) सहित घरेलू बिक्री का 50 प्रतिशत तथा विदेशी बिक्री आय का 8 प्रतिशत होगा। इस प्रकार औद्योगिक नीति के पुनर्गठन से औद्योगिक क्षेत्र में बडे पैमाने पर लाभार्जन की संभावनाएं बढ़ी हैं।

2. व्यापार नीति में परिवर्तन :

व्यापार नीति मे परिवर्तन बास्केट करेन्सीज (ड्यूशमार्क येन फ्रैंक स्टर्लिंग) के सापेक्ष मौद्रिक सामंजस्य, रेप लाइसेंसिंग प्रणाली की समाप्ति, एक्जिम स्क्रिप की व्यवस्था रूपये की परिवर्तनीयता तथा औद्योगिक निर्यात परक इकाइयों को पूँजीगत उपकरणों पर आयात शुल्क में कमी तथा करों के ढॉचे को पुर्नगठित एवं समायोजित रूप में शुरू होता है। 1992-97 के लिए तक पंचवर्षीय सशक्त व्यापार नीति बनायी गयी जिसके तहत नयी त्रिस्तरीय, आयातों एवं निर्यातों की कैनेलाइज सूची तैयार की गयी, इसके अन्तर्गत आयात निषिद्ध क्षेत्र हेतु वस्तुएं, लाइसेंस के आधार पर 70 वस्तुएं तथा

---

3. मामोरिया, डॉ. चतुर्भुज एवं जैन, डॉ. एस.सी : भारतीय अर्थ शास्त्र (15 वाँ सस्करण) 1997, पृष्ठ सख्या 153

सरकारी सगठनो के माध्यम से वस्तुओ का आयात होगा। निर्यात क्षेत्र मे क्रमश. मदो की सख्या 7,62,010 की है। व्यापारिक क्षेत्र को अधिक सशक्त बनाने हेतु 144 वस्तुओ को नकारात्मक सूची से बाहर किया गया। निर्यात सम्बर्द्धन हेतु निर्यात गृहों, व्यापार गृहो, स्टार गृहो की पहचान, पूॅजीगत माल निर्यात प्रोत्साहन योजना साथ ही साथ निर्यातपरक इकाइयॉ एव निर्यात प्रसस्करण क्षेत्र योजना का समेकित प्रभाव यह रहा है कि अतराष्ट्रीय बाजार में मदी होने तथा आन्तरिक क्षेत्र में उदारता के बावजूद 1993-94 में निर्यातों मे 21 प्रतिशत की वृद्धि तथा आयातों मे 1.3 प्रतिशत की कमी (यूनाइटेड सोवियत अमेरिका डालर) के सापेक्ष उल्लेखनीय रूप में दर्ज की गयी।

3. प्रारक्षित विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि :

जनवरी 1991 मे इराक-कुवैत संघर्ष से जनित समस्या से भारतीय देनदारियों की स्थिति इतनी खराब होती गयी कि देश पगुता की ओर बढ़ने लगा था। विदेशी-प्रारक्षित भण्डार मात्र 1.1 मिलियन अमरीकी डालर रह गया था। उस स्थिति से निबटने हेतु उदारीकृत व्यवस्था के माध्यम से भारतीय स्टेट बैंक के क्रेडिट पर 20 टन तथा बैंक आफ इंग्लैण्ड को 47 टन स्वर्ण प्रेषित किया गया फलतः 6 बिलियन डालर विदेशी मुद्रा अर्जित की गयी।[4] आज उदारीकृत व्यवस्था का ही परिणाम है कि हमारे स्वर्ण वापस हो गये, तथा भारतीय शेयर बाजारो मे सस्थागत निवेशकों, भारतीय कम्पनियों के यूरो-डालर निर्गमों आदि के माध्यम से जनित विदेशी प्रारक्षित कोष लगभग 13 बिलियन डालर का हो गया है जो देश के क्रेडिट रैकिंग स्तर में व्यापक सुधार करता है।

4. राजकोषीय घाटा:

आर्थिक उदारवाद के शुरूआती दिनों में प्राथमिकता परक संकल्पों में 1994-95 तक राजकोषीय घाटा को कम करके 10 प्रतिशत पर लाने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि उस समय सातवीं योजना का औसत कुल घरेलू उत्पाद का 8.2 प्रतिशत था। यह स्तर 1990-91 में कुल घरेलू उत्पाद का 8.43 प्रतिशत, 1991-92 में 7 प्रतिशत तथा 1992-93 में 3.7 प्रतिशत, 1993-94 में लक्ष्य (36959 करोड़ रूपये) 4.71 प्रतिशत की जगह (58551 करोड़ रूपये) 7.3 प्रतिशत रहा। इस क्षेत्र में असफलता के पीछे राजस्व खातों पर मदों के बढ़ते आकार तथा ब्याज अदायगी सब्सिडी गैर योजनागत खर्च, सरकारी खर्चों में बृद्धि रही। इसे पूरा करने हेतु पूँजी खाते का सहारा लिया जा रहा है जो निन्दनीय है। जाहिर है कि 1993-94 में गैर योजनागत खर्च 86084 करोड़ रूपये में से 46000

---

4. मासिक पत्रिका : सिविल सर्विसेज स्कैनर, जुलाई 1994, पृष्ठ सख्या 48

(53 प्रतिशत) करोड रूपये ब्याज अदायगियो पर, सब्सिडी पर 1000 करोड़ रूपये केन्द्रीय सरकार के खर्चपर लगभग 1200 करोड रूपये का व्यय हुआ। अत राजकोषीय संतुलन हेतु गैर योजनागत और गैर विकासात्मक व्ययो मे व्यापक कमी तथा सार्वजनिक क्षेत्रो से व्यापक आय शेयरो के माध्यम से 1994-95 मे 4000 करोड़ रूपये जुटाने का लक्ष्य है आवश्यक है। उसके लिए औद्योगिक उदारवाद की जगह अनियोजित आर्थिक व्यूह रचना उत्तरदायी है। 1996-97 मे राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 5.2 प्रतिशत रहा जबकि 1997-98 में राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 5.8 प्रतिशत होगा।[5]

5. रूपये की चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता:

1992-93 के बजट प्रावधानों से भारतीय आर्थिक उदारीकृत व्यवस्था का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है जिसमे व्यापार सम्बर्द्धन, सरलीकरण, एवं हवाला बाजार की व्यापक अनियमितताओ को कम करने हेतु रूपये को आशिक तौर पर 60 प्रतिशत बाजारी कीमतो पर जिसका निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के आधार पर तय होता है तथा 40 प्रतिशत रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित दरों पर अभ्यर्पित माना गया। इसी व्यवस्था को उदारीकृत विनिमय दर प्रब्रन्ध प्रणाली कहा जाता है। सुधारों के तीसरे चरण में रूपये को पूर्ण परिवर्तनीयता प्रदान कर एकल विनिमय दर व्यवस्था स्थपित की गयी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत विनिमय दर निर्धारण विदेशी विनिमय बाजार में मुद्राओं की बाजारी शक्तियों द्वारा तय होता है। इसका लेन-देन रिजर्व बैंक द्वारा प्राधिकृत डीलरों के माध्यम से ही निर्यात एवं निवेश नीतियों के तहत हो सकता है। विश्व बैंक का मानना है कि भारत में उदारीकरण कार्यक्रम के तहत् अगला मुख्य कदम रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता बनाना होगा।

मार्च 1993 तक दोहरी विनिमय दर लागू थी जो कि निर्यातकों के लिए भेदभावपूर्ण थी। मार्च 1993 में दोहरी विनिमय दर के स्थान पर एकीकृत विनियम दर व्यवस्था शुरू की गयी। दूसरों शब्दो मे कहे तो विनिमय दर बाजार के उतार-चढ़ाव से निर्धारित होने लगी। विनिमय दर एकीकृत करने के बाद ही इसी अवधि में विदेशी मुद्रा का प्रभाव बढ़ा जिससे रूपया डालर के मुकाबले मजबूत हुआ। 1 फरवरी 1993 में एक डालर की कीमत 32.14 रूपये थी जो कि जून 1993 में घटकर 31.37 रूपये रह गयी यही दर मार्च तक बनी रही।

इस वर्ष मार्च तक भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार बीस अरब डालर था जबकि मार्च 1993 के

---

5. *आर्थिक समीक्षा · भारत सरकार 1997-98, पृष्ठ संख्या- 8*

अत तक यह भण्डार 6 43 अरब डालर और मार्च 1991 मे 2 23 अरब डालर था विदेशी भुगतान मे यह परिवर्तन आर्थिक सुधार कार्यक्रमो की एक महत्वपूर्ण सफलता है। पिछले चार वर्षों मे देश की अर्थव्यवस्था स्थयित्व और टिकाउ भुगतान सतुलन की तरफ बढ़ी है। आयात-निर्यात अनुपात मे उल्लेखनीय सुधार आने और अदृश्य खातो में प्रवाह बढने के बाद चालू खाते का घाटा कम हुआ है। 1990-91 मे यह घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 3.3 प्रतिशत था जो कि 1993-94 मे घटकर 05 प्रतिशत रह गया। पिछले दशक के दौरान चालू खाते मे घाटे की भरपाई के लिए विदेशो से वाणिज्यिक कर्ज लेने की दर मे कुल पूँजी प्रवाह का 25 प्रतिशत थी जो कि 1993-94 में घटकर 9.1 प्रतिशत पर आ टिकी।[6] कर्जे के मामले में किये गये दो परिवर्तन महत्वपूर्ण है। पहला यह है कि लघु अवधि के कर्जे की अदायगी के लिए लम्बे समय से बकाया कार्यों में फेर बदल करना। मार्च 1991 तक भारत पर आठ अरब दस करोड़ डालर लघु अवधि का बकाया कर्ज था। जो कि मार्च 1994 में घटकर तीन अरब साठ करोड़ डालर रह गया। दूसरा परिवर्तन यह है कि रियायती वाणिज्यिक कर्ज लेने के स्थान पर सीधे और पोर्टफोलियो निवेश को तरजीह देना। 1993-94 मे करीब चार अरब दस करोड़ डालर का विदेशी निवेश हुआ जो कुल पूँजी प्रवाह का 40 प्रतिशत से भी अधिक है। इसका एक बड़ा हिस्सा पोर्टफोलियों निवेश से प्राप्त हुआ। सीधे पूँजी निवेश का ग्राफ भी ऊपर चढ़ता नजर आ रहा है। 1994-95 के वर्ष में भी कुल पूँजी के प्रवाह में विदेशी निवेश का हिस्सा पिछले साल के मुकाबले बढ़ने की संभावना है। सरकार ने जून 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ इकाइयों को शेयर बाण्ड जारी करके अपने लिए संसाधन जुटाने की इजाजत दी थी। बढते विदेशी कर्ज के बावजूद भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान दायित्यों को पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी विदेशी कर्ज की वर्तमान दर को स्थिर रखने के उददेश्य से 1995-96 के दौरान लिये गये वाणिज्यिक कर्जों पर तीन अरब पचास करोड डालर का शुल्क लगाया गया है। संक्रमण काल से गुजर रही भारतीय अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित अर्थव्यवस्था के जाल से निकाल कर विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धी बनाने की दशा में चलते हुए चालू खाते पर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता लागू कर दिया जाना निश्चित ही एक क्रान्तिकारी कदम है। इस व्यवस्था से अब आयातकों एवं निर्यातकों को बाजारी शक्तियों के तहत खुलकर कार्य करने का अवसर मिलेगा तथा विदेशों से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तौर पर विदेशी मुद्रा के अर्जकों की यह शिकायत दूर हो जायेगी कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित नीची दर पर विदेशी विनियम अभ्यर्पित करना होता है। इस शताब्दी के अन्तिम दशक के प्रथम वर्ष से ही आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण की प्रक्रिया की सफलता के लिए भी पूर्ण परिवर्तनीयता लागू किया जाना आवश्यक था।

---

6. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार : 1994-95 पृष्ठ संख्या -8

पूर्ण परिवर्तनीयता का सीधा अर्थ तो यह है कि किसी देश की मुद्रा को अन्य देशो की मुद्राओ से मनचाही मात्रा मे परिवर्तित कर लिये जाने की छूट, लेकिन देश काल एव परिस्थितियो के अनुसार पूर्ण परिवर्तनीयता की परिभाषा मे परिवर्तन होता रहा है। स्वर्ण मुद्रामान के अन्तर्गत पूर्ण परिवर्तनीयता को एक निश्चित विनिमय दर पर मुद्रा को स्वर्ण मे परिवर्तित कर लेने के अधिकार के रूप मे परिभाषित किया जाता था, अब जबकि स्वर्ण मुद्रामान इतिहास के पन्नो तक सीमित है तो पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत एक मुद्रा को पूर्ण परिवर्तनीय उसी दशा मे कहा जाता है जब इसका धारक अपने पास उपलब्ध मुद्रा को मनचाही मात्रा मे प्रचलित बाजार दर पर विश्व की प्रमुख मुद्राओ मे परिवर्तित कर लेने के लिये स्वतंत्र हो और यह स्वतन्त्रता सभी प्रकार के लेन-देनो पर लागू किया जाता है तो इसे पूर्ण परिवर्तनीय कहते हैं। जब यह भुगतान सतुलन के चालू खाते के लेन-देनो तक सीमित होती है तो इसे चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता की संज्ञा दी जाती है और जब पूँजी खाते के लेन-देन भी स्वतन्त्रता के साथ लागू किये जाने लगते है तो मुद्रा को पूर्ण परिवर्तनीय माना जाने लगता है।

योजनाकाल के प्रारम्भ से ही भारतीय रूपये की विनिमय दर एवं विदेशी विनिमय सम्बन्धी लेन-देन अत्यधिक नियन्त्रित रहे हैं। योजनागत प्राथमिकताओ को पूरा करने, आवश्यक आयातों की पूर्ति को बनाए रखने, घरेलू उद्योगो को संरक्षण प्रदान करने तथा औद्यौगिक विकास की गति को तेज करने के लिए विगत कुछ वर्षों में घरेलू एव विश्वस्तर पर जो परिवर्तन हुए उनके तहत विदेशी विनिमय की नियन्त्रित व्यवस्था में परिवर्तन किया जाना आवश्यक समझा जाने लगा। सोवियत सघ का विघटन, जर्मनी का एकीकरण, विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे संयुक्त राज्य अमरीका का उदय, पश्चिमी विकसित देशो को जापान की जबरदस्त चुनौती, चीन, सिगापुर, ताइवान तथा दक्षिण कोरिया आदि विकासशील देशो मे तीव्र आर्थिक विकास विकसित देशो मे मंदी का दौर आदि कुछ ऐसी प्रेरक परिस्थितियाँ थी जिन्होंने भारत में पूर्ण परिवर्तनीयता का मार्ग प्रशस्त किया। रूपये को परिवर्तनशील बनाने के इस निर्णय के पीछे सरकार की सोच यह रही कि इससे एक तरफ जहॉ बड़ी मात्रा मे विदेशी मुद्रा देश के अन्दर आएगी और विदेशी मुद्रा के प्रारक्षित भण्डार में वृद्धि होगी, वहीं दूसरी ओर विदेशी मुद्रा को काला बाजार या हवाला बाजार में जाने से रोंका जा सकेगा। इस विचार और नीति के तहत ही सर्वप्रथम 1992-93 के बजट में 'रूपये की आंशिक परिवर्तनीयता' सम्बन्धी प्रावधान लागू किये जाने की घोषणा की गई।[7] इस प्रावधान के अनुसार सकल अर्जित विदेशी मुद्रा का 40 प्रतिशत भाग सरकारी विनिमय दर पर तथा शेष 60 प्रतिशत भाग खुले बाजार की दर पर रूपये

7. *त्रिपाठी, डॉ. बद्री विशाल : भारतीय अर्थव्यवस्था (पंचम संस्करण 1997) पृष्ठ सख्या 424*

मे परिवर्तित किया जा सकता था। इसके तात्कालिक प्रभाव के परिणामस्वरूप रूपये की बाजारी विनियम दर 10 6 प्रतिशत से गिरकर 7 मार्च 1992 को 29 रूपये प्रति डालर हो गया, किन्तु इस समय 10 मार्च 1998 को 39 6 रूपये प्रति डालर हो गया।

विदेशी मुद्रा की खुले बाजार की दर सरकारी दर से अधिक होती है। जिसके कारण अधिसंख्य व्यक्ति अपनी अर्जित विदेशी मुद्रा को खुले बाजार मे ही रूपये से परिवर्तित कराना चाहते है। इस प्रवृत्ति से पूर्व मे भारतीय अर्थव्यवस्था खासकर विदेशी मुद्रा भण्डार को काफी क्षति पहुॅची है, अप्रैल 1992 से लागू उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्धन प्रणाली लागू किये जाने से स्थिति मे बदलाव आया। इससे निर्यातको, पर्यटको, अप्रवासी भारतीयो को विदेशी मुद्रा विनियम में अतिरिक्त लाभ प्राप्त हुआ।

रूपये की आशिक परिवर्तनीयता की सफलता से जहॉ रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता का मार्ग प्रशस्त हुआ वहीं यह स्थिति स्पष्ट हो गई कि रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बनाए बगैर हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक प्रतिस्पर्धा का मुकाबला नहीं कर सकते। फलत वर्ष 1993-94 के बजट मे रूपये को व्यापार खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय बनाने की घोषणा की गई अर्थात निर्यातक व विदेशी मुद्रा के अन्य अर्जक अपनी समस्त अर्जित विदेशी मुद्रा को सरकार अथवा रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित मूल्य की अपेक्षा अब खुले मुद्रा बाजार मे माग एव पूर्ति शक्तियो द्वारा निर्धारित बाजारी दर रूपए से परिवर्तित कर सकते थे। दूसरे शब्दों में विदेशी मुद्रा के बैंको द्वारा बाजार मे प्रचलित कीमत पर खरीदे जाने का प्रावधान कर दिया गया। इसके साथ-साथ सभी प्रकार की प्राप्तियॉ चाहे वे चालू खाते की हो या पूॅजी खातें की भी हो, पूर्ण परिवर्तनीय कर दी गई हैं, लेकिन इस बजट घोषणा के बावजूद रूपया पूर्ण परिवर्तनीय नहीं बन सका और यह परिवर्तनीयता सिर्फ व्यापार खाता तक ही उपलब्ध हो सकी। इसका कारण यह बताया गया कि देश का भुगतान संतुलन निरन्तर प्रतिकूल चल रहा है, ऊॅचे राजकोषीय घाटे और भुगतान सन्तुलन के चालू खाते के घाटे के कारण भी इस मार्ग में रूकावट आई सरकार ने वायदा किया कि भुगतान संतुलन और विदेशी मुद्रा भण्डार की स्थिति ठीक होते ही रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता लागू कर दी जायेगी।

वर्ष 1993-94 में भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए निर्विवाद रूप से सुखद और अच्छे परिणामों वाला रहा। इस एक वर्ष में देश के भुगतान संतुलन को जहाँ सुधारने का मौका मिला, वहीं विदेशी मुद्रा भण्डार में भी अपूर्व वृद्धि देखने को मिली। वर्ष 1993-94 में देश के निर्यात में डालर के हिसाब से 20.37 फीसदी की बढ़ोत्तरी तथा आयात में 6.84 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई। इस वर्ष उक्त अवधि में व्यापार घाटा मात्र 1.04 मिलियन डालर रहा जो 1992 के व्यापार घाटे का लगभग एक तिहाई है।

देश का विदेशी मुद्रा भण्डार जो 30 जून 1991 को मात्र एक अरब दस करोड अमरीकी डालर का था। 31 मार्च 1994 को 19 अरब, 25 करोड 40 लाख अमरीकी डालर (स्वर्ण सहित) पर पहुॅच गया इतनी ही नहीं, एकल विनिमय दर प्रणाली लागू कर दिये जाने के बाद भी रूपये की विनियम दर बहुत बडी सीमा तक स्थिर बनी रही जाहिर तौर पर निर्यात में यह वृद्धि आयात मे कमी, विनिमय दर की स्थिरता और विदेशी मुद्रा भण्डार मे अभूतपूर्व वृद्धि भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए शुभ संकेत था और इसको देखते हुए वर्ष 1994-95 के बजट मे रूपये को चालू खाते मे परिवर्तनीय घेषित कर दिया।

रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता सम्बन्धी नई घोषणा से जरूरत मद व्यक्ति को व्यापारिक लेन-देन, विदेश यात्रा, चिकित्सा एव शिक्षा आदि कार्यों के लिए विदेशी मुद्रा आसानी से खुले बाजार से उपलब्ध हो सकेगी। इसके तहत प्रत्येक व्यक्ति के लिए अब हर वर्ष विदेश यात्रा (पर्यटन आदि) हेतु दो हजार डालर का एक मूल कोटा उपलब्ध होगा उससे पूर्व पर्यटन आदि कार्यों के लिए विदेश जाने वाले व्यक्ति को तीन वर्ष मे एक बार केवल 500 डालर उपलब्ध होते थे। इससे अधिक रकम के लिए रूपया परिवर्तनीय नहीं था। नई व्यवस्था के अन्तर्गत मध्यस्थता शुल्क के लिए पुर्नभुगतान वैधानिक व्यय, परीक्षा शुल्क, पत्राचार पाठ्यक्रमो का शुल्क, पंजीकरण शुल्क, सदस्यता शुल्क, निर्यात सूचना, मानद प्राप्तियॉ, पेटेन्ट, अभिकल्प तथा ट्रेडमार्क आदि का निविदा प्रदत्त पंजीयन या पुर्ननवीकरण शुल्क की सीमा को प्रत्येक लेन-देन के लिए बढाकर 10000 अमरीकी डालर कर दिया गया। इसी तरह व्यवसाय के सिलसिले मे विदेश गमन हेतु पहले केवल 5000 डालर अथवा प्रतिदिन 300 डालर के हिसाब से विदेशी मुद्रा मिलती थी। इससे अधिक विदेशी मुद्रा के लिए रिजर्व बैंक से स्वीकृति लेनी होती थी। वर्ष 1993-94 के बजट मे की गई घोषणा से अब यह कठिनाई दूर हो गयी और अब व्यवसाय के सिलसिले में विदेश जाने वाला व्यक्ति बाजार से आवश्यकतानुसार रूपये के बदले विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकेगा। इसके अतिरिक्त अब अर्जित विदेशी मुद्रा का एक चौथाई भाग इफ्का के तहत सुरक्षित रखा जा सकता है जबकि सौ फीसदी निर्यात मूलक इकाइयों के लिए यह सीमा 50 प्रतिशत तक बढ़ा दी गई है। उल्लेखनीय है कि सरकार ने वर्ष 1993-94 के केन्द्रीय बजट में रूपया को व्यापार खाते में परिवर्तनीय बनाया था और अब नई घोषणा से यह चालू खाते में लगभग सम्पूर्ण परिवर्तनीय बन गया हैं। उससे रूपये का पूॅजी खाते में परिवर्तनीय बनाने की दिशा का मार्ग भी प्रशस्त हो गया है फिलहाल अभी हमें चालू खाते पर ही रूपये की वास्तविक पूर्ण परिवर्तनीयता का लक्ष्य प्राप्त करना होगा और उसके बाद ही पूॅजी खाते पर रूपये की परिवर्तनीय की बात सोंची जा सकती है।

यदि पूर्ण परिवर्तनीयता की परिभाषा के आधार पर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता को परखा जाए तो पता चलता है कि भारतीय रूपया अभी तो पूरी तरह से चालू खाते पर भी परिवर्तनीय नहीं है। विदेशी यात्रा के लिए प्रतिवर्ष 2000 अमरीकी डालर का कोटा निर्धारण एव इफ्का के अन्तर्गत विद्यमान शर्तें इस बात का द्योतक है कि भारत मे विदेशी विनिमय के क्षेत्र मे अनेक प्रकार के नियत्रणो को समाप्त करके उदार बना दिया गया है तथा चालू खाते के अधिकाश लेन-देनों पर अब कोई बहुत अधिक प्रतिबन्ध नहीं रह गए। इसीलिए चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय होते हुए भी रूपया पूर्ण परिवर्तनीयता की परिभाषा की सभी शर्तों को पूरा नहीं करता।

रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बनाए जाने के सम्बन्ध मे यह आशंका हमेशा व्यक्त की जाती रही कि इससे पूँजी पलायन बढ़ेगा और रूपया कमजोर होगा,लेकिन यह आशंका वर्ष 1993-94 में व्यापार खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय घोषित किये जाने से उत्पन्न परिस्थितियों से निर्मूल सिद्ध हुई है अब तक रूपया निरन्तर मजबूत ही बना रहा है। स्थिति यह है कि एक डालर का मूल्य 13 मार्च 1998 को 39.6 रूपये है। इस स्थिति का कारण अधिक निर्यात, कम आयात, विदेशी बैंको द्वारा घोटाले के कारण हुई हानि और पूँजी पर्याप्तता के रूप मे हुई आय, विदेशी संस्थाओं द्वारा दी गई सहायता व ऋण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा अपने भारतीय उद्यम मे इक्विटी बढ़ाने से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति, विदेशी सस्थागत निवेशकों के एक अरब डालर तक निवेश की अनुमति तथा प्रोजेक्ट-इन्वेस्टमेंट के कारण विदेशी मुद्रा का अर्न्तप्रवाह बढा है।

परिवर्तनीय घोषित किये जाने के बाद भी रूपये मे मजबूती बने रहने का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि रूपये की परिवर्तनीयता को पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं रखा गया है। रूपया अधिक मजबूत न बने, इसके लिए रिजर्व बैंक खुले बाजार से डालर की जोरदार खरीदी करता रहा है रिजर्व बैंक खुले मुद्रा बाजार से प्रतिदिन 75 से 100 मिलियन डालर (225 से 300 करोड़ रूपया) की खरीदी करता रहा है। विदेशी विनिमय के क्षेत्र मे भारतीय रिजर्व बैक के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप तथा पूर्ण परिवर्तनीयता के परिणाम स्वरूप विदेशी मुद्रा अर्जकों द्वारा अपने विदेशी मुद्रा को वैद्यानिक मार्ग से परिवर्तित किये जाने के कारण भारत का विदेशी मुद्रा के प्रारक्षित भण्डार 10 मई 1994 को 19.1 विलियन डालर पर पहुॅच गया। निवेश आय प्राप्तियॉ अधिकतर विदेशी मुद्रा प्रारक्षित भंडार के निवेश पर अर्जित ब्याज और बट्टे के तदनुरूप है। अदृश्य के अन्तर्गत निवल अधिशेष में आठवीं योजना के दौरान वर्ष 1992-93 में 1.9 विलियन अमरीकी डालर से वर्ष 1996-97 में 10.6 बिलियन अमरीकी डालर तक वृद्धि अनुमानित है। इसके परिणामस्वरूप अदृश्य के अन्तर्गत निवल अन्तः प्रवाह ने वर्ष 1992-93 में लगभग 23 प्रतिशत

की तुलना मे वर्ष 1996-97 मे भुगतान सतुलन (अमरीकी डालर के रूप मे) व व्यापार घाटे का 74 प्रतिशत वित्तपोषण किया।[8]

6. पूँजी खाते की परिवर्तनीयता :

भारत की आर्थिक सुदृढता और विश्व बाजार मे भारतीय मुद्रा की विश्वसनीयता का एक मानदण्ड यह भी है कि हम अपनी मुद्रा को कितनी सरलता से और किस सीमा तक विदेशी मुद्रा मे परिवर्तित कर पाते है। भारत मे चालू खाते मे परिवर्तनीयता का श्रीगणेश तो कुछ समय पूर्व कर दिया था किन्तु अब पूँजी खाते मे परिवर्तनीयता के लिए भी काम प्रारम्भ किया जा रहा है। पूँजी खाता परिवर्तनीयता एक अत्यन्त संवेदनशील विषय है इसलिए इस दिशा मे वित्त मंत्री ने बहुत सावधानी से आगे बढ़ने का निश्चय किया है। इस बारे मे कोई फैसला लेने से पूर्व तैयारी के लिए उन्होने भारतीय रिजर्व बैक को एक ऐसी रूपरेखा तैयार करने को कहा है जिससे पूँजी खाता परिवर्तनीयता के लिए प्रत्येक चरण पर आवश्यक आर्थिक मानदण्ड निर्धारित किये जायेगे और इस अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विस्तृत समय-सारिणी बनाई जाएगी।

इस बीच जो लोग निर्यात व्यापार द्वारा विदेशी मुद्रा कमाते हैं, उन्हें और सुविधाएं देने की भी घोषणा की गई है। ऐसी मुद्रा के अर्जक अब विदेशों मे कार्यालय खोलकर उनके व्यय की पूर्ति अर्जित विदेशी मुद्रा से कर सकेगे और भारतीय रिजर्व बैक को सूचित किये बिना समुन्द्रपारीय संयुक्त उपक्रम खाते में बाकी शेष राशि मे से डेढ़ करोड अमेरिकी डालर तक की सीमा तक निवेश कर सकेंगे।

वित्त मत्री ने इस बजट मे यह भी घोषणा की है कि विदेशी मुद्रा के लेन-देन के नियमो को अधिक आधुनिक बनाने के लिए और उनमे उदारता लाने के लिए विदेशी मुद्रा प्रबन्ध का एक नया अधिनियम बनाया जायेगा। अभी तक विदेशी पूँजी निवेशक, अनिवासी भारतीय तथा अनिवासी भारतीय विदेशी कम्पनियॉ भारत की किसी कम्पनी में अधिकतम 24 प्रतिशत तक पूँजी निवेश कर सकते थे। उस सीमा को बढ़ाने की माग की जा रही थी।[9] इस बजट में यह छूट दी गई है कि अगर भारतीय कम्पनी के निर्देशक चाहें और कम्पनी की आम सभा इसके लिए विशेष संकल्प पारित करें तो उन मामलों में निवेश की यह सीमा बढ़ाकर 30 प्रतिशत की जा सकती है।

भारतीय कम्पनियॉ पिछले साल लागू किये गये कम्पनी लाभ पर न्यूनतम वैकल्पिक कर को

---

8. इकोनॉमिक सर्वे · भारत सरकार वित्त मंत्रालय 1997-98, पृष्ठ संख्या-79

9. योजना . सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार) अंक 14, मई 1997, पृष्ठ संख्या -5

समाप्त करने की माग करती आ रही थीं, लेकिन वित्त मत्री ने इसे स्वीकार नहीं किया है, तथापि उन्होने इस कर से उन लाभो को मुक्त कर दिया है जो निर्यात व्यापार से प्राप्त होगे। साथ ही उन्होने यह वैकल्पिक कर लगाने और उसकी वसूली के तरीके मे कुछ परिवर्तन कर दिया है।

समझा जाता है कि पूॅजी खाते मे पूर्ण परिवर्तनीय बनाने सम्बन्धी निर्णय से पूर्व विशेष सावधानी बरतने की जरूरत है क्योकि जल्दबाजी मे लिए गए किसी भी निर्णय से रूपया अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय बाजार मे अस्थिर हो सकता है, जिससे मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी नई दिक्कते पैदा हो सकती है। इसके कारण अब रूपया कमजोर नहीं होगा और इसमे प्रति डालर 25-26 रूपये की मजबूती बनी रहेगी। इस अनुमान का आधार यह है कि एक लम्बे समय से विविध प्रकार से कमाई गई विदेशी मुद्रा को अनेक भारतीयो ने हवाला बाजार अथवा अन्य दूसरे तरीके से सीधे स्विस बैक व टैक्स हेवश मे जमा करा रखा है। रूपये की पूर्ण परिवर्तनीय, खासकर आगे चलकर पूॅजी खाते में परिवर्तनीय हो जाने के बाद विदेशी मुद्रा को देश में लाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रह जाएगा। एक अनुमान के अनुसार रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता के बाद देश मे 60 से 80 अरब डालर आने की सम्भावना है जिससे रूपये मे मजबूती आएगी। इसके अतिरिक्त देश मे विद्यमान बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ इस समय डालर रिटर्न की गारण्टी मागती है रूपये के पूर्ण परिवर्तनीय हो जाने के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की यह माग स्वत समाप्त हो जायेगी और इससे रूपये को बल मिलेगा। पिछले कुछ दिनो में मुद्रा स्फीति की दर यो भी दो अको को पारकर चुकी है कहना न होगा कि सरकार इस स्थिति से वाकिफ है और यही कारण है कि रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बनाने सम्बन्धी हर कदम बहुत फूॅक-फूॅक कर आगे बढाया जा रहा है।

सरकार के तमाम प्रयासो के बावजूद वर्ष 1993-94 में राजकोषीय घाटा 54915 करोड रूपये हो जाने की सम्भावना तथा वर्ष 1994-95 के बजट मे 58551 करोड़ रूपये का राजकोषीय घाटा अनुमानित है। अब प्रश्न यह उठता है कि राजकोषीय घाटा कैसे नियन्त्रित किया जाए, यथोचित लागत पर वांछनीय वित्त पोषण तथा मूल्य निर्माण नीतियो के साथ पर्याप्त एवं विश्वसनीय आर्थिक आधार ढॉचे की सेवाएं कैसे प्रदानकी जाएं तथा बुनियादी सामाजिक सेवाओं के लिए सुदृढ कार्यक्रमों के साथ-साथ कृषि उद्योग तथा अन्य क्षेत्रों में व्यापक आधार वाली रोजगारोत्पादक संवृद्धि कैसे सुनिश्चित की जाएं ताकि निर्धनता का तेजी से उन्मूलन हो सके। इन चुनौतियो का सामना करने के लिए आवश्यक है कि केन्द्र के राजकोषीय घाटे को घटाकर यथा सम्भव शीघ्रता से सकल घरेलू उत्पाद के चार प्रतिशत से नीचे रखा जाए। ताकि नौंवीं योजना के

दृष्टिकोण पत्र मे परिकल्पित सरकारी तथा निजी दोनो निवेशों के उच्च स्तरो को वित्त पोषित करने के लिए ब्याज की दरें कम की जा सके तथा रिजर्व बैक से केन्द्रीय सरकार के उधार को रोका जा सके। पूर्ण परिवर्तनीयता की नीति के तहत भारत की एक प्रमुख समस्या तेजी से बढते विदेशी मुद्रा के प्रारक्षित भण्डारो मे जमा विदेशी विनिमय के आर्थिक उपयोग की है यदि इन भण्डारो मे जमा विदेशी विनिमय का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए नहीं किया जाता तो स्फीतिकारी शक्तियॉ पुन सिर उठा सकती है।

मुद्रा बाजार के सूत्रो का मानना है कि पर्याप्त विदेशी मुद्रा भण्डार के बगैर रूपये को पूॅजी खाते मे परिवर्तनीय बनाना जोखिमपूर्ण होगा। माना जा रहा है कि रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता के बाद यदि किसी कारण वश पूॅजी का पलायन अथवा विदेशी मुद्रा का बहिर्गमन शुरू हो जाये तो एहतियात के तौर पर रिजर्व बैंक 11-12 अरब डालर तक विदेशी मुद्रा खुले बाजार मे बेच सके। अपनी मुद्रा को पूर्ण परिवर्तनीय बनाने से पूर्व लगभग सभी देश इस तरह की तैयारी रखते हैं। जर्मनी ने ड्यूर्श मार्क को पूर्ण परिवर्तनीय डिबेंचर बनानेसे पूर्व 50 अरब ड्यूश मार्क का विदेशी मुद्रा भण्डार अपने पास सुरक्षित रखा था। जापान और ब्रिटेन में भी अपनी मुद्रा को पूॅजी खाते मे परिवर्तनीय बनाने से अपने पास विदेशी मुद्रा का पर्याप्त भण्डार सुरक्षित कर लिया था सयोग से इस समय स्थिति भारत के अनुकूल चल रही है जिससे भारत के विदेशी मुद्रा भण्डार मे अच्छी वृद्धि हुई है फिलहाल, इस समय हम यह कह सकते हैं कि चालू खाते के परिवर्तनीयता के बाद अब हम रूपए की सम्पूर्ण परिवर्तनीयता के निकट पहुॅच रहे हैं।

7. स्वर्ण बाण्ड योजना :

सोने की तस्करी द्वारा भारतीय स्वर्ण मूल्यों मे कृतिम उतार-चढाव बना रहता था ऐसी स्थिति में स्वर्ण बाण्ड योजना एक महत्वपूर्ण नीतिगत अवयव के रूप में स्वीकृत हुई। इसके अन्तर्गत 6 माह तक विदेश मे रहने वाले भारतीय नागरिकों को 5 कि ग्रा. स्वर्ण ले आने की छूट दी गयी। जिस पर सीमा शुल्क केवल 450 रूपये प्रति दस ग्राम विदेशी मुद्रा में लगाया जायेगा। बाद में इसे घटाकर 220 रूपये प्रति दस ग्राम विदेशी मुद्रा में देय माना जायेगा।[10]

1993 में स्वर्ण बाण्ड योजना की सफलता से प्रभावित होकर 100 किग्रा चॉदी आयात को मान्यता दी गयी इसमें प्रति कि.ग्रा. सीमा शुल्क 500 रूपये विदेशी मुद्रा में देय निर्धारित किया गया।

---

10. *वार्षिक पत्रिका : प्रतियोगिता दर्पण (भरतीय अर्थव्यवस्था) वर्ष 17,1994-95 पृष्ठ सख्या -16*

इस कडी मे 10 फरवरी 1993 को उत्साहित होकर बैगेज नियमो को प्रेषित किया गया इसके तहत 35 वस्तुओ को आयात मे छूट प्रदान की गयी। ये वस्तुए मुख्यतया इलेक्ट्रानिक से सम्बन्धित है इन पर सीमा शुल्क 255 प्रतिशत से घटाकर 150 प्रतिशत किया गया जिसे पुन 100 प्रतिशत समायोजित किया गया। 1994-95 हेतु इसे 65 प्रतिशत निर्धारित किया गया है इस प्रकार, स्वर्ण बाण्ड योजना तथा सम्बन्धित योजनाओं से जहॉ कृतिम भावो को समाप्त किया गया, वहीं बाजार तन्त्र को उनकी वास्तविक शक्तियो के अन्तर्गत सौंपा गया, यह एक उल्लेखनीय सुधार माना जा सकता है। अक्टूबर 1997 मे सोने और चॉदी की आयात नीति और उदारीकृत की गई थी। इसके लिए किसी को लाइसेंस की आवश्यकता नहीं है और प्रति 10 ग्राम सोने पर 220 रूपये तथा प्रति किलोग्राम चादी पर 500 रूपये के आयात शुल्क का भुगतान किया जा सकता है। इस योजना के अन्तर्गत सोने का आयात 1 नवम्बर 1997 मे 14.2 टन से बढ़कर मार्च 1998 मे 62 3 टन हो गया।[11]

8. भारतीय पूँजी बाजार तथा निर्यातोन्मुख इकाइयाँ :

भारत का पूॅजी बाजार एक लम्बे समय तक असगठित रहा है तथा इसकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से बम्बई, कलकत्ता एवं दिल्ली स्टाक एक्सचेंन्जो तक सीमित रही है। आठवे एव नवें दशक में भारत मे औद्योगिक विकास मे तेजी आने के साथ ही पूॅजी बाजार की गतिविधियो में भी सुधार हुआ है। वर्तमान मे भारतीय पूॅजी बाजार का विस्तार देश के प्रमुख औद्योगिक एवं व्यावसायिक नगरों तक हो गया है, परन्तु इतना होने पर भी भारतीय पूॅजी बाजार की सम्पूर्ण गतिविधियॉ बम्बई स्टाक एक्सचेंन्ज से ही नियन्त्रित है इतना ही नहीं पूॅजी बाजार का समस्त कारोबार बम्बई के कुछ प्रमुख दलालों एव उनके सहयोगियों के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष नियन्त्रण में है। हाल के वर्षों मे मुद्रा बाजार की तरह पूॅजी बाजार की गतिविधियो में प्रभावोत्पादक विस्तार हुआ है, परन्तु यह विचार गुणवत्ता मे पर्याप्त सुधार के बगैर है। स्टाक एक्सचेन्जो के कार्य संचालन में दीर्घ विलम्ब, कार्यविधियो मे स्पष्टता के अभाव और शेयरों के मूल्य घटाने-बढ़ाने और अन्तरग व्यापार के प्रति प्रहार्यता की कमी जैसी अनेक कमियों का शिकार भारतीय पूॅजी बाजार न तो आपेक्षित प्रगति कर पाया है और न ही इसने पूँजी निर्माण की दिशा में कोई बहुत उल्लेखनीय प्रगति ही की।

वर्ष 1990-91 में केन्द्र मे नई सरकार के गठन के साथ आर्थिक सुधारों और उदारीकरण की जो नीति अपनाई गयी, उसके तहत निवेशकर्ताओ मे पूँजी बाजार उत्साह की एक नई लहर का सूत्रपात हुआ। जिसके अनुरूप पूॅजी बाजार की गतिविधियों में अचानक तेजी आई। शेयरों के मूल्यों में बहुत अधिक तेजी

11. इकोनामिक सर्वे- भारत सरकार (वित्त मत्रालय) 1997-98, पृष्ठ सख्या 83

आई जिसका लाभ उठाकर निवेशको ने न केवल भारी मुनाफा कमाया वरन् अपने तमाम वित्तीय स्रोतो से धन एकत्रित करके बहुत बडी मात्रा मे नए एव पुराने निर्गमो मे पूँजी निवेश किया। पूँजी बाजार मे तेजी के इस दौर मे कुछ प्रमुख दलालो ने वाणिज्यिक बैको, उनकी सहयोगी सस्थाओ, म्यूचुअल फण्डो एव अन्य वित्तीय सस्थाओ के साथ मिलकर बहुत बडी मात्रा मे लाभ कमाया। अधिकाधिक लाभ अर्जित करने की प्रतिस्पर्धा मे वाणिज्यिक बैको एव अन्य वित्तीय सस्थाओ ने पूर्व स्थापित नियमो एव कानूनो का खुलकर उल्लघन किया जिसकी परिणति शेयर घोटाला काण्ड के रूप मे हुई जिनमे जानकी रमन समिति के अनुसार 4,024 45 करोड रूपये की हेरा फेरी किए जाने का अनुमान है। इतना ही नहीं निर्गम जारी करने वाली कम्पनियो, मर्चेन्ट बैकरो, निर्गम प्रबधको न पजीयको, दलालो एव उप दलालो न निवेशको के हितो की पूरी तरह से उपेक्षा की। इस दौर मे इस बात की पूरी तरह से उपेक्षा की गयी कि निवेशको की सुरक्षा सुरक्षित करने की दृष्टि से बनाए गए उपयुक्त नियमो और अधिनियमों के अधीन व्यापार और निपटान तीव्रता और पारदर्शिता के साथ हो।

उदारीकरण की शुरूआत के पीछे भारतीय पूँजी बाजार को सुदृढ बनाने, निर्यातपरक इकाइयो को विशेष सहायता एव प्रोत्साहन देकर जहॉ एक ओर औद्योगिक गति को तीव्र बनाने के लक्ष्य के संकल्प दोहराये गये, वही आयात बिलो के भुगतान हेतु अग्रिम लाईसेन्स तथा रेप प्रणाली की जगह एक्जिम स्क्रिप व्यवस्था लागू की गयी है। इस आयात निर्यात हुण्डी को व्यापारिक लेन देन हेतु तरल रूप मे परिवर्वित किया जा सकता है। वर्ष 1992-93 मे इसी उद्देश्य के लिए उद्यमियो को सकल विदेशी आय का 10 प्रतिशत, 1993-94 मे 15 प्रतिशत तथा 1994-95 मे 25 प्रतिशत एव शत प्रतिशत निर्यात इकाइयो के सरचनात्मक समायोजन हेतु 50 प्रतिशत, तक विदेशी मुद्रा रखने की छूट दी गयी है।[12]

पूँजी बाजार मे सस्थागत निवेशको, म्यूचुअल फड, पेशन फड, निवेश न्यास, एसेट्स मैनेजमेंट कम्पनियॉ, निगमित संस्थागत पोर्टफोलियो, प्रबंध इत्यादि को निवेश पर न्यूनतम 16 प्रतिशत लाभाश गारण्टी, लाभांश तथा ब्याज आय पर 20 प्रतिशत कर युक्त छूटें प्रदान की गयी। इन सब राहत प्रद नीतियो का परिणाम रहा कि वर्ष 1993-94 मे 3000 मिलियन अमरीकी डालर का प्रत्यक्ष निवेश हुआ जो वर्ष 1992-93 के 150 मिलियन डालर से 20 गुना अधिक है। भारत सरकार, भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड सेबी तथा भारतीय रिजर्व बैंक के सयुक्त प्रयासो के परिणाम स्वरूप भारतीय पूँजी बाजार प्राथमिक एवं द्वितीयक अब अधिक पारदर्शी सुस्पष्ट एव सुसंगठित है, जिसमे निवेशकर्ताओं के हितों की हर-स्तर पर रक्षा की जाती है। प्रतिभूति घोटाले के व्यापक घपले से स्वयं को संभालते हुए भारतीय पूँजी बाजार में देश एव विदेश के व्यक्तिगत एव संस्थागत निवेशकर्ताओ को यह विश्वास दिलाने मे सफल रहा है कि अब इस प्रकार के घोटाले की पुनरावृत्ति नहीं होनी तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजारों के मध्यस्थों पर कडी नजर रखकर उन्हें

---

12. मासिक पत्रिका : सिविल सर्विसेज स्कैनर, जुलाई 1994, पृष्ठ संख्या 49

ग्राहको की पूँजी के साथ खिलवाड नहीं करने दिया जयेगा। पूँजी बाजार मे लाए गये सुधारो के बाद निवेश निधियो के अन्त प्रवाह के आकार तथा भारत मे पजीकृत विदेशी सस्थागत निवेशकर्ताओ की सख्या मे वृद्धि भारतीय बजारो और उसके नियामक तत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय निवेशकर्ता समुदाय के बढते हुए विश्वास का एक मानदण्ड है।

अब भारतीय कम्पनियॉ केवल बैको एव विकास वित्तीय सस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले ऋणो पर निर्भर रहने की बजाय पूँजी बाजार से शेयर पूँजी, प्रीमियम राशि एव ऋणपत्रो के माध्यम से पूँजी एकत्रित करना अधिक उचित समझती है वर्ष 1993-94 के प्रथम नौ माह मे निजी क्षेत्र की कम्पनियों ने 7068 करोड रूपये ऋण परिवर्तनीय एव अपरिवर्तनीय डिबेन्चरो के रूप मे एकत्रित किए । यह वर्ष 1992-93 की तदनुरूपी अवधि के दौरान एकत्र किए गये 7652 करोड रूपये के दौरान प्राप्त सस्थागत ऋणों से तुलनीय है। अब कम्पनियॉ अपरिवर्तनीय डिबेन्चरो से परिवर्तनीय डिबेचरो को अधिक उपयोगी समझ रही है। निगम पर नोटों, अधिक बट्टा, यूनान बाण्ड (डीप डिस्काउण्ट बाण्ड) और हाईब्रिड बाडो जैसे नए अभिनव दस्तावेजों के विकास के साथ डिबेंचर बाजार का और अधिक तेजी से विस्तार होगा। प्रतिभूति घोटाला और आर्थिक सुधारो के उदारीकरण की नीतियों के बाद भारतीय पूँजी बाजार की सफलता इस बात मे निहित है कि वर्ष 1991-92 के दौरान 512 निर्गमों के जरिये एकत्रित 5562.53 करोड रूपये की तुलना मे वर्ष 1992-93 मे 1010 निर्गमो के जरिए 18690.64 करोड़ रूपये एकत्रित किये गये वर्ष 1993-94 के अप्रैल-दिसम्बर अवधि मे इक्विटी और निर्गमों के माध्यम से कुल 16848 करोड़ रूपये की राशि एकत्रित की गयी जबकि वर्ष 1992-93 की तद्नुरूपी अवधि में यह राशि 13400 करोड़ रूपये थी।

आर्थिक सुधारो एव उदारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय पूँजी बाजार का व्यापक रूप से सुधार एवं विस्तार हुआ है जिससे औद्योगिक विकास की नवीन सम्भावनाएं भी पैदा हुई है ।पूँजी बाजार में लाभ की सम्भावनाए बढ जाने के कारण बहुत से छोटे-छोटे निवेशकर्ता जो अब तक बैको एवं डाकघरों की दीर्घावधि योजनाओ मे निवेश करते थे। पूँजी बाजार में निवेश करने को उद्यत हुए है, लेकिन इसी बीच प्रतिभूति घोटाले और उसके बाद शेयरों के मूल्यों में आई भारी मंदी ने सर्वाधिक हानि छोटे निवेशकों को ही पहुँचाई है। इससे पूँजी बाजार के सत्यनिष्ठा के प्रति कुछ शकाएँ भी पैदा हो गई हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार की ओर से कुछ उपाय भी किए गए है, लेकिन अभी तक कारगर सिद्व नही हो पाए है यथार्थ में इस स्थिति से उबरने के लिए भारत सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक, प्रमुख वित्तीय संस्थाओं, सेबी, स्टॉक एक्सचेन्ज से जुड़े अधिकारियों एवं मध्यस्थों को सामूहिक

रूप से ऐसे प्रयास करने होगे जिससे पूॅजी बाजार की खोई प्रतिष्ठा पुन· वापस हो सके।

पूॅजी बाजार के विकास और सुधार की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की गई है उसे और अधिक प्रभावी एव गहन बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि कारोबार सम्बन्धी लेन-देन शीघ्रता से सम्पन्न हो सके जिससे कि संचालन कार्यो मे सुस्पष्टता व पारदर्शिता दृष्टिगोचर हो, निवेशको को अच्छी सेवाए तथा अधिक सरक्षण प्रदान किया जा सके इतना ही नहीं इसके साथ-साथ ऐसे प्रयास भी करने होंगे कि निगमित क्षेत्र को बडे पैमाने पर पूॅजी बाजार से प्रत्यक्ष रूप से संसाधन जुटाने के योग्य बनाया जा सकें। स्टाक एक्सचेंजो के आधुनिकीकरण की भी आवश्यकता है ताकि वे विश्व मानको के अनुसार पूरी क्षमता एवं विश्वसनीयता के साथ कार्य कर सके।

वर्ष 1997-98 के बजट मे पूॅजी बाजार को बढावा देने के लिए जो प्रावधान किये गये है उनके दूरगामी परिणाम दिखाई देगे। इस बजट मे कुछ शर्तो के साथ कम्पनियो को अपने शेयरो की पुन. खरीद का अधिकार दे दिया गया है। इससे भारतीय कम्पनियाँ, विदेशी कम्पनियो द्वारा अधिग्रहण के प्रयासों का अधिक कुशलता से मुकाबला कर सकेगी। कम्पनी अधिनियम की धारा 370 और 372 को मिलाकर ऋण की और दूसरी कम्पनियों में 60 प्रतिशत तक निवेश की व्यवस्था की गई है। अक्सर यह शिकायत मिलती है कि कम्पनियॉ जिस उद्देश्य से जनता से धन जुटाती है उस उद्देश्य के बजाय धन किसी और काम मे व्यय कर दिया जाता है इसे रोकने के लिए अब यह अनिवार्य कर दिया गया है कि पूॅजी बाजार से धन जुटाने वाली कम्पनियॉ उस धन के उपयोग का वार्षिक विवरण दे।

कम्पनियॉ अपने शेयर धारकों को जो लाभांश वितरित करती थीं, उस पर अब तक दोहरा कर लगता था। कम्पनी अपने पूरे लाभ की राशि पर कर अदा करती थी और लाभांश पाने वाले शेयरधारी को भी उस पर टैक्स देना पड़ता था। इस बजट मे शेयर धारक को प्राप्त होने वाले लाभांश पर कर समाप्त करके शेयर धारको को राहत दी गई है और यह आशा की जा सकती है कि अब शेयर बाजार में फिर निवेश होने लगेगा, लेकिन कम्पनियो को वितरित लाभांश पर दस प्रतिशत की दर से कर देना होगा। इसका लाभ यह होगा कि कम्पनियॉ अपने लाभ का अधिकांश भाग नए निवेशो में लगाने को प्रेरित होंगी और उससे आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलेगा।

वित्तमंत्री पी चिदम्बरम् ने कम्पनियों को दो और बड़ी राहतें दी है। उन्होनें देशी और विदेशी दोनो कम्पनियों पर कर की दर में कमी की है। देशी कम्पनियों के लिए दर अब 35 प्रतिशत और विदेशी कम्पनियों के लिए ४८ प्रतिशत होगी। दूसरी राहत यह दी गई है कि इस पर अधिभार को

अब बिल्कुल समाप्त कर दिया गया है। पिछले बजट मे यह अधिभार 15 प्रतिशत से कम करके 7 5 प्रतिशत कर दिया गया है, भारतीय कम्पनियो को एक और राहत यह दी गई है कि प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण के लिए विदेशी कम्पनियो को दी जाने वाली रायल्टी और तकनीकी सेवा फीस पर टैक्स की दर वर्तमान 30 प्रतिशत से घटाकर 20 प्रतिशत कर दी गई है।[13]

विगत वर्षों मे आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात सवर्धन हेतु भारतीय उद्योगो को अनेक प्रकार के सरक्षणों, अनुदानो एव रियायतो का लाभ मिलता रहा है। दूसरे इन्हे किसी भी स्तर पर विदेशी निर्माताओ से प्रतिस्पर्धा भी नहीं करनी पडी है। इन परिस्थितियो का ही यह परिणाम है कि भारतीय उद्योग सरक्षण तथा रियायतों की बैसाखियो पर चलने के आदी हो गए है। नवीन वातावरण मे स्थिति यह है कि भारत के घरेलू उद्योग स्वय तो सभी प्रकार की रियायते प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन दूसरी ओर ये विदेशी उत्पादको, विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियो से प्रतिस्पर्धा नहीं करना चाहते। ये चाहते है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियो से प्रतियोगिता के लिए सक्षम बनाने का मौका उन्हे दिया जाना चाहिए। इसके लिए कुछ वर्षो तक उन्हे नई नीतियो के तहत संरक्षण मिलना चाहिए इतना ही नहीं वे करो तथा शुल्कों मे और अधिक रियायतें तथा सरकार से सब्सिडी मिलने की आशा करते हैं।

9. कर प्रणाली में व्यापक परिवर्तन :

भारतीय कर प्रणाली विविधता, जटिलता उॅची कर दरो के पर्याय के रूप मे जानी जाती है। 1992 मे डॉ० राजा जे. चेलैया की सिपारिशो ने इस सुसंगत, सरलीकृत एवं ग्राह्य बनाने में मद्द की। प्रत्यक्ष व्यक्तिगत कर दरो मे कमी करके जहॉ मांग प्रेषण किया गया, वहीं पर सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क निगमित करों को भी कम एवं समायोजित कर उत्पादन क्षेत्र को राहत प्रदान की गयी। इससे देश मे मशीनों, पूॅजीगत सामानो, उपकरणों के आयात को राहत प्राप्त हुई है एव औद्योगिक क्षेत्र ने गत्यात्मक स्थिति में प्रवेश किया है। वर्ष 1993-94 मे कारपोरेट क्षेत्र के दोहरे कराधान को समाप्त किया गया और निगम कर को 65 प्रतिशत पर लाया गया, जो वर्ष 1994-95 मे 55 प्रतिशत रखा गया है। इन्हीं समयावधियों मे सीमाशुल्क क्रमशः 85 प्रतिशत तथा 65 प्रतिशत एवं उत्पाद शुल्क को सुसगठित एवं सरलीकृत किया गया। मोडवैट तथा मूल्यानुसार करों की प्रभाविता से उद्योग क्षेत्र को बहुत राहत प्राप्त हो रही है। व्यक्तिगत कर दरों की चार-स्तरीय अधिभार प्रणाली को समाप्त करके त्रिस्तरीय अधिभारहीन प्रणाली विकसित की गयी है। इसके माध्यम से निवेश एवं उपभोग आय में मात्रात्मक सुधार होगा।वर्ष 1994-95 में सेवा क्षेत्र पर 5 प्रतिशत टैक्स लगाकर जहॉ एक ओर

---

13. आर्थिक समीक्षा : भारत सरकार 1997-98, पृष्ठ सख्या-16

राजस्व अतिरेक जुटाया गया।[14] वहीं पर नये कर क्षेत्रो के विस्तार-सभावनाओ को बल मिला है।

10. बैंकिग एवं सम्बन्धित क्षेत्रों में उदारीकरण :

स्टाक मार्केट मे भारी अनियमितता के बाद सेबी के पुनर्गठन तथा वर्ष 1993-94 मे 5800 करोड रूपया,वर्ष 1994-95 मे 5700 करोड रूपया बैकिग क्षेत्र के विकास, वित्तीय प्रवाह तथा राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय तरलता एव विश्वास के लिए आवटित किया गया इससे शेयर बाजार एक बार फिर गतिमय बना। उद्योगों मे निवेश बढ़ाने तथा अर्थतन्त्र मे मुद्रा प्रवाह को बढ़ाने के निमित्त नकद आरक्षित अनुपात तथा साविधिक तरलता अनुपात एव ऋण ब्याज दरों मे कमी की गई। जमादेयताओ मे वृद्धि हेतु उसकी ब्याज दरो को भी समायोजित किया गया। वर्ष 1992-93 मे अल्पकालीन तरलता अनुपात (एस एल आर) को 38.5 प्रतिशत से 25 प्रतिशत पर लाने का लक्ष्य रखा गया, किन्तु वर्ष 1993-94 मे आगामी तीन वर्षों मे अल्पकालीन तरलता अनुपात (एस एल आर) को 25 प्रतिशत करने का क्रमिक स्तर स्वीकार किया गया।[15] इसके पीछे मूलभूत कारण अधिक से अधिक मुद्रा का निवेश हेतु चलन मे प्रवाह को बनाये रखना है। ये सभी तथ्य अर्थतन्त्र को गतिशील बनाने तथा निवेश एवं लाभार्जन के प्रति संकल्प की ठोस व्यूह रचना प्रदर्शित करते है।

आने वाले वर्षों मे भारत के अर्थिक विकास मे बैको एव वित्तीय सस्थाओ की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होगी। एक ओर इन पर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने का दबाव यथावत् बना रहेगा तो दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा पर आधारित बाजार व्यवस्था की ओर अग्रसर उद्योगों एवं व्यावसायिक क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति करनी होगी। देश में आर्थिक सुधारो तथा अर्थिक क्षेत्र मे उदारीकरण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की गई है। उसमे बैकिंग प्रणाली पर आन्तरिक नियन्त्रण एव पर्यवेक्षण की सशक्त व्यवस्था करते हुए बैको को व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा मे खुला छोड देना होगा, परन्तु इसमे यह भी ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है कि भविष्य मे अर्थव्यवस्था की मेरूदण्ड ये सस्थाएं फिर किसी वित्तीय घोटाले का शिकार न हो जाए। बैंकिंग क्षेत्र मे इतने बढ़े स्तर पर सुधार किये जाने के बाद भी बैंकों की कार्यप्रणाली में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं दे रहा है, बैंक अधिकारियों एवं शेयर दलालों की सॉठ-गॉठ से बैंकिग भविष्य के सम्बन्ध मे एक प्रश्नचिन्ह उठता है? बैंकिंग क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने से उद्योग को तो गति मिलेगी ही साथ में उपभोक्ताओं के सेवाओं में तीव्र गति से वृद्धि होगी।

---

14. इकोनामिक सर्वे : भारत सरकार (वित्त मत्रालय), पृष्ठ सख्या 31

15. इकोनामिक सर्वे : भारत सरकार (वित्त मत्रालय), पृष्ठ संख्या 31,

11. मुद्रा स्फीति एवं उच्चावचन :

अर्थतन्त्र मे सीमित ससाधनो के प्राथमिकता परक प्रवाह के कारण अन्य क्षेत्रो मे माग प्रेरित स्थिति उजागर होने लगती है जो स्फीतिक उच्चावचन को जन्म देती है। ऐसी सीमित व्यवस्था के बावजूद अगस्त 1991 के 16 7 प्रतिशत मुद्रास्फीति के स्तर को सरचनात्मक समायोजनाओ के द्वारा जनवरी 1993 मे द्विअकीय बिन्दु से नीचे 6 8 प्रतिशत लाने मे सफलता मिली। जो वर्ष 1994-95 के बजट पूर्व बढे दामो एव अनिश्चित वातावरण के कारण 8 6 प्रतिशत हो गयी है। 15 मार्च 1998 को मुद्रा स्फीति दर 5 07 प्रतिशत हो गयी है जो पिछले वर्ष की तुलना मे काफी कम है।[16]

तालिका : 2.1

(थोक मूल्यों के निर्देशांक)

भारत में मुद्रा स्फीति :

वर्ष	*थोक कीमत सूचकांक*	*मुद्रा-स्फीति दर (प्रतिशत)*
1984-85	121 80	6 00
1985-86	121 70	4.80
1986-87	134 20	5 10
1987-88	148 50	10.70
1988-89	156 90	5.70
1989-90	171 10	9 10
1990-91	217 80	13.60
1992-93	233 10	7 10
1993-94	256 90	10.20
1995-96	317 30	8.60
1996-97	329 20	3.75
1997-98	340 50	5.07

वर्ष 1997 के प्रत्येक माह में मुद्रा स्फीति की दर मे हुए परिवर्तन इस प्रकार है :-

जनवरी	7 5 प्रतिशत	जून	5.2 प्रतिशत
फरवरी	8.0 प्रतिशत	जुलाई	4.0 प्रतिशत
मार्च	7 0 प्रतिशत	अगस्त	4 0 प्रतिशत
अप्रैल	6 0 प्रतिशत	सितम्बर	3.75 प्रतिशत
मई	5.15 प्रतिशत		

स्रोत: *आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 1997-98 पृष्ठ संख्या-84.*

---

16. *इकोनामिक सर्वे .भारत सरकार 1997-98,पृष्ठ संख्या 37*

अभी हाल में सरकार द्वारा पेट्रोलियम पदार्थो की कीमतो मे बढोत्तरी का असर मुद्रा-स्फीति पर झलकने लगा। 6 सितम्बर 1997 को समाप्त हुए सप्ताह मे मुद्रा स्फीति दर 0.38 प्रतिशत से बढकर तीन सप्ताह बाद 3 82 प्रतिशत से ऊपर 4 20 प्रतिशत पर पहुॅच गया। इसके पूर्व सप्ताह मे मुद्रा-स्फीति दर 3.82 प्रतिशत रही थी, जबकि समीक्षागत सप्ताह मे पिछले साल 6.35 प्रतिशत अन्तिम थी। 16 अगस्त 1998 प्रतिशत को मुद्रा स्फीति ग्यारह साल के अपने न्यूनतम स्तर 3 95 प्रतिशत रह गयी। उक्त सप्ताह में मुद्रा-स्फीति की दर मे 0.38 प्रतिशत की बढोत्तरी फलों एव सब्जियो, अडा, अरहर, मूॅग और मसूर आदि के मॅहगा होने के फलस्वरूप दर्ज की गयी।

11. उदारीकरण और गैट :

कई वर्षों के उहापोह और विचार-विमर्श के बाद भारत ने अन्ततः गैट के आठवे चक्र के समझौते पर अपनी स्वीकृति दे दी। आठवे चक्र के नाम से चर्चित इस बहुपक्षीय वार्ता मे डंकल प्रस्ताव पर भारत सहित दुनिया के 177 देशो ने 15 दिसम्बर 1993 की रात जेनेवा में अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी तथा 15 अप्रैल 1994 को माराकोश में 117 देशो के मंत्रियों के सम्मेलन में इसे विधिवत स्वीकार कर लिया गया।[17] विकसित देशो और गैट के सात वर्ष के प्रयास से यह सम्भव हो सका है। अब तक के सबसे बड़े इस व्यापार समझौते के दस्तावेज पर सदस्य देशों द्वारा औपचारिक रूप से अप्रैल माह मे मोरक्कों में हस्ताक्षर किये गये इसके साथ ही बहुपक्षीय व्यापार संगठन (एम टी.ओ) नाम से एक नया अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अस्तित्व मे आ जाएगा।

'गैट' के महानिदेशक पीटर सदरलैण्ड सहित विश्व के तमाम महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने इस समझौते को ऐतिहासिक बताया। यहाँ तक कि भारत के प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहाराव ने भी इसे वर्तमाान परिस्थितियो में श्रेष्ठतम सम्भव उपाय बताया है, उनके अनुसार भारत इस बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से बाहर नहीं रह सकता था, क्योकि उसे उर्वरकों, मशीनरी और अन्य आवश्यक वस्तुओं के आयात पर निर्भर रहना है कुछ इसी तरह का विचार वाणिज्य मंत्री प्रणव मुखर्जी का है उन्होंने कहा कि इस समझौते के बदौलत भारत के निर्यात में दो अरब डालर की वार्षिक वृद्धि होने के आसार है। भारतीय उद्योग एवं व्यापार प्रमुखों ने दो कदम और बढ़कर 'गैट' समझौते का स्वागत किया है। उद्योगपतियों का मत है कि ऐसे समय जबकि भारत मे आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की जा चुकी है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों में तटकरों एवं अन्य शुल्कों व प्रतिबन्धों को हटाना या कम करना व्यापारिक दृष्टि से फायदेमंद है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राजनीतिक संधि एवं संगठन के

---

17. मिश्रा, एस.के.एवं पुरी, वी.के : भारतीय अर्थव्यवस्था (पन्द्रहवाँ संस्करण) 1997, पृष्ठ संख्या 676

साथ-साथ व्यापार की एक आम सधि की भी जरूरत है और इसी क्रम मे 30 अक्टूबर 1947 को जेनेवा मे 23 राष्ट्रो द्वारा सीमा शुल्को व व्यापार से सम्बन्धित एक सामान्य समझौते पर हस्ताक्षर किये गये।[18] इसी समझौते को 'गैट' के नाम से जाना जाता है। वर्तमान मे 117 सदस्यो के साथ यह 'विश्व बाजार का सजग प्रहरी' के रूप में जाना जाता है।

एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था होते हुए भी गैट अपने शुरूआती वर्षो मे कोई उल्लेखनीय कार्य न कर सका। यो इसकी स्थापना का उद्देश्य विश्व के तमाम् देशों के बीच व्यापार को विभिन्न प्रतिबन्धो और बंधनो से मुक्त कर उसका संबर्द्धन करना था, लेकिन आरम्भ से ही इस पर अमरीका और उसके मित्र देशों का प्रभाव कायम रहा। अमरीका विश्व भर की व्यापारिक गतिविधियो को अपनी इच्छानुसार संचालित करना चाहता था। विश्वयुद्ध मे सफलता के बाद उसकी यह इच्छा अत्यन्त प्रबल हो उठी। ऐसी स्थिति में उसने 'गैट' को अपना माध्यम बनाया। दूसरी तरफ अमरीका और उसके मित्र देशो का सहयोग पाकर 'गैट' को भीशक्ति मिली और शीघ्र ही वह इस रूप में आ गया कि अन्य देशो के आर्थिक निर्णयों को प्रभावित कर सकता था।

गैट के अब तक आठ चक्र हो चुके है। इसका पहला चक्र वर्ष 1947 में जेनेवा में, दूसरा वर्ष 1949 मे एनेसी (फ्रास), तीसरा वर्ष 1950-51 में तोर्के (इंग्लैण्ड में) चौथा वर्ष 1956 मे जेनेवा, पॉचवा वर्ष 1960-61 मे जेनेवा में, छठा वर्ष 1964-67 मे जेनेवा मे, सातवॉ वर्ष 1973-79 में जेनेवा मे सम्पन्न हुआ। गैट का आठवॉ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण उरूग्वे चक्र 20 सितम्बर 1986 को उरूग्वे के पुन्टाडेल एस्टे नगर में शुरू हुआ। 15 दिसम्बर 1993 को जेनेवा में समाप्त इस चक्र में कुल 118 देशो ने 20 समझौते को स्वीकृति प्रदान कर दी। आर्थर डकल ने दिसम्बर 1991 में एक पॉच सौ पृष्ठीय प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

इस प्रस्ताव में वस्तुओ व सेवाओ के व्यापार के सम्बन्ध में दुनिया के विकसित और विकासशील देशो के बीच आर्थिक सम्बन्ध बढ़ाने पर बल दिया गया था। इसमें आयात शुल्कों में लगभग एक तिहाई की कमी तथा कृषि उत्पादन सम्बन्धी व्यापार पर आयात प्रतिबन्धों को घटाने की व्यवस्था थी।

इसमें विकासशील देशों को अपने उत्पाद प्रक्रिया पेटेंट को समाप्त करने की बात भी कही गई थी, जिससे धनी देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपने विकास व विस्तार का अच्छा मौका मिल

---

18. मिश्रा, एस.के.एवं पुरी, वी.के. : भारतीय अर्थव्यवस्था (पन्द्रहवॉ संस्करण) 1997, पृष्ठ संख्या-677

सके। गैट के इस नये समझौते के पीछे अमरीका आदि विकसित देशो का एकमात्र उद्देश्य विकासशील देशों की व्यापार प्रणाली एव मण्डियो पर अपना आधिपत्य जमाना है। प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण एक प्रमुख विकासशील देश होने के कारण भारत को इसमे शामिल करने का शुरू से ही प्रयास किया गया। सितम्बर, 1986 मे उरूग्वे चक्र मे भारत ने पूरी तैयारी के साथ हिस्सा लिया और इसकी प्रारम्भिक बातचीत मे भारत के तत्कालीन वाणिज्य मत्री श्री वी पी सिंह ने अच्छी भागीदारी की। भारत ने इस बातचीत मे न केवल अपनी बल्कि सभी विकासशील देशो की कठिनाइयो को पूरे जोरदार ढग से प्रस्तुत किया, लेकिन भारत का यह रूख अधिक समय तक कायम न रह सका। अप्रैल, 1989 मे राजीव गॉधी की सरकार ने यह स्वीकार कर लिया कि 'ट्रिप्स' यानी व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार पर गैट मे बातचीत हो सकती है।

वास्तव मे राजीव गॉधी के सन् 1984 में सत्ता मे आने के साथ ही भारत मे खुलेपन का नयायुग आरम्भ हो गया था। विश्व समाजवाद पीछे छूट गया, ऐसी स्थिति में भारत गैट समझौते से बहुत अधिक दिन तक दूर कैसे रह सकता था? जून 1991 मे नरसिंहा राव के प्रधानमंत्री बनने के बाद तो भारत मे आर्थिक सुधारों की गति और तेज हो गई। वित्तमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह के देखरेख मे भारतीय आर्थिक नीति सीधे विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अमरीका के दबाव मे पहुॅच गई। यह दबाव 1992 तक इस सीमा तक पहुॅच गया कि भारत को किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए मजबूर किया जा सकता था और हुआ भी यही। भारत ने मई 1993 मे गैट समझौते के अधिकांश भागो पर अपनी सैद्धान्तिक सहमति दे दी।

वास्तविकता यह है कि अनेक मामलो में विदेशों पर निर्भरता के कारण ही भारत को गैट समझौते को स्वीकार करना पड़ा है। ऋण के भारी बोझ के चलते भारत इस स्थिति में नहीं रह गया था कि वह अमरीका आदि विकसित देशो के समक्ष अपनी कोई बात दृढ़ता के साथ रख सकता वैसे भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत की हिस्सेदारी मात्र 0 5 प्रतिशत है।[19] इस क्षमता पर विकसित देशों को अपनी शर्तों पर मजबूर कर पाना ऐसा सोचना ही बेमानी है। इसके बाद उसके पास बस दो ही रास्ते बचते थे, या तो वह समझौते को स्वीकार करता या फिर गैट से बाहर निकल जाता।

निःसंदेह गैट समझौते से अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहार मे अभूतपर्व परिवर्तन होगा इससे पूर्व किसी अन्य समझौते अथवा विधान ने व्यापार सम्बन्धी इतने बंधन नहीं तोड़े थे। इससे विश्व व्यापार में जहॉ सरगर्मी बढ़ेगी, वहीं भारत आदि विकासशील देशों की विश्व की आर्थिक महाशक्तियों के साथ

---

19. मिश्रा, एवं पूरी, वी.के. : भारतीय अर्थव्यवस्था (15वॉ संस्करण) 1997, पृष्ठ सख्या 677

व्यापारिक प्रतिस्पर्धा का मौका भी मिलेगा। इससे प्रत्येक के लिए व्यापारिक खेल के नियम बदल जायेगे 'गैट' के महानिदेशक पीटर सदरलैण्ड के अनुसार विश्व व्यापार का 95 प्रतिशत से अधिक भाग अब समान शुल्क के माध्यम से सचालित होगा। इसके परिणाम स्वरूप व्यापार बढ़ने से.भारत का लाभ होगा, यह आशा की जा रही है कि गैट समझौते से विश्व व्यापार मे भारत की भागीदारी करीब दो अरब डालर वार्षिक तक बढ जायेगी। इसके अतिरिक्त समझौते से विकसित देशो के बैको,बीमा कम्पनियॉ, जहाजरानी, जनसचार, वायु सेवाओ आदि को भारत आने की पूरी छूट मिल जायेगी और भारत के इजीनियरो, डॉक्टरो, प्रबन्ध विशेषज्ञो, कारीगरो, वकीलों व चार्टर्ड एकाउण्टेंट आदि विविध विषयो के विशेषज्ञों को दूसरे देशो में कार्य करने का सहज अवसर प्राप्त होगा। इससे देश मे विदेशी मुद्रा भण्डार बढेगा, लेकिन जानकार लोगो का मानना है कि ये सभी लाभ अल्पावधि के लिए ही होगे। इस समझौते से भारत को दीर्घावधि मे हानि पहुँच सकती है। गैट समझौते के अन्तिम चरण मे भारत द्वारा प्रस्तुत संशोधनों एवं परिवर्तन सम्बन्धी प्रस्तावों पर अमरीका आदि विकसित देशों ने जिसे उपेक्षात्मक रवैये का परिचय दिया है। उससे यह साफ हो गया है कि भारत जैसे विकासशील देशों की समस्याओं की ओर आगे भी कम ध्यान दिया जायेगा। अतर्राष्ट्रीय व्यापार मे वैसे भी हमेशा समृद्ध देशो को लाभ होता है। गैट समझौते के बाद इस बात के पूरे आसार दिखाई दे रहे हैं कि विकसित देशो के बाजार में भारत की पहुँच कम ही हो पायेगी। जबकि इसके अपने बाजार में विकसित देशों की पूरी पैठ हो जायेगी। गैट समझौते से भारत मे दवाएं काफी महगी हो जायेगी। हालांकि वाणिज्य मत्री प्रणव मुखुर्जी ने 17 दिसम्बर को ससद मे आश्वासन दिया है कि किसानो को दी जाने वाली सब्सिडी में गैट समझौते की वजह से कोई कटौती नहीं की जायेगी, लेकिन प्रेक्षको का मानना है कि यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। सरकार को शीघ्र ही अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ेगा। इस तरह की सहायता रासायनिक उर्वरकों, उन्नत बीजों सिंचाई आदि के लिए प्रदान की जाती है। अत सहायता कम करने से उर्वरको, बीजो आदि के मूल्य बढ़ने स्वाभाविक है।

इस समझौते के परिणाम स्वरूप देश में अब उन्नत बीजो का 'पेटेन्ट' कर दिया जायेगा अर्थात इन बीजों को पेटेन्ट धारक विदेशी फर्मे मनमाने मूल्यों पर बेचेंगी। इसी तरह कपड़ा निर्यात के क्षेत्र में धनी देश अपने कोटा सिस्टम को और दस वर्षों के लिए बनाए रखेंगे और उसके बाद ही भारत अपने कपड़ा और गार्मेन्ट्स के मुक्त निर्यात हेतु स्वतन्त्र होगा।

इस तरह गैट के नये समझौते से भारत को अब जहाँ कुछ फायदे होंगे वहीं अनेक क्षेत्रों में इसे नुकसान भी उठाना पड़ेगा। भारत में आर्थिक उदारवाद का बहुआयामी अध्ययन यह

प्रदर्शित करता है कि भारतीय औद्योगिक एवं व्यापार तन्त्र मे पुनर्संरचना एव घरेलू प्रतिस्पर्धा मे सुधार के माध्यम से व्यापक स्तर पर निवेश वृद्धि, करों में लचीलापन, भुगतान सतुलन, विदेशी मुद्रा भण्डार मे वृद्धि, मुद्रा-स्फीति मे कमी आदि क्षेत्रो मे उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। वर्ष 1993-94 मे व्यापार शेष पर गत वर्षों के 4 बिलियन डालर घाटे का 1 बिलियन डालर पर लाया गया। निर्यात के क्षेत्र मे मदी के बाद भी 21 प्रतिशत (अमरीकी डालर के सापेक्ष) वृद्धि दर्ज की गयी, जबकि उदारीकृत - गैर नियन्त्रित व्यवस्था के बाद आयातो मे 1.3 प्रतिशत की कमी आयी।

आरक्षित विदेशी मुद्रा कोष जो कि अगस्त 1991 मे 1 1 बिलियन डालर था मार्च 1994 तक लगभग 1.3 बिलियन डालर पहुॅच गया। सामन्यतया इसे दो कारणो से जोडा जा रहा है- 1 तेल कीमतो में गिरावट वर्तमान मे 13 डालर प्रति बैरल, 2- रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता। आर्थिक उदारीकरण के कारण निवेश क्षेत्र में भी गत वर्ष के मुकाबले 20 गुना अधिक (3000 मिलियन डालर) निवेश हुआ है। यह निवेश प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो में विशेषकर प्रौद्योगिकी, विद्युत, तेल, खाद्य प्रसस्करण, रसायन, इलेक्ट्रानिक्स क्षेत्रो मे मुख्य रूप से है। वर्ष 1991-92 मे मुद्रा सामंजस्य तथा रूपये की परिवर्तनीयता के कारण जहॉ एक ओर बास्केट करेन्सी के सापेक्ष रूपये के विनिमय दर मे स्थिरता रही, वहीं रूपये को परिवर्तनीय बनाकर हवाला मार्केट की अनियमितताओं को दूर किया गया। इसका परिणाम यह रहा कि भारतीय निर्यातों मे गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार हुए। स्वर्ण बाण्ड तथा अन्य सम्बन्धित योजनाओ से 1993 के प्रारम्भ तक 92 टन सोना देश मे आया। इसके दो स्पष्ट लाभ रहे · 1. 210 करोड रूपये का विदेशी मुद्रा में राजस्व की प्राप्ति, 2. अवैध व्यापार उन्मूलन तथा कृत्रिम भावो मे कमी।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और उदारीकृत भारतीय अर्थव्यवस्था के मध्य गैट या डंकल प्रस्ताव एक अहम् प्रश्न है। यद्यपि इस पर अभी भारतीय पक्ष से कोई औपचारिक समझौता नहीं हुआ है किन्तु इसके प्रभावों का देश के परिप्रेक्ष्य मे सापेक्ष विश्लेषण करना तर्कसंगत होगा। सामान्य रूप से अनुमान लगाया जा रहा है कि भारत को इस प्रस्ताव के मानने से कमोवेश 2 बिलियन डालर की निर्यात आय प्राप्त होगी। कृषि आयातों के लिए भारत पर दबाव नहीं होगा क्योंकि वे गैट के भुगतान संतुलन सुधार सीमा के अन्तर्गत है। सेवाओं के क्षेत्र में आपसी समझ को वरीयता दी जा रही है। इस प्रस्ताव में दो मुश्किलें है जो भारतीय जनमानस को संशोधित किये हुए है -1.

बीजो के पेटेटीकरण, 2 दवाओ के पेटेटीकरण। पेटेटीकरण के क्षेत्र मे एक भ्रान्ति मूलक धारणा का समाधान यह है कि बीजो को पुन· बोया तथा अनौपचारिक लेन-देन हेतु प्रयोग किया जा सकता है। दवाओ के क्षेत्र मे 10 प्रतिशत पेटेट विदेशी हाथो मे जाने की सभावना है। इसके लिए हमे स्वयं भी तैयार रहने की जरूरत है। वैसे सरकार इनके मूल्यो को आंकलित कर नियन्त्रित कर सकेगी तथा कठिन प्रतिस्पर्धा के कारण मूल्य बढने की सम्भावनाएं कम होगी।

आर्थिक उदारवाद बाहरी मोर्चे पर सफल, किन्तु आन्तरिक मोर्चे पर विफल नजर आ रहा है। इस वर्ष 1993-94 में कुल घरेलू उत्पाद 5.6 प्रतिशत के मुकाबले 3.8 प्रतिशत प्राप्त किया गया। औद्योगिक क्षेत्र मे निष्पादन गत वर्ष के 1 8 प्रतिशत से कम 1.6 प्रतिशत रहा। उपभोक्ता वस्तुओं में सुधार तथा पूँजीगत सामान के क्षेत्र में 8.8 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। कृषि क्षेत्र में 1992-93 में 3.9 प्रतिशत की वृद्धि दर के मुकाबले वर्ष 1993-94 में 0.9 प्रतिशत की कमी, खाद्यान्न क्षेत्र में 0 5 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। इसके बावजूद एक विरोधाभास नजर आता है जो कि कृषि पदार्थों के 40 प्रतिशत निर्यात वृद्धि को रेखाकित करता है। निर्माण क्षेत्र मे सुधार के साथ-साथ आधारभूत क्षेत्रों मे 5 प्रतिशत निष्पादन सुधरा जो एक उल्लेखनीय प्रगति का सूचक है।

इस प्रकार आर्थिक उदारवाद के समेकित अध्ययन एवं विश्लेषण से देश के लिए इसकी अपरिहार्यता सिद्ध होती है, पर इससे जुडी आशकाओ, यथा विदेशी पूँजी का अधिकाधिक वरीयता प्राप्त क्षेत्रों मे निवेश, आयात शुल्क कटौती से भारी आयात एवं इससे आन्तरिक उद्योगो को क्षति, दवाओं के क्षेत्र मे बढ़ता वर्चस्व, संरक्षण की कमी से अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा क्षमता विकास में कमी, भारी मात्रा मे लाभाशों का बहिगर्मन आदि ऐसे मूलभूत कारक है जिन्हे झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति मे देश का विकास एवं संकल्पना मात्र ही रह जायेगा जबकि वह एक साथ मंदी और स्फीति की स्थितियो से जकड़ा जा रहा है, राजकोषीय घाटा लक्ष्य पार करके दो गुना होता जा रहा है जिसके लिए चालू खाते पर गैर योजनागत खर्च का 53 प्रतिशत (46000 करोड़ रूपये) व्याज अदायगियों पर सब्सिडी पर लगभग 1000 करोड़ रूपये पानी एवं बिजली दरों में कमी, श्रम कानूनों की अकुशलता, कोयला एवं पेट्रोलियम उत्पादों में अनुदान आदि ऐसे कारक है जिनको आंशिक और कालान्तर में सुनियोजित तरीके से समाप्त नहीं किया जाता। सरकार को अपने खर्चे (16000 करोड़ रूपये) पर नियंत्रण लगाना होगा तथा

उद्योग में अपनी भागीदारी को शेयर निर्गमन के माध्यम से कम करके एव नियामक के रूप में स्थापित करना पडेगा तब कहीं जाकर हम दक्षिण कोरिया, जापान और जर्मनी की खुली हवा से प्राप्त लाभो के सपनो को सजो पायेगे और चीन की तरह अनुशासित, चरणबद्ध, समेकित एवं मूल्याकित योजनाएं तैयार करके (चीन की तुलना मे हमारे यहॉ अधिक उदारीकरण तथा विकास हेतु अधिक ससाधन भी है) तभी देश के अर्थतन्त्र को ठोस सरचनात्मक सूत्र मे बॉधकर बदलते आर्थिक विश्वीकरण व्यवस्था से जोड़ पायेंगे।

समीक्षा :

क्या ग्रामीण एव नगरीय क्षेत्रो मे उदारीकरण के माध्यम से लोगो की संख्या गरीबी रेखा के नीचे कम हुई है? उत्तर स्पष्ट है, नहीं, बल्कि गरीबी रेखा के नीचे ज्यादा लोग आ गये है यानी उदारीकरण से गरीबी बढी है। नगर एव ग्रामीण क्षेत्रों में क्या बेरोजगारी बढी है? फिर उत्तर होगा नहीं। अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष के 'विश्व आर्थिक दृष्टि' अक्टूबर 1993 के अनुसार 22 औद्योगिक देशों मे बेरोजगारी असहनीय स्थिति में पहुँच गई है एव उनकी संख्या 3 2 करोड़ (विश्व श्रम सघटन के अनुसार 3.50 करोड़) जो आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन (ओ.ई.सी डी) के अनुसार वर्ष 1994 में 3 60 करोड़ मे हो जायेगी। जिसमे फ्रास में 12 प्रतिशत, जर्मनी मे 15 3 प्रतिशत कनाडा में 11.4 प्रतिशत और संयुक्त राज्य अमेरिका मे आज बेकारी लगभग बढ़कर 6 प्रतिशत हो गयी है। जहॉ तक भारत का प्रश्न है, वर्ष 1990-2000 के बीच भारत में सकल श्रम शक्ति में वृद्धि लगभग 8 करोड़ लोगों की होगी, जिससे यदि भारतीय अर्थव्यवस्था में 9 से 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि होगी तो 'बैकलाग' रहेगा। असल में रोजगार पैदा करने में आधुनिक उद्योग का रिकार्ड अत्यन्त कमजोर रहा है। फिर उदारीकरण के नाम पर बाहर से आये हुए उद्योग तो अति उच्च तकनीक स्तर पर आधारित होंगे, जिसमे बेरोजगारी की बढ़ती मात्रा और गरीबी की उच्च वृद्धि दर वर्ष 1973-74 में ग्रामीण आबादी में 56.4 प्रतिशत एवं शहरी आबादी में 49 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे थे।[20] अस्सी के दशक मे हमारी अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर लगभग 5.5 प्रतिशत, किन्तु रोजगार में वृद्धि 1.8 प्रतिशत के आस-पास है। निष्कर्ष बेरोजगारी श्रम बाजारों के सुधारों से हालत और खराब हो रही है। असल में उनके विकास का ढॉचा स्वयं बेरोजगारी पैदा करने वाला है, क्योंकि वे कम्प्यूट्रीकरण और रोबटीकरण जैसे अग्रिम तकनीक पर निर्भर होने के कारण श्रम विस्थापक है। यहॉँ तो विकास विस्थापन का पर्यायवाची बन पाता है, क्योंकि यहॉँ रोजगार विहीन उत्पादन का लक्ष्य है, ताकि अधिक मुनाफा मिल

---

20. आर्थिक समीक्षा भारत सरकार -1997-98, पृष्ठ संख्या-135

सके। क्या उदारीकरण से वास्तविक आय में विषमता घटी है? पुन एक ही उत्तर है, नहीं।

आज के प्रौद्योगिकी युग मे पूँजीवाद के स्वरूप मे गुणात्मक अन्तर है। आज तो संग्रह की सीमा नहीं है। वैश्वीकरण के कारण उससे संघर्ष भी मुश्किल है। उदारीकरण में न केवल मालिक बल्कि व्यवस्थापको की आय एवं वेतन मे मजदूरो की अपेक्षा भारी अन्तर है, अत समाज में आर्थिक विषमता बढी है, जो खतरनाक है। सामाजिक कार्यों के स्वैच्छिक क्षेत्र उदारीकरण ने क्या प्रगति लायी है। यह मानना होगा कि सिद्धान्तत भले ही उदारीकरण से जन अभिक्रम को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, किन्तु बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के जजीरो मे जकडा हमारा दैनिक जीवन स्वावलम्बन के लिए तडफड़ा रहा है। स्वावलम्बी उत्पादको को जहॉ जो भी समाज शेष बचा है, वह विदेशी कम्पनियों के विनाशकारी विकास के चलते नष्टप्राय हो चला है। पुश्तैनी धन्धो, कुटीर उद्योग और हस्तशिल्प को रौद दिया। ये कहने के लिए तो रोजगार के अवसर मुहैया करायेगी, निर्यात बढायेगी एव अपने साथ पूँजी लायेगी, लेकिन ये मुश्किल से 5 प्रतिशत पूँजी लाती है, 95 प्रतिशत तो यहीं से उगाहती है। आधुनिक तकनीक से काम करने से रोजगार पाने वालो की सख्या कम होती है।

क्या उदारीकरण के कारण भारत का धन विदेश तो नहीं जा रहा है? इसमें क्या शक की बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ यहॉ धन कमाने के लिए आती है यहॉ दान करने नहीं, पेप्सी को ही लें। इन्होंने पंजाब मे टमाटर के बीज 1000 रूपये किलो पर बेचे, लेकिन बाद मे टमाटर खरीदा नहीं। आज तो किसी कम्पनी के 25 प्रतिशत शेयर विदेशी कम्पनियॉ खरीद सकती हैं और धीरे-धीरे उनका वर्चस्व होता है। शेयर बाजार के कामकाज की समीक्षा के लिए बनी समिति के अध्यक्ष श्री जी.एस. पटेल की राय में हमारे शेयर बाजार में विदेशी निवेशकर्ताओं को अल्प अवधि के लिए भी कारोबार करने की छूट में सरकार के खिलाडी या जुआरी, जिसकी उनकी प्रवृत्ति है। मुम्बई शेयर बाजार के अध्यक्ष एस जी. दामानी ने भी चेतावनी दी कि विदेशी वित्तीय संस्थाएं पैसे के बल पर भारतीय शेयर बाजार को तबाह करने पर आमादा हैं।

क्या उदारीकरण से आन्तरिक एवं विदेशी कर्जे में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात में राहत हुई है। यह स्पष्ट है कि हम कर्जखोरी के भयानक मकडजाल में फॅस गये हैं। भारत सरकार को जितना विदेशी कर्ज मिल रहा है उससे ज्यादा भुगतान उसे पिछले कर्ज के मूलधन की वापसी और ब्याज के रूप में करना पड़ रहा है। वर्ष 1993-94 के पहले छः माह में भारत को विदेशों से 2883 करोड़ रूपये की सहायता मिली, लेकिन उसने मूलधन ब्याज के रूप में 4559 करोड़ रूपये का भुगतान किया अर्थात् 1676 करोड़ रूपया देश से बाहर गया। विदेशों से मिलने वाली मदद वास्तव में

ऋणात्मक हो जाती है। उदारीकरण का चमत्कार बताने के लिए कहा गया कि विदेशी मुद्रा का भंडार 2 अरब डालर से बढकर 8 अरब डालर हो गया, लेकिन यह वृद्धि व्यापार से और कमाकर नहीं हुई। यह तो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैक और दुनिया के देशों से कर्ज लेकर हुई है। भारत का विदेश व्यापार तो अभी तक घाटे मे चल रहा है। विश्व बैक के अनुसार भारत पर विदेशी कर्ज वर्ष 1980 मे 20.58 अरब डालर था जो वर्ष 1992 मे बढकर 77 अरब डालर (जिसमें प्रतिरक्षा आदि के कुछ खर्च शामिल नहीं है) हो गया। सब मिलाये, तो वर्ष 1992-93 मे भारत के पास 87 अरब डालर का कर्ज है। रिजर्व बैक की रिपोर्ट के अनुसार विदेशी कर्ज 100 अरब डालर के लगभग होगा। विदेशी कर्ज 137 प्रतिशत के अनुपात मे भारत का निर्यात वर्ष 1991-92 मे 371 प्रतिशत हो गया आम तौर पर 220 प्रतिशत से ज्यादा होना चिन्ताजनक है। तीसरी दुनिया मे भारत आज चौथे नम्बर का कर्जदार है।

उदारीकरण मे भ्रष्टाचार शिष्टाचार हो जाता है, क्योकि भारत में उदारीकरण के जनक डॉ० मनमोहन सिह हजारो करोड रूपये के घोटाले की तुलना गॉव में छोटी-मोटी चोरी से हरगिज नहीं करते। उन्हीं के कारकुन जानकी रमण ने प्रतिभूति घोटाले मे 3500 रूपये का सी.बी.आई के अनुसार यह 8000 करोड रूपये एवं संयुक्त ससदीय समिति (जे.पी.सी.) के अनुसार 6000 रूपये एवं अन्य अर्थशास्त्रियो के अनुसार एक लाख करोड़ रूपये का घोटाला हुआ।[21] घोटाले तो अन्तहीन रूप से हमारे समक्ष आ रहे है। इससे राजनीतिक भ्रष्टाचार तो भयावह होता है।

हथियारो के बाद सबसे ज्यादा दवा के व्यापार पर ही लाभ होता है। दवा रोजगार ने भारत की देशी चिकित्सा पद्वति को चौपट तो कर ही दिया, हमे इन दवाओं का गुलाम बना दिया गया। वर्ष 1981 में हैस्क्ट कम्पनी के पूँजी गत वस्तुओ के आयात पर 5.24 करोड रूपये ले गयी, जबकि उनकी मूल पूँजी केवल 20 लाख रूपये थी। सीबा, जायजी 4.70 करोड़ रूपये ले गयी जबकि उसकी पूँजी केवल दो लाख रूपये लगी थी, सैंडोज 7 78 करोड़ रूपये ले गयी जबकि उसकी मूल पूँजी 10 लाख रूपये लगी थी, लैक्सो 3.48 करोड़ रूपये ले गयी जबकि उसकी मूल पूँजी 1 लाख रूपये थी। इसका मतलब यह हुआ कि ये अपनी बहुत पूँजी लाती है, यह असत्य एवं भ्रमपूर्ण स्थिति को उत्पन्न करती हैं। ये कम्पनियॉ आवश्यक शोध कार्य पर कुल व्यय का 8 प्रतिशत धन खर्च करती है और मार्केटिंग पर 40 प्रतिशत धन खर्च करती है। दवा के नाम पर मुनाफा के लिए ऐसी दवायें बनाती है जो धातक एवं जहरीली होती है एवं जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चलाने से मना कर दिया। इन प्रतिबन्धित दवाओं पर 1800 रूपये का केवल भारत में इन्हें मुनाफा मिला। नशा माफिया आज राजनीति पर हावी

---

21. दैनिक समाचार : आज, 10 अप्रैल 1997, पृष्ठ सख्या 4

हो रहा है, चाहे वह मैक्सिको हो या पाकिस्तान कहा जाता है कि उदारीकरण से विदेशी पूँजी का निवेश सुलभ होता है, लेकिन यह गलत है कोरिया, ताइवान, जापान जैसे विकसित देश ने अपने यहाँ उदारीकरण के लिए स्वदेशी से समझौता नहीं किया। छोटे से वियतनाम को भारत से 30 से 40 गुना अधिक विदेशी पूँजी का निवेश मिला। चीन को साम्यवादी होते हुए भी भारत से 30-50 गुना ज्यादा पूँजी मिली। इस प्रकार सच्चा विकास विदेशी सहायता या विदेशी मुद्रा से सम्भव नहीं है। विकास तो जनता के कौशल एव अभिक्रम पर एव प्राकृतिक ससाधनो के कुशलता पूर्वक दोहन करने पर निर्भर रहता है। वर्ष 1997-98 के बजट में बेरोजगारी घटाने का कोई रास्ता नहीं था। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ युद्ध का उसी प्रकार इन्तजार करती हैं, जिस प्रकार मृत जानवर को गीध देखता है। अभी हाल के खाडी युद्ध मे 3000 अरब रूपये के हथियार इस्तेमाल हुए ।

असल मे विकास की जो अवधारणए भारत ने स्वीकार की उदारवाद उसकी तार्किक परिणति है। हमने तो गॉधी के विकास की अवधारणा के बदले पाश्चात्य प्रभावित महालनोबिस मॉडल को माना। प० नेहरू जी एव बाबा साहब अम्बेदकर दोनो गॉधी जी के ग्राम विकास की अवधारणा को प्रगति विरोधी एव दकियानूस मानते थे। यही कारण है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद कृषि को योजना में प्राथमिकता मिली ही नहीं। नेहरू जी को गॉधी ने याद दिलाया था, अगर गॉवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जायेगा। उस हालत मे भारत, भारत नहीं रहेगा। उनका दिमाग साफ था। हमे गॉवो वाला भारत एवं शहरो वाला भारत इन दोनों में से एक को चुन लेना है। 'भारत माता ग्रामवासिनी' वेद ने भी इसीलिए ग्राम की उपासना की है। 'विश्व पुष्टे अस्मिन् ग्रामे अनातुरम्' हमारी ग्राम भावना एक तरफ स्वदेशी पर आधारित है तो दूसरी ओर हमारा लक्ष्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। यही हमारा स्वराज है, यही हमारा रामराज्य है। आने वाले वर्षों में भारत के आर्थिक विकास में बैंको एवं वित्तीय संस्थाओं की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होगी। एक ओर इन पर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने का दबाव यथावत बना रहेगा तो दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा पर आधारित बाजार व्यवस्था की ओर अग्रसर उद्योगों एवं व्यावसायिक क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। देश में आर्थिक सुधारों तथा आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की गई है, उसमे बैकिंग प्रणाली पर आन्तरिक नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण की सशक्त व्यवस्था करते हुए बैंकों को व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में खुला छोड देना होगा, परन्तु इसमें यह भी ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है कि भविष्य में अर्थव्यवस्था की मेरूदण्ड ये संस्थाएं फिर किसी वित्तीय घोटाले का शिकार न हो जाएं।

आर्थिक सुधारो एवं उदारवादी नीतियो के परिणामस्वरूप भारतीय पूँजी बाजार का व्यापक रूप से सुधार एव विस्तार हुआ है जिससे औद्योगिक विकास की नवीन सभावनाए भी पैदा हुई है पूँजी बाजार मे लाभ की सभावनाए बढ जाने के कारण बहुत से छोटे-छोटे निवेशकर्ता, जो अब तक बैंको एवं डाकघरो की दीर्घावधि योजनाओ में निवेश करते थे, पूँजी बाजार मे निवेश करने को उद्यत हुए है, लेकिन इसी बीच प्रतिभूति घोटाले और उसके बाद शेयरो के मूल्यों मे आई भारी मंदी ने सर्वाधिक हानि छोटे निवेशको को ही पहुँचाई है। ऐसी परिस्थिति मे सरकार की ओर से कुछ उपाय भी किए गए हैं, लेकिन ये अभी तक कारगर सिद्ध नहीं हो पाए हैं। यथार्थ मे इस स्थिति से उबरने के लिए भारत सरकार, भारतीय रिजर्व बैक, प्रमुख वित्तीय सस्थाओ, सेबी, स्टाक एक्सचेन्ज से जुड़े अधिकारियों एवं मध्यस्थो को सामूहिक रूप से ऐसे प्रयास करने होगे, जिससे पूँजी बाजार की खोई प्रतिष्ठा पुनः वापस हो सके।

भारतीय अर्थव्यवस्था भूमण्डलीकरण से उदारीकरण की ओर :

भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण प्रक्रिया को गति देने के उद्देश्य से ऑठवी पंचवर्षीय योजना के लिए नई आयात-निर्यात नीति की घोषणा की गई, जिसका बृहद उद्देश्य व्यापार में न्यूनतम प्रतिबन्ध, अधिक स्वतन्त्रता एवं न्यूनतम प्रशासनिक नियंत्रण सुनिश्चित करना था। 1 अप्रैल 1993 को पुनः संशोधन के साथ आयात-निर्यात नीति में परिवर्तन करके इसे अधिक उदार बनाया गया और साथ ही आयात-निर्यात की निषिद्ध सूचियों में भारी कटौती करके विदेशी व्यापार का सरलीकरण किया गया।

भारतीय नियोजन का पॉचवा दशक आर्थिक सुधारो की श्रृंखला के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की ओर मोड़ता है। अर्थव्यवस्था मे लाइसेंस, कोटा नियन्त्रण आदि मे उदारीकृत दृष्टिकोण अपनाकर अर्थव्यवस्था में उदारीकरण का दौर आरम्भ किया गया। उदारीकरण का एक जुड़वा पहलू है - निजीकरण, उदारीकरण दृष्टिकोण को स्थिरता देने के उद्देश्य से लोक उपक्रमों की बढती अक्षमता एवं बढ़ते घाटे को ध्यान में रखकर सार्वजनीकरण की नीति के स्थान पर निजीकरण एवं औपनिवेश नीति को बढावा दिया गया। अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन का यह दौर उदारीकरण एवं निजीकरण की सीमाओं तक ही केन्द्रित नहीं रहा, बल्कि आज यह अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण के रूप में परिलक्षित हो रहा है। भूमण्डलीकरण व्यापारिक क्रियाओं विशेषकर विपणन सम्बन्धी क्रियाओं का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना है, जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न करके देश की व्यापार सीमाओं को तोड़कर

सम्पूर्ण विश्व बाजार को एक ही क्षेत्र के रूप मे देखा जाता है। भारत में भूमण्डलीकरण का सूत्रपात देशो के मध्य प्रशुल्क एव अन्य नियन्त्रणात्मक अवरोधो को समाप्त करके घरेलू उद्योगो को विदेशी वस्तुओ की कडी प्रतिस्पर्धा योग्य बनाने का प्रयास है। भारतीय बाजार को शेष विश्व के लिए आंशिक रूप से खोल देने की भूमण्डलीकरण की यह नीति नि.सन्देह देश के सरक्षणवादी दृष्टिकोण से पलायन है।

भूमण्डलीकरण आज का युगधर्म है। इस पर शका करना या इसके विरोध मे कुछ कहना उपहास या पिछडेपन की निशानी माना जाने लगा है। इसके समर्थक पूरी दुनिया मे बैठे है। उनमे ग्लोबलाइजेशन के ऐसे भी भक्त हैं जो ग्लोबलाइजेशन की निदा को ईश्वर निदा जैसा अपराध मानते है। इनकी मान्यता है कि किसी एक देश के लिए नहीं, पूरे विश्व के कल्याण के लिए यह अवतार हुआ है। सदियो से दुनिया के सभी हिस्सो में इंसान त्रस्त रहा है, भूख से बीमारी, गरीबी और बेरोजगारी से राष्ट्र की संकरी दीवारो से बधे सभी इंसान जीवन का सुख नहीं पा सके हैं। ग्लोबलाइजेशन संकीर्णता का बधन तोड़ देगा, दुनिया एक गॉव की तरह बन जाएगी और जो संसार में वैभव है, उनमें सबकी हिस्सेदारी हो जाएगी। एक नयी दुनिया बनेगी जिसमें न दु:ख दारिद्रय होगा और न गैर बराबरी। ग्लोबलाइजेशन के प्रणेता यह सभी मानते है कि यह तो एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसको विज्ञान, तकनीकी, खास तौर से सूचना तकनीकी के विकास ने तेज गति दी है। सूचना तन्त्र सारी दुनिया को जोड़ देता है, क्षणभर मे दुनिया के किसी भी भाग से संबन्ध कायम किया जा सकता है। इसलिए वे लोग मानते है कि ग्लोबलाइजेशन अवश्य संभावी है, इसकी प्रक्रिया रूकने वाली नहीं है।

ग्लोबलाइजेशन के लिए हिन्दी में कई शब्द प्रचलित हुए है जैसे · भूमडलीकरण, वैश्वीकरण, जगतीकरण जिस अर्थ मे इसे व्याख्यापित किया जा रहा है, वह एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था है, जिसमे देशो की अर्थव्यवस्था और व्यापार खुले, जिसमें आपस मे जुड़े राष्ट्रों के नियम-कानून ढीले हों या समाप्त हो, जिससे बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ कहीं भी बेरोकटोक कारोबार कर सकें, मुक्त बाजार व्यवस्था बनें, पूॅजी एक देश से दूसरे देश मे बेरोकटोक जा सकें। इसका आधार मुक्त विनिमय और वैश्विक प्रतिस्पर्धा है। ग्लोबलाइजेशन के जो तत्व हैं, वे कोई नये नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तो आदिकाल से चला आ रहा है, तेज अंतर्राष्ट्रीय परिवहन अनेक दशकों से चल रहा है। पिछले 50 साल से तो बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ भी अपना कारोबार दुनिया में फैला रही हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण फली-फूली सभ्यता का लोप हो सकता है और वे सदियों तक उपनिवेश बन सकते हैं, यह कोलम्बस और वास्कोडिगामा की 500 साल पहले की यात्राओं के बाद

दुनिया ने देखा है। इस समय के ग्लोबलाइजेशन मे दो बाते नयी है। एक तो यह कि सोवियत सघ का विघटन हो जाने से इस व्यवस्था को कहीं से ताकतवर तरीके से प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड रहा है। दूसरी बात यह है कि दुनिया की बडी ताकते अमरीका और इग्लैण्ड बडी चतुराई से अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ-विश्व बैक और मुद्राकोष की मद्द से इस व्यवस्था को सम्मान जनक ढग से दुनिया पर लागू कर रहे है। अस्सी के दशक के शुरू मे पश्चिमी विकसित देशो मे भारी मदी का दौर चल रहा था। उससे निकलने के लिए दुनिया, खास तौर से तीसरी दुनिया के देशो मे बाजारो को खोलने की व्यापक योजना तत्कालीन अमरीकन राष्ट्रपति रीगन और ब्रितानी प्रधानमत्री थैचर ने मिलकर बनाई।

यह थैचर-रीगन का 'नई विश्वव्यवस्था' का मॉडल ही ग्लोबलाइजेशन के रूप मे दुनिया मे फैलाया जा रहा है। सत्तर के दशक के तेल संकट और असतुलित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण विकासशील देश कर्ज से लदते गये। उन्हे कर्ज से निजात दिलाने के लालच में विश्व बैक और मुद्राकोष ने ढॉचागत समायोजन कार्यक्रम अस्सी के दशक के शुद्ध मे लगभग 76 देशो पर लागू किया, जिसमे थैचर-रीगन मॉडल के सभी तत्व विद्यमान थे। देश केवल समझौते से ही इस मॉडल को अगीकार न करे, बल्कि कानूनी ढग से इससे वे बध जाए, इसके लिए गैट समझौते के ऑठवे चक्र-उरूग्वे चक्र को विकसित देशो ने अपने ढग से चलाया और उनमें से विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) 1994 मे बनाया जो अब कानूनी रूप से ग्लोबलाइजेशन को दुनिया पर लाद रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के तथाकथित विकृत रूप को जीवन्तता प्रदान करने और भारतीय उद्योगो को सरक्षणवाद की छतरी से मुक्त करने के उद्देश्य से भूमण्डलीकरण है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि अति संरक्षण घरेलू उद्योगो को 'सुस्त, मोटा एवं आलसी बनाता है'। इस दृष्टि से विकास वादी अर्थशास्त्रियो का यह दृष्टिकोण 'शिशु का पालन करो, किशोर को सरक्षण दो और वयस्क को आजाद कर दो' न्यायसगत प्रतीत होता है, क्योकि अत्यधिक संरक्षण के चलते घरेलू उद्योग गुणवत्ता की कसौटी से दूर हटते चले जाते हैं। इस दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था का भूमण्डलीकरण घरेलू उद्योगो को अधिक सक्षम, कुशल एवं जीवित क्षमता बनाने का प्रयास है। भूमण्डलीकरण के उद्देश्य वाली भारत की नई आर्थिक नीति विदेशी पूॅजी एवं विनियोग के लिए उदारपूर्ण दृष्टिकोण सुनिश्चित करती है। इस नए दौर में विदेशी पूँजी एव विदेशी निवेश नीति द्वारा अत्याधुनिक उत्पादन तकनीक, तकनीकी ज्ञान, मशीनों आदि का घरेलू उद्योगों में प्रयोग सरल एवं सुलभ बनाया गया है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था का नया दृष्टिकोण विदेशी पूॅजी के प्रयोग को प्रतिबन्धित न रखकर सहयोगी पूॅजी का

दर्जा प्रदान करता है। इसी का उत्साहवर्धक परिणाम यह है कि बडी मात्रा मे विदेशी पूँजी का भारतीय अर्थव्यवस्था मे निवेश सुनिश्चित हो पाया है।

उदारवादी दृष्टिकोण वाले आर्थिक सुधारो से देश मे विदेशी मुद्रा के प्रारक्षित भण्डारो मे आशातीत वृद्धि हुई है और 1991 मे उपस्थित विदेशी मुद्रा के सकट को समाप्त करने मे सफलता मिली है। जून 1991 मे विदेशी मुद्रा के प्रारक्षित भण्डार जो मात्र 1 1 बिलियन डालर थे,[22] 27 फरवरी 19998, को एक सम्मानजनक स्थिति पर पहुँचकर 27 364 विलियन डालर हो गए। यही नहीं नए आर्थिक दृष्टिकोण के कारण ही विदेशो मे गिरवी रखा गया, स्वदेशी सोना देश मे वापस मगा पाना सम्भव हुआ।

पिछले डेढ दशक मे लैटिन अमरीका, अफ्रीका, एशिया और पूर्वी यूरोप के देशो मे ग्लोबलाइजेशन के नाम पर अर्थव्यवस्था का एक मॉडल उभरा है। अधिकाश देशो मे तो इस मॉडल ने मर्ज को दूर करने के बजाए बढाया ही है। पश्चिम मे मैक्सिको और पूर्व मे तथाकथित 'एशियाई चमत्कार' दक्षिण कोरिया, थाईलैण्ड, हागकाग, मलेशिया, सिगापुर, इण्डोनेशिया को इस मॉडल की सफलता के नमूने के रूप मे विकासशील देशो के सामने पेश किया जाता रहा। दिसम्बर 1994 मे मैक्सिको के पतन और पिछले 6 महीनो मे 'एशियाई चमत्कारों' की दुर्गति से इस ग्लोबल मॉडल का सही रूप सामने आया है।

संक्षेप मे इसका ढॉचा कुछ इस प्रकार है - पहले गरीब, विकासशील देशो को पश्चिम के विकसित देशो की सम्पन्नता में साझीदार बनने के लिए अपने बाजार खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। विश्व बैंक और मुद्राकोष इन देशों को कर्ज देते समय ये शर्त लगाते है कि ये देश अपने बाजार बहुराष्ट्रीय कम्पनियो, बैको और विदेशी पूँजी निवेश के लिए खोले। विश्व व्यापार सगठन का सदस्य बनाते समय इन देशों से कहा गया था कि बहुराष्ट्रीय समझौते के नतीजतन 200 बिलियन डालर (20000 करोड़ डालर) का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढेगा, ये देश इसमे भागीदार बनकर अपनी खुशहाली बढ़ा सकेंगे। जैसे ही देश अपने बाजार खोलते हैं, निजीकरण को बढावा देते हैं, तुरन्त बडी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ, बैंक, पूँजी निवेशक, सट्टेबाज और मुद्रा की हेराफेरी करने वाले आ धमकते है।

भारत में उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण ने भारतीय अर्थव्यवस्था के जर्जर स्वास्थ्य को यद्यपि

---

22. मिश्रा, एस के एव पुरी वी,के, · भारतीय अर्थव्यवस्था (15वा सस्करण) 1997, पृष्ठ सख्या 674

जीवन प्रदान किया है, लेकिन भूमण्डलीकरण के गर्भ मे अनेक आशकाए छिपी है, जिन्हे नजरअदाज नहीं किया जा सकता। भारत मे भूमण्डलीकरण का दौर विश्व के बदलते राजनीतिक एव आर्थिक परिवर्तनो का ही परिणाम है। अमरीका सहित विश्व के अनेक यूरोपीय देशो मे बढती मन्दी के दौर ने विश्व व्यापार की दिशा एव स्वरूप को परिवर्तित किया है। विकसित देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं मे व्याप्त अति उत्पादन, बढती बेरोजगारी, एव स्थैतिक बनी विकास दर जैसी समस्याओ से छुटकारा पाने के लिए तीसरी दुनिया के अल्पविकसित एव विकासशील देशो मे अपना बाजार ढूँढने की रणनीति पर विचार करने लगे है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बदलते वातावरण मे भारतीय अर्थव्यवस्था को बन्द एव प्रतिबन्धित बनाए रखना असम्भव सा हो गया है और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ के दबाव से बाध्य होकर भारत को उदारीकरण की नीति स्वीकार करनी पडी है, यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उदारीकरण का दौर अभी भी अपनी आरम्भिक अवस्था मे ही है, कि बदलते अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक एव आर्थिक वातावरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को भूमण्डलीकरण की ओर मोडना पडा है।

विगत वर्षों की विदेशी मुद्रा की कमी के कारण एव अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से लिए गए ऋण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का विदेशी दबाव मे भूमण्डलीकरण की ओर प्रत्यावर्तन किया गया है। उदारीकरण प्रक्रिया की शैशवावस्था मे किया गया यह भूमण्डलीकरण भारतीय अर्थव्यवस्था को भविष्य मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो एव विकसित देशो के आर्थिक उपनिवेश के रूप मे बदल सकता है। इस आशंका से इकार नहीं किया जा सकता है कि मैक्सिको, इंडानेशिया, थाईलैण्ड जैसे देश अति उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण अपनाने के ही शिकार हुए है और ये अर्थव्यवस्थाएं आज अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। दक्षिण कोरिया, इडोनेशिया एवं थाईलैण्ड आदि देशों मे उभरकर सामने आया आर्थिक सकट मूलतः अति उदारीकरण नीतियों को अति शीघ्रता के साथ लागू करने का ही परिणाम है। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ के दबाव मे आकर इन अर्थव्यवस्थाओ ने अति उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण को अपनाया। वे देश के उत्पादन तन्त्र, सेवातन्त्र, वित्त तन्त्र, बैक, बीमा, स्टाक एक्सचेज तथा निर्णय तन्त्र पर अपना जाल फैला देते है। इस प्रक्रिया में देश का एक वर्ग जुड़ जाता है। कुछ खास तरह का उत्पादन बढता है। निर्यात भी बढता है, पर इससे अधिक आयात बढ़ता है पर ये सट्टेबाज और हेरा-फेरी करने वाली विदेशी ताकते मौके की तलाश में रहते है और सही वक्त पर ये चोट मारते हैं। देश के अन्दर संकट पैदा होता है, पूँजी देश के बाहर भाग जाती है। ऐसी मुद्रा की कीमत अतर्राष्ट्रीय बाजार में गिर जाती है, उद्योग, कृषि चरमरा जाते हैं और तब विश्व बैंक, मुद्राकोष मदद के लिए आते हैं, साथ में अमेरिका भी। सकट से उबरने के लिए इनसे मदद मिलती है, पर साथ ही कड़ी शर्तें लगाई जाती है।

विदेशी पूँजी आ जाती है, दुनिया के बाजार मे सकटग्रस्त देश को जमानत मिल जाती है, पर उसकी मुद्रा इतनी गिर जाती है कि उसका कर्ज बढ जाता है तथा उसके मुद्रा भडार की कीमत बेहद घट जाती है। विदेशी पूँजी निवेशक और सट्टेबाजी अपनी गतिविधियॉ तेज कर देते हैं और जो धन बाहर से आता है उसे फिर बाहर ले जाते है। देश फिर भीख के लिए विश्व बैंक का दरवाजा खटखटाता है। नतीजतन देश स्थाई रूप से कर्ज के फदे मे पड जाता है, उत्पादन दर गिर जाती है, निर्यात घट जाता है, आयात बढ जाता है और विदेशी ताकतो के कब्जे में फॅसकर देश का भारी शोषण होता है। 1991 मे भारत, 1994 मे मैक्सिको और अब दक्षिण कोरिया थाईलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि इस ड्रामा के जीवन्त उदाहरण है।

उत्तर के विकसित देशो मे इस मॉडल का रूप थोडा सा भिन्न है यही नतीजा है कि विकसित देशो के अन्दर भी वही हो रहा है जैसा कि दक्षिण के देशो मे, दुनिया के खुले बाजारों पर कब्जा करने की प्रतिस्पर्धा। वैश्विक प्रतिस्पर्धा मे इस मॉडल ने उत्तर मे विकसित देशों को बेतहाशा फसा दिया है। उनका निर्यात बढे, इसके लिए जरूरी है कि उनका सामना तुलनात्मक रूप से बेहतर और सस्ता हो। इसके लिए नयी-नयी तकनीकी की जरूरत तो है ही, उसमें तो बचत ही नहीं की जा सकती।

भारतीय चितन मे और बाहर भी विश्वनीडम, वसुधैव कुटुबकम् और बिनोवा जी के जयजगत की सकल्पनाए विद्यमान है। इनमे भारतीय चेतना के स्तर पर, मानव मूल्यो के स्तर पर, जीवन के अखण्डता के स्तर पर एक विश्व की कल्पना की है, जिसमे समानता के आधार पर मानव कल्याण की भावना है। आज जो वैश्वीकरण की हवा चल रही है, इसका इस भावना से कुछ भी लेना-देना नहीं है। आज के ग्लोबलाइजेशन के पीछे थैचर-रीगन की वह एग्लो सैक्सन मानसिकता है जो मानती है कि श्वेत लोगो के कधो पर विश्व की कल्याण का भार है, इसलिए वे सारी दुनिया का शोषण कर सकते हैं। दुनिया की 25 प्रतिशत आबादी वाले पश्चिम के देश, दुनिया के 85 फीसदी धन दौलत और ससाधनो का इस्तेमाल करते हैं। दूसरे महायुद्ध के पहले यह काम उनके उपनिवेशों के द्वारा बखूबी चल रहा था। वे अपना उपभोग और जीवनस्तर किसी कीमत पर कम नहीं करना चाहते। जाहिर है, उन्हें दुनिया से धन-दौलत बटोरने का कोई नया सूत्र खोजना था, वह उन्हें ग्लोबलाईजेशन के नाम से मिल गया।

क्या नीयत है, कि उसके पीछे, यह बात भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने एक प्रेस कान्फ्रेंस में उजागर कर दी थी। जो उन्होने अपने दूसरे चुनाव से पहले पूर्व एशिया की यात्रा शुरू

करने की बेला पर की थी। उन्होने कहा था - मेरा अथक प्रयास होगा एशिया और प्रशान्त के बाजारो को खोलना जिससे अधिक से अधिक अमेरिकी रोजगार पैदा हो सके और अमेरिकी वैभव की पुन स्थापना हो सके। वही बात आज राष्ट्रपति क्लिटन एशियाई देशो को मुद्रा सकट से उबारने के लिए अमेरिकी सहायता देते समय कहते हैं कि ऐसा करने से अमेरिकी मजदूरो को अधिक काम मिलेगा। नई-नई आजादी पाए विकासशील देशो मे राष्ट्रीय भावना है स्वदेशी और स्वावलबी के रास्ते पर चलना चाहते थे, उन्होने अपने-अपने देश के कानून ऐसे बनाये थे, जिससे बाहर की शक्तियॉं, विदेशी कम्पनियॉं फिर से उनका दोहन और शोषण न कर सके। यह बात बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को नागवार लगती थीं। ग्लोबलाइजेशन के जरिये बडी ही चतुराई से उन्होंने अपने गाव बेरोकटोक फैलाने का रास्ता बना लिया है। पिछले 15 साल की पूरी दुनिया का अध्ययन करने पर यह पता लगता है कि ग्लोबलाइजेशन के कारण पूरी दुनिया (उत्तर और दक्षिण दोनो) ही कसमसा रही है। फिर भी अतर्राष्ट्रीय खिलाडी और अधिक ग्लोबलाइजेशन और खुली बाजार व्यवस्था की हिमायत कर रहे हैं। हालत इस शराबी ड्राइवर जैसी है जिसको और शराब पीने के लिए कहा जा रहा है और साथ ही साथ सडक की रोशनी और बढिया तथा खतरे के निशान और अच्छे ढग से बनाकर उसे मजिल तक सही सलामत पहुॅंचाने की व्यवस्था की जा रही है।

कहीं भारत भी विदेशी वित्तीय सस्थाओ के दबावो के चलते ऐसे ही आर्थिक सकटो के भवर मे फॅंसेगा? यह शका आज प्रत्येक आर्थिक विचारक के मन में घूम रही है। यह शका पूर्णरूपेण काल्पनिक नहीं कही जा सकती, क्योकि भारत मे अपनाया गया भूमण्डलीकरण कुछ सम्भावित दुष्परिणामो की ओर सकेत कर रहा है जिनमे प्रमुख है -

1 भूमण्डलीकरण प्रक्रिया मे भारत मे बढता पूॅंजी निवेश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों तक विस्तृत न होकर केवल लाभप्रद क्षेत्रो तक सीमित होता दिखाई पड रहा है। विदेशी निवेशक भारतीय नियोजन की प्राथमिकताओ के अनुसार निवेश के इच्छुक नहीं दिखाई पडते, बल्कि केवल सम्भावित लाभ वाले क्षेत्रो तक ही सीमित रहना चाहते हैं। आशका यह है कि यह प्रवृत्ति कहीं भारतीय अर्थव्यवस्था को असन्तुलित एव द्वैत अर्थव्यवस्था के रूप में न बदल दें।

2 भारतीय अर्थव्यवस्था विकासोन्मुख होते हुए भी गरीबी एव बेरोजगारी का समाधान ढूँढने में असमर्थ रही है, भूमण्डलीकरण में बढता पूॅंजी निवेश गहन अर्थव्यवस्था का पोषक है, जिससे गरीबी एव बेरोजगारी की समस्याओ का कोई समाधान होता नहीं दिखाई देता, बल्कि अर्थव्यवस्था में आय की असमानताओं की वृद्धि की आशका अधिक बलबती होती दिखाई

भूमण्डलीकरण के दौर मे अर्थव्यवस्था का सरचनात्मक परिवर्तन स्वदेशी के व्यावहारिक धरातल पर किया जाना चाहिए। भूमण्डलीकरण की दौड मे अग्रणी बनकर हम अर्थव्यवस्था का सरचनात्मक सन्तुलन बनाए नहीं रख सकते। यदि भारत को मैक्सिको, दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया एव थाईलैण्ड जैसी दुर्दशा से बचाना है तो आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था को नियन्त्रण एव विनियमनो से मुक्त तो किया जाए, किन्तु अर्थव्यवस्था के अनुरूप व्यवहार्य गति से ही उन उपायो को अपनाया जाय तभी भारत जैसे गरीब देश मे आर्थिक सामाजिक समस्याओ के साथ विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

स्वदेशी बनाम विश्वीकरण

सदियो पुरानी बात है जब यू एस ग्रान्ट अमरीका के राष्ट्रपति थे। उस वक्त ब्रिटेन सम्पूर्ण विश्व मे अपना वर्चस्व कायम करने की पुरजोर कोशिशे कर रहा था और उस खातिर उसने एक आकर्षक व आसान रास्ता भी अख्तियार कर रखा था। मुक्त व्यापार का ब्रिटेन ने अपने बाजार को मित्र देशो के लिए खुला छोडा था और उन्हे भी अक्सर यह सलाह देता रहता था, मगर उसके पीछे ब्रिटेन की असली मशा क्या थी उसका अदाजा ईस्ट इण्डिया कपनी के भारत मे किये गये कारनामो से ही लगाया जा सकता है। जब ब्रिटेन ने यही सलाह अमरीका को दी, तो यू एस ग्रान्ट ने कहा कि सौ वर्ष तक अपने उद्योगो को सरक्षण प्रदान करने के बाद ही ब्रिटेन ने मुक्त व्यापार की नीति अपनायी थी। अत जब तक अमरीका भी एक सदी तक वैसा नहीं कर लेता, तब तक वह किसी भी हालात मे उसकी सलाह पर गौर नहीं फरमा सकता और ब्रिटेन अपना सा मुँह लेकर रह गया।

एक दफा अमरीकियों पर फिर से स्वदेशी का भूत सवार हुआ था। उस वक्त जापान की सरक्षणवादी नीतियो से अमरीका विशेष रूप से क्षुब्ध था और इस लिए ही जब लारन एजिल्स कारपोरेशन ने एक जमीन खोदक उपकरण खरीदनी चाही, तो उसे सबने यही सलाह दी कि उस उपकरण को वह जापानी कम्पनी 'कोमात्सु' से न खरीदकर अमरीकी कम्पनी 'जान डीटे से ही खरीदे ताकि 'बी अमेरिकन, बाई अमेरिकन' के नारे की सार्थकता सिद्ध हो सके। मगर कारपोरेशन ने जब उपकरण खरीद की प्रक्रिया प्रारम्भ की तो पता यह चला कि कोमात्सु की फैक्ट्री अमरीका में ही स्थित थी, जबकि जान डीरे का प्लान्ट किसी एशियाई देश में अवस्थित था और उसके उपकरण के अधिकाश पुर्जे अन्य मुल्कों से आयातित थे, जबकि कोमात्सु द्वारा निर्मित उपकरण पूर्णत अमरीका मे ही तैयार किया गया था। अब कारपोरेशन इस सोंच में पड गया कि उन दोनों उपकरणों में से 'स्वदेशी' कौन है और 'विदेशी' कौन। यह घटना कोई अपने तरह का अकेला उदाहरण नहीं है।

दरअसल उपरोक्त घटनाए यह सिद्ध करती है कि दो अलग-अलग समय बिन्दुओ पर एक ही मुल्क मे किस हद तक बदलाव आ सकता है और अफसोस की बात तो यही है कि कोई लाख चाहकर- भी समय की धारा का रूख मोड नहीं सकता। जो इसे नहीं समझते अथवा समझना नहीं चाहते उनके लिए सिर धुनने से फायदा भी क्या है। सवाल है कि बिल क्लिटन की जगह यदि यू एस ग्रान्ट ही अमरीका के राष्ट्रपति होते तो क्या उनके स्वदेशी कार्यक्रम को आज भी उतनी ही सफलता मिलती जितनी सौ वर्ष पहले मिली थी- कदापि नहीं?

जो लोग यह समझते है कि अब भी राजनीतिज्ञ ही देश को चलाते हैं, तो यह उनकी भूल ही है। आज से इस 'यान युग मे राजनीतिज्ञो की औकात रगमच पर सजाई गयी कठपुतलियो से अधिक नहीं है। उनका तमाशा तो हमे नजर आता है, लेकिन वह डोर नहीं जो किसी और के हाथो से बॅधी होती है। भाजपा तो शुरू से ही 'स्वदेशी' का जाप कर रही थी, लेकिन सत्ता मे आते ही उसके कदम वैश्वीकरण की ओर क्यो मुड गये।

हम इसे माने अथवा न माने, लेकिन हकीकत यही है कि सपूर्ण विश्व एक ऐसे युग की ओर तेज गति से बढ रहा है, जिसमे भिन्न-भिन्न देशो के बीच स्थित 'बर्लिन' की दीवारो का गिरना अवश्यभावी है। आने वाले वक्त मे सरकारो का इतना महत्व नहीं रह जाएगा, जितना लोगो की विचारधाराओ का और उसके सपनो की एकरूपता का, भविष्य मे राजनीति भले ही अपनी जगह कायम रहे, लेकिन व्यापार की महत्ता उससे कई गुना अधिक बढ जाएगी और सम्पूर्ण ससार एक बडे मच मे परिवर्तित हो जाएगा। जहॉ तक लोगो का सवाल है, तो उन्हे एक सूत्र मे बाधने का काम सस्कृति तथा सचार की व्यवस्था करेगी।

उस वक्त ही विश्व उत्पाद के मुकाबले विश्व व्यापार दुगुनी दर से विकसित हो रहा है, जिसकी एक मुख्य वजह यातायात तथा सूचना की कीमत मे निरन्तर कमी भी आ रही है। एक मोटे अनुमान के मुताबिक सिर्फ विश्व सूचना की कीमत मे प्रतिवर्ष करीब 20 प्रतिशत की कमी आ रही है, जिसका फायदा सभी को मिल रहा है और उन्हीं सब बातों के चलते आज न सिर्फ बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ पूरे विश्व में अपना साम्राज्य फैलाने मे कामयाब हो रही हैं, बल्कि छोटी मोटी कपनियो को भी अपनी गतिविधियॉ बढाने का भरपूर मौका मिल रहा है।

उदाहरण स्वरूप पहले एक फैक्ट्री में उत्पाद बनकर तैयार हो जाता था, मगर अब कच्चा माल कहीं और से आता है, कम्पोनेन्ट्स कहीं और से आयात किए जाते हैं, तकनीक

किसी और की होती है, उत्पाद बनाने वाला कोई और होता है, तैयार माल कहीं अन्यत्र भेजा जाता है, उसे बेचता कोई और है और अतत कुल मुनाफे का अधिकाश हिस्सा किसी अन्य देश को जाता है, बाटा के जूते कानपुर, आगरा तथा कलकत्ता के कारीगर तैयार करते हैं। मुनाफे का अधिकाश हिस्सा बाटा ही हडप कर जाती है, लेकिन क्या देशी कारीगरों, देशी दुकानदारों तथा देश की सरकार को उसमे से कुछ भी नहीं मिलता। वैसे हमारे नेताओ को इस बात की बडी फिक्र होती है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ देश को बरबाद कर देगीं और उनके उत्पादो के आगमन से हमारी सस्कृति नष्ट हो जायेगी। यह नहीं कहा जा सकता कि 'स्वदेशी' एक तर्कहीन विचारधारा है अथवा 'वैश्वीकरण' का कोई विकल्प सभव नहीं है, लेकिन चिन्ता का विषय यह है कि हमारे यहा भूमण्डलीकरण का विरोध अधिकतर वैसी शक्तियो द्वारा किया जा रहा है जिनकी अपनी कोई विचारधारा नहीं है और देश की भोली-भाली जनता को गुमराह कर अपना उल्लू सीधा करना ही जिनका एक मात्र उद्देश्य है। ये वही लोग हैं जो हर्षद मेहता जैसे लोगो तथा जे वी जी जैसी कम्पनियो का साथ देते है और अहर्निश राग यह अलापते है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ देश को बर्बाद कर रही है। रही बात 'स्वदेशी' की तो इस परिप्रेक्ष्य मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब तक औरो मे खोट निकालने के बदले अपनी ऊर्जा का रचनात्मक प्रयोग करना हम नहीं सीखेगे, तब तक दुनिया का हर वरदान हमारे लिए अभिशाप ही सिद्ध होगा, इसमे कोई सदेह नही है।

आर्थिक सुधार और उदारीकरण के ढहते साम्राज्य :

विकसित देशो के पूॅजी बाजारो मे प्रतिफल की नीची दरो तथा भविष्य मे इसमे किसी प्रकार का सुधार न हो पाने की आशकाओ से ग्रसित पूॅजी प्रबन्धकों, निगमित निवेशको तथा सस्थागत निवेशको ने सयुक्त राज्य अमरीका की राजनीतिक और जापान की आर्थिक शक्ति का 'सिवार' (पानी के ऊपर तैरती घास) पकडकर मन्दी की नदी को पार करने का प्रयास किया। इसके लिए प्रत्यक्ष तौर पर विकासशील देशो- मैक्सिको, दक्षिण कोरिया, ब्राजील, भारत, इण्डोनेशिया, मलेशिया आदि पर यह दबाव डाला गया कि वे आर्थिक सुधारों का विस्तृत कार्यक्रम लागू करके अपनी-अपनी अर्थव्यस्थाओं को उदार बनाए तथा विदेशी व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, परोक्ष विदेशी निवेश के लिए सभी प्रकार की बाधाओ को समाप्त करते हुए वैश्वीकरण की प्रक्रिया से स्वय को आत्मसात् करें। यही कार्य विकसित देशों के (जे वी सगठन)

बन चुके विश्व बैक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा 1 जनवरी 1995 को अस्तित्व मे आए, विश्व व्यापार सगठन के माध्यम से करवाया गया। घरेलू एव वैश्विक स्तर पर रातो रात ऐसे विशेषज्ञ पैदा हो गए, जिनकी दृष्टि से किसी भी देश की किसी समस्या की मूल जड आर्थिक गतिविधियो पर लगाए गए नियन्त्रण एव विनिमयन थे। राष्ट्रवाद के नाम पर लागू की गई सरक्षण की व्यवस्था, जिसने अतीत मे वर्तमान के कई विकसित देशो को विकसित होने मे उल्लेखनीय रूप से योगदान दिया था। यकायक ही निष्प्रयोज्य, पुरानी तथा बेकार हो गई अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ तथा उनके पश्चात्वर्ती क्लासिकल अर्थशास्त्रियो 'लेजेज फेयर' का दौर फिर लौट आया।

वर्ष 1990-91 मे पूर्वी यूरोप से साम्यवाद का पलायन तथा विश्व की महाशक्ति कहे जाने वाले सोवियत सघ के विघटन ने पूॅजीवाद के समर्थको को यह सिद्ध करने का अवसर प्रदान कर दिया कि राज्य के स्वामित्व एव सरक्षण मे देश का आर्थिक विकास सही ढग से नहीं किया जा सकता।

उदारीकरण का पहला शिकार मैक्सिको :

कृषि अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर मैक्सिको ने सयुक्त राज्य अमरीका, विश्व बैक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कथित परामर्श (दबाव) पर अपनी अर्थव्यवस्था के द्वारा विदेशी निवेशको के लिए मुक्तभाव से खोल दिये। वर्ष 1993 एव 1994 मे वहॉ अरबो डालर के विदेशी निवेश का अन्तर्प्रवाह हुआ। आर्थिक सुधार एव उदारीकरण के नाम पर दी गई विभिन्न छूटो का परिणाम यह हुआ कि मैक्सिको के पूॅजी बाजार मे बेतहाशा विदेशी पूॅजी आई, जिससे मुद्रा प्रसार की स्थिति उत्पन्न हुई। दूसरी ओर निर्यातो मे अपेक्षित वृद्धि न हो पाने तथा आयातो के बढ जाने से व्यापार खाते का घाटा बहुत अधिक बढ गया और भुगतान सतुलन काफी बडी सीमा तक प्रतिकूल हो गया। मुद्रास्फीति की स्थिति से उबरने के लिए सरकार ने पीसों को अधिमूल्यित कर दिया।

पीसों का अधिमूल्यन, चालू खाते का बृहद स्तरीय घाटा एव राजनीतिक अस्थिरता के माहौल में विदेशी पूॅजी निवेशकों को अपनी पूॅजी डूबती नजर आने लगी। इस जोखिम को कम करने के लिए विदेशी निवेशकों ने शेयरों-डिबेंचरों एव बाण्डों को बेंचकर अपनी पूॅजी मैक्सिको से बाहर निकालना

प्रारम्भ कर दिया। इससे चालू खाते का घाटा और भी अधिक बढने लगा स्थिति से निपटने के लिए नव निर्वाचित राष्ट्रपति अरनेस्टो जेडिलो ने 1 दिसम्बर 1994 को सत्ता सम्भालने के ठीक 20 दिन बाद मैक्सिको की मुद्रा पीसो का अमरीकी डालर के मुकाबले 30 प्रतिशत अवमूल्यन कर दिया। उद्देश्य यही था कि इससे निर्यात बढेगे तथा आयात कम होगे, प्रारम्भिक दौर मे ऐसा हुआ भी, लेकिन निर्यात वस्तुओ के साथ-साथ पीसो मे व्यक्त होने वाली पूँजी प्रतिभूतियो के मूल्यों में भी तेजी से गिरावट होने लगी। पीसो के अवमूल्यन के बाद के ऑकडे बताते हैं कि अवमूल्यन के एक सप्ताह के भीतर सयुक्त राज्य अमरीका के म्यूचुअल फण्डो द्वारा धारित पीसो मूल्य मे व्यक्त की जाने वाली प्रतिभूतियों के मूल्यो मे 16 प्रतिशत की गिरावट आ जाने से म्यूचुअल फण्डो को 60 करोड डालर की हानि हुई।

इससे विदेशी पूँजी निवेशको मे हडकम्प मच गई, उनके लिए पूर्व राष्ट्रपति द्वारा दिए गए इस आश्वासन का कोई अर्थ नहीं रह गया कि सरकार प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए पीसो के अवमूल्यन जैसे उपायो का सहारा नहीं लेगी, परन्तु आरनेस्टो सरकार ने वहीं किया जो चालू खाते के घाटे को कम करने के लिए किया जाता है। सरकारी तौर पर तो मैक्सिकन पीसो का 30 प्रतिशत ही अवमूल्यन किया गया, परन्तु उसका मूल्य लगातार गिरता रहा और 6 जनवरी 1995 को पीसो का मूल्य 19 दिसम्बर 1994 के मुकाबले 59 प्रतिशत कम हो गया।

मैक्सिको के मामले मे महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने आर्थिक सुधारो को अपनाया तथा उदारीकरण करके विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए हर सम्भव प्रयास किये और उसमे उसे सफलता भी मिली, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि वर्ष 1993 मे लगभग 3610 अमरीकी डालर के बराबर प्रति व्यक्ति आय के साथ स्वय को विकसित देश होने का दम्भ भरने वाला देश मेक्सिको जिसने स्वय को विकासशील देशो के समूह 'जी-77' से अलग करके विकसित देशों के समूह मे शामिल हो जाने की घोषणा 1994 मे की थी को यकायक ही ऐसा क्या हो गया कि उसकी अर्थव्यवस्था 1995 में गहरे आर्थिक सकट मे फॅस गई। निवेशकों को करोडो डालर का घाटा हुआ तथा अन्तत मैक्सिको की सहायता करने के लिए सयुक्त राज्य अमरीका ने 47 8 अरब डालर की सहायता राशि उपलब्ध कराई।

आर्थिक सुधारो तथा उदारीकरण के लिए दबाव डालने वाले अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी मैक्सिको को 7 8 अरब डालर का स्टैन्ड वाई ऋण स्वीकृत किया। विगत कुछ वर्षों में पूर्वी एशियाई देश दक्षिण कोरिया ने वैश्विक बाजार में धमाकेदार उपस्थिति दर्ज की है तथा 1997

के अन्तिम महीनो मे स्वय को 'जी-77' देशो के समूह से पृथक करके विकसित देश घोषित कर दिया है। दक्षिण कोरिया की गणना विश्व की ग्यारहवीं बडी अर्थव्यवस्था के रूप मे की जाने लगी है, वहीं दक्षिण कोरिया आज इस सीमा तक गहरे सकट मे है कि राष्ट्रपति ने 23 दिसम्बर 1997 को सरकार को असहाय बताते हुए यहा तक कह डाला कि वे यह नहीं बता सकते कि दक्षिण कोरिया आज दिवालिया हो जायेगा या स्थिति से उबरने के लिए दक्षिण कोरिया ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 60 अरब डालर की तत्काल सहायता दिये जाने की माग की।

दक्षिण एशिया के अन्य दो प्रमुख विकासशील देशो-इण्डोनेशिया तथा थाईलैंण्ड में भी गम्भीर वित्तीय सकट है। दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया तथा थाईलैण्ड की मुद्राओ मे क्रमश वॉन, रूपिया और बहत विगत दो-तीन महीनो मे ही अपनी चमक खो दी है। इण्डोनेशिया रूपिया का विनिमय मूल्य अप्रैल 1997 के अन्त मे 2460 रूपिया प्रति अमरीकी डालर से लगभग 84 प्रतिशत से गिरकर 22 जनवरी 1998 को 15000 रूपये प्रति डालर के स्तर पर पहुॅच गया। कोरियाई वॉन का विनिमय मूल्य अप्रैल 97 के अन्त मे 895 वॉन प्रति डालर था जो 45 96 प्रतिशत से गिरकर 14 जनवरी 1998 को 1660 वॉन प्रति डालर के स्तर पर पहुॅच गया। थाईलैण्ड बहत अप्रैल 97 के अन्त मे 26 07 बहत प्रति डालर से 47 92 प्रतिशत नीचे गिरकर 14 जनवरी 1998 को बढत प्रति डालर रह गया तथा मलेशियाई रिंगगिट प्रति डालर 41 86 प्रतिशत से गिरकर 2 5 रिंगगित प्रति डालर से 4 30 रिंगगिट प्रति डालर रह गया। विदेशी विनियम बाजार की इस हालत का प्रभाव इन देशो को ही नहीं एशिया के अन्य प्रमुख देशो के शेयर बाजारो पर भी पडा है जहॉ शेयरो के मूल्यो मे भारी गिरावट आई है।

पहले मैक्सिको और अब दक्षिण कोरिया तथा इण्डोनेशिया और थाईलैण्ड विकास क्रम मे ऊॅची तथा सम्मानजनक स्थिति दर्ज करके आखिरकार क्यो धरातल पर आ गिरे? इन सभी देशो को स्वय तथा इन्हे बाजारी अर्थव्यवस्था की ओर ले जाने वाले और इनमे आर्थिक सुधार तथा उदारीकरण की नीतियॉ लागू करने के लिए बाध्य करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कर्ता-धर्ताओं को यह विश्वास हो चला था कि विदेशी व्यापार, पूॅजी निवेश, विदेशी विनिमय बाजार तथा पूॅजी बाजार मे पूरी तरह से मुक्त प्रदेश और बहिर्गमन की नीति अपनाकर अर्थव्यवस्था को उॅची विकास दर की ओर ले जाया जा सकता है, लेकिन विगत दिनों के राष्ट्रवादी राजनीतिज्ञो तथा अर्थशास्त्रियों का तो इन तथाकथित आर्थिक सुधारों और उदारवादी

नीतियो के प्रति मोह भग हो ही गया होगा। इन देशो मे आये आर्थिक सकट के सन्दर्भ मे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, सयुक्त राज्य अमरीका की बहुराष्ट्रीय कम्पनियो तथा पश्चिमी विकसित देशो की पूँजीवाद समर्थक सरकारो की भूमिका का विश्लेषण करना आवश्यक हो गया है। जब किसी देश के विदेशी विनिमय बाजार मे उथल-पुथल आने से वहॉ की मुद्रा का मूल्य गिरता है तो उस देश के समक्ष विदेशी भुगतान का सकट पैदा हो जाता है। घरेलू मुद्रा के रूप मे विदेशी ऋण का बोझ बढ जाता है। निर्यात सस्ते तथा आयात मॅहगे हो जाते हैं। इसके दुष्प्रभाव पूँजी बाजार पर भी पडते हैं, जहॉ कम्पनी के शेयरो तथा डिबेचरो के मूल्य गिर जाते हैं। डालर के रूप मे तो इनका मूल्य और भी कम हो जाता है। इस सकटकाल मे सकटग्रस्त देश के बैक तथा कम्पनियॉ दिवालिया होने लगती है कारखाने बन्द होने लगते हैं। ऐसे में विकसित देश तथा उनके जे बी सगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैक तथा विश्व व्यापार सगठन, सकटग्रस्त देशो के बचाव के लिए आगे आते है। सकटग्रस्त देशो से कहा जाता है कि वे -

1 आर्थिक सुधारो तथा उदारीकरण की प्रक्रिया को और अधिक तेज करे।

2 आर्थिक शिकायत के रूप में सार्वजनिक व्यय मे कटौती करें तथा प्रत्यक्ष करों के माध्यम से अधिक राजस्व अर्जित करें ताकि सार्वजनिक बचतों में वृद्धि हो और उसका उपयोग विदेशी ऋणों को चुकाने के लिए किया जा सके।

3 आयातो पर से प्रतिबन्ध हटाये तथा आयात शुल्को को न्यूनतम स्तर पर लाए।

4 विदेशी कम्पनियों का बिना रोंक-टोक के निवेश करने दे तथा घरेलू कम्पनियों का निर्वाध रूप से अधिग्रहण करने दें।

उपर्युक्त समस्त उपायो तथा तात्कालिक परिस्थितियो का लाभ अन्तत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ही मिलता है वे भारी अवमूल्यन से डालर के रूप मे सस्ती हो गई उत्पादक परिसम्पत्तियो को खरीदकर अपने साम्राज्य की ओर अधिक विस्तृत कर लेने मे सफल हो जाती है। यह समस्त स्थिति ही वास्तव मे 'कल्चर कैपीटालिज्म' है। इसके अन्तर्गत पहले तो विकसित देशों की सरकारें बैंक तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ विस्तृत बाजार वाले विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को कमजोर होने देती है फिर मरणासन्न हो चुकी अर्थव्यवस्थाओं का उसी प्रकार अधिग्रहण कर लेती है जिस प्रकार गिद्ध मरी हुई लाश को नोंच-नोंच कर जा खा जाते हैं।

1994 में मैक्सिको में यही और अब दक्षिण कोरिया में इसी प्रकार के पूँजीवाद के लिए रगमच तैयार कर लिया गया है। शेयरों के मूल्यो में भी भारी गिरावट तथा वॉन के ऐतिहासिक रूप से

कमजोर हो जाने से दक्षिण कोरिया मे सैकडो छोटी-बडी कम्पनियॉ बन्द या दिवालिया हो रही है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के लिए दक्षिण कोरिया जैसे आकर्षक देश मे पैर पसारने का इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता है। सयुक्त राज्य अमरीका तथा यूरोप की अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियो ने दक्षिण कोरिया की बन्द हो चुकी या दिवालिया हो चुकी कम्पनियों को अत्यधिक नीचे मूल्य पर क्रय करने की तैयारियॉ कर ली है। शेयरों के मूल्यों मे भारी गिरावट हो जाने से इन कम्पनियों की चुकता पूॅजी का मूल्य (डालर और वॉन दोनो ही मुद्राओं) में काफी कम रह गया है, दूसरे वॉन के अवमूल्यन के परिणाम स्वरूप इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को प्रति एक लाख वान् के बदले कम डालर देने होगे। इतनी ही नहीं इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को दक्षिण कोरिया की कम्पनियों मे कार्यरत श्रमिको को डालर के रूप मे अमरीका की तुलना मे आधी ही मजदूरी देनी होगी। इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी कि अमरीका की सर्वाधिक धनवान कम्पनियॉ अमरीका मे अपना कारोबार बन्द करके एशियाई कम्पनियो को खरीदकर बिना किसी अतिरिक्त जोखिम के करोडो डालर कमा ले। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत जनरल मोटर्स, प्रोक्टर एण्ड गैम्बिल कोका कोला तथा कई अन्य अमरीकी कम्पनियों ने अपने दक्षिण कोरियाई प्रतिस्पर्धियों को खरीद लिया है इतना ही नहीं दक्षिण कोरिया के दो प्रतिष्ठित बैको-कोरिया प्रथम बैंक तथा सियोल बैंक को क्रमश चेजमैन हट्टन तथा सिटी बैंक द्वारा खरीदे जाने की तैयारी की जा रही है।

दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया तथा थाईलैण्ड मे पैदा हुए आर्थिक सकट के सन्दर्भ मे एक प्रमुख तथ्य यह भी उभरकर सामने आया है कि इन देशों में आर्थिक सुधारों तथा उदारीकरण की नीतियो को लागू करने में आवश्यकता से अधिक शीघ्रता की गई प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एलिस एक्सडेन जो मसेशसेट्स इस्टीटियूट ऑफ टेक्नोलाजी मे दक्षिण कोरियाई मामलो के विशेषज्ञ हैं का मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओ के दबाव मे आकर जैसे दक्षिण कोरिया की सरकार ने बैकों पर अपना नियत्रण ढीला किया। इसकी मुद्रा वॉन के विरूद्ध सट्टेबाजी का दबाव एक गम्भीर समस्या बन गया।

मेरे आकलन के अनुसार भारत जैसे अन्य विकासशील देशों के लिए चाहिए कि वे अपनी अर्थव्यवस्थाओ को नियन्त्रणो एव विनियमनो से मुक्त तो करें, परन्तु ऐसा एक व्यवहार्य गति से किया जाना चाहिए न कि गम्भीर मुद्रा मदी की जोखिम उठाकर। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया तथा थाईलैण्ड को ऐसे अपराध के लिए दण्डित किया जा रहा है, जो उन्होंने किया ही नही है। ये सभी देश दोषपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय दर प्रणाली के शिकार हुए हैं, जो सयुक्त

राज्य अमरीका के नेतृत्व मे पूॅजी की गत्यात्मकता को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। इस प्रणाली को जब भी कोई देश उदारतापूर्वक अपनाता है तो बैक, सरकारे, व्यवसायी तथा सटोरिए भारी मात्रा मे विदेशी मुद्राओ का क्रय-विक्रय करने लगते हैं। क्रय विक्रय की प्रक्रिया उस समय तो और भी तेज हो जाती है जब किन्हीं आन्तरिक अथवा वाह्य कारणो से अर्थव्यवस्था को झटका लगता है और अर्थव्यवस्था अन्तत सकट में फॅस जाती है।

मैक्सिको, दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया एव थाईलैण्ड में आर्थिक सुधारो तथा उदारीकरण के परिणामस्वरूप आए आर्थिक सकट से भारत जैसे विकासशील देशों की सीख लेनी चाहिए। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित जेम्स होबिन की टिप्पणी है कि 'दक्षिण पूर्व एशिया मे घटी घटनाए यह प्रश्न पैदा करती हैं कि क्या यह दावा वास्तव मे सही है कि वित्तीय बाजारो का वैश्वीकरण एव उदारीकरण सम्पन्नता एव प्रगति का मार्ग है? ' स्थिति का सही आकलन है निष्पक्ष तौर पर आज अनेक देशी एव विदेशी अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ एव बैंकर्स यह स्वीकार कर रहे हैं कि यदि पश्चिमी विकसित देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव मे आकर भारत ने रूपये को पूॅजी खाते पर भी पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया होता तो आज उसकी भी वह हालत होती जो दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया तथा थाईलैण्ड की हुई है। सामान्य तौर पर अपनी मुद्रा के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास बढाने के लिए केन्द्रीय बैंक विश्व की ठोस समझी जाने वाली मुद्राओ अमरीकी डालर, स्टर्लिंग पॉण्ड, ड्यूश मार्क, येन अथवा इनकी वास्केट की तुलना मे अपनी मुद्रा का मूल्य सामान्य से ऊॅचा रखते हैं इस स्थिति को बनाये रखने के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा पहले से ऊॅचे रखे गए मूल्य पर ही विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय किया जाता है। किसी विषम परिस्थिति से निपटने के लिए केन्द्रीय बैंक के पास विदेशी मुद्राओं का आरक्षित भण्डार भी होता है किसी भी सरकार की स्फीतिकारी मौद्रिक एव राजकोषीय नीतियॉ उसकी मुद्रा को अधिमूल्यित कर सकती है तो कभी वाह्य प्रभाव भी ऐसा कर सकते हैं। अधिमूल्यित घरेलू मुद्रा के परिणाम स्वरूप विदेशों में उस देश के निर्यात मॅहगे हो जाते हैं तथा देशवासियो के आयात सस्ते इससे निर्यातो की अपेक्षा आयातो मे वृद्धि हो जाती है जो व्यापार घाटे में वृद्धि करती है। ऐसे में यदि सटोरिए सक्रिय हो जाए और विदेशी विनिमय बाजार मे मुद्रा पूरी तरह से परिवर्तनीय हो, तो वही होगा जो दक्षिण पूर्व एशिया देशो में हुआ। जापान मे व्याप्त मदी के कारण येन की तुलना में अमरीकी डालर के मूल्य मे विगत् 2-2 1/2 वर्ष में 50-60 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की मुद्राए जिनका मूल्य कृत्रिम तौर पर डालर के सापेक्ष पहले से ही अधिक था, येन के सापेक्ष भी मजबूत हो गई इसका सीधा सा परिणाम यह हुआ कि जापान जो कि उनके उद्योग का सबसे बड़ा बाजार था, में उनके उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मक काफी कमजोर हो गई। जापान में व्याप्त मदी ने उसके

आयातो को काफी बडी सीमा तक कम किया। परिणाम सामने है तीन माह पूर्व ही स्वय को विकासशील से विकसित देश कहलाने की स्थिति मे लाने वाला दक्षिण कोरिया आज सयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से 60-70 अरब डालर की तत्काल आर्थिक सहायता की भीख मॉग रहा है ताकि दिवालिया होने के कलक से बचा जा सके। विगत 5-6 वर्षों मे भारत मे भी आर्थिक सुधारो तथा उदारीकरण की नीतियो की लहर चल पडी है और इनमे से बहुत सी नीतियॉ सयुक्त राज्य अमरीका, जापान, फ्रास, जर्मनी तथा अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार सगठन जो मुख्य रूप से विकसित देशो के ही माउथ पीस है के दबाव मे आकर अपनाई गई है।

मैक्सिको एव दक्षिण पूर्वी एशियाई देशो मे घटित घटनाओ के सन्दर्भ मे अब भारत को अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है विशेष तौर पर पूँजी खाते पर रूपए की पूर्ण परिवर्तनीयता लागू करने तथा विदेशी निवेशको को अधिकाधिक रियायतें देने के सम्बन्ध मे रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार को इस बात पर भी कडी नजर रखनी होगी कि भारत के व्यावसायिक बैंक बहुत बडी मात्रा में विदेशी बैंकों एव कम्पनियों से अल्पकालीन ऋण न ले।

पहले मैक्सिको एव अब दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड की अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष पैदा हुए आर्थिक सकट ने आर्थिक सुधारो तथा उदारीकरण की सफलता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि विकसित देशो की सरकारें और उनके सरक्षण में पल रही बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ विकासशील देशो की कम्पनियॉ, बैंको तथा उद्योगो पर गिद्ध दृष्टि लगाए बैठी हैं कि कब इनका दिवाला निकले और कब वे औने-पौने मे इन्हे खरीदकर इन देशों के बाजारो पर कब्जा कर ले। इन देशों में जो कुछ घटित हुआ उसके लिए इन देशों के कर्ता-धर्ता तो दोषी ही है, पश्चिम के ऋणदाताओ की नीयत भी कम सदिग्ध नहीं है।

अभी हाल में केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागो, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और राष्ट्रीयकृत बैको मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के कम्प्यूटरों के प्रति बढते मोह के कारण देश में विभिन्न उत्पादों के समक्ष उत्पन्न खतरे को देखते हुए उच्चतम न्यायालय मे एक जनहित याचिका दायर की गयी है। जाने-माने अर्थ पत्रकार चेतन चड्ढा ने राजधानी के कई वित्तीय अखबारों में हाल में ही इन विभागों द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के कम्प्यूटरो की खरीद के बारे में आमन्त्रित निविदाओं के सम्बन्ध में प्रकाशित लेखों के आधार पर इस तरह की राष्ट्र विरोधी कारवाहियों को रोंकने के लिए उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। याचिकाकर्ता ने याचिका में भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, दक्षिण पश्चिम रेलवे, भारतीय अतरिक्ष अनुसधान केन्द्र, तेल एव प्राकृतिक गैस निगम, रिजर्व बैंक आफ

इण्डिया बैक आफ इण्डिया भारतीय गैस प्राधिकरण और खनिज उत्खनन निगम कम्प्यूटरो की खरीद के लिए आमन्त्रित निविदाओ मे केवल बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के कम्प्यूटर ब्राडो का जिक्र किया था। याचिकाकर्ता ने अदालत से इन कम्पनियो या इनसे सम्बद्ध सघटनो की इन निविदाओ को सविधान के अनुच्छेद 14 38 और 39 के तहत अवैध मानने तथा इन्हें रद्द करने का भी आग्रह किया था। श्री चड्ढा ने अदालत से अन्य सरकारी विभागो और सार्वजनिक उपक्रमो को भविष्य में इस तरह की निविदाए आमन्त्रित न करने के निर्देश देने का आग्रह किया है।

उन्होंने कहा कि यदि सरकार और इसके सम्बद्ध विभाग ही देश मे निर्मित उत्पादों को तरजीह नहीं देगे तो इससे न केवल भारतीय इलेक्ट्रानिक प्रौद्योगिकी के विकास और अनुसधान को धक्का लगेगा, बल्कि इससे विदेशी बाजार मे भी गलत सकेत जायेगा और वे भारतीय उत्पादों के खिलाफ दुष्प्रचार कर शोषण करना शुरू कर देगे।

जिस तरह अमेरिका केवल भारत को निगाह मे चढा लिया है। उससे मालूम होता है कि यहॉ के नेता केवल चुप्पी साध लेते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका भारतीय बासमती चावल पर अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'राइसटेक' पेटेन्ट लगा दिया है उससे जान पडता है कि भारत जैसे देश मे इस पेटेन्ट का पूर्ण रूपेण से विरोध करने वाला कोई है ही नही। विश्व मे बासमती चावल का निर्यात सबसे अधिक भारत ही (80 प्रतिशत) करता है और दूसरे स्थान पर पाकिस्तान है जो 20 प्रतिशत निर्यात कर पाता है, लेकिन यह अमेरिका वालों को बता देना होगा कि चाहे कोई भी देश हो अगर वह बासमती चावल को जानता है तो भारत के ही बदौलत, लेकिन भारत सरकार तथा नेताओं को 4 महीने बाद मालूम हुआ कि बासमती चावल पर अमेरिकी पेटेण्ट लगा दिया गया है। तब खलबली मच गई, लेकिन केवल खलबली ही से कुछ नहीं होगा। यह बडे शर्म की बात है कि पिछले डेढ साल से बासमती का पेटेण्ट कराने के मामले चुप्पी साधे रहे, जबकि राइसटेक ब्रिटेन, ब्राजील और यूनानी बाजारो मे बासमती और टेक्समती के नाम से बिक्री होती रही। जिस तरह से अमेरिका पहले हल्दी, नीम पर पेटेन्ट लगाया उसके बाद बासमती पर पेटेण्ट लगाया। अब उसका पग औषधियों एव जडी बूटियो पर दिखाई दे रहा है। भारत सरकार को इस पेटेन्ट से काफी नुकसान का सामना करना पड सकता है। जहॉ एक तरफ इस बासमती चावल से 12 अरब विदेशी मुद्रा अर्जित करता था वहीं अब इस 12 अरब मे भी घात लगाने के ताड में अमेरिका पूर्ण रूप से सफल हो गया है।

भारत के वाणिज्य मत्रालय, अमेरिका की 'राइसटेक' कम्पनी के खिलाफ ब्रिटेन में मुकदमा चल रहा है। इसके पहले हल्दी को भी पेटेन्ट करा लिया गया था तो इसके लिए भी मुकदमा किया

गया था। उस मुकदमे मे भारत सरकार की विजय हुई थी। आखिर हम लोग कब तक अमेरिकी के इस दादागिरी के सामने घुटने टेकते रहेगे। अब इस पेटेन्ट के खिलाफ आवाज उठानी पडेगी नहीं तो अमेरिकी कदम आगे निकल जायेगा। हर प्रकार से अमेरिका भारत को परेशान करने की कोशिश करता रहता है। इसका एक ही इलाज है कि भारत सरकार इस पेटेन्ट को जमकर विरोध करे नहीं तो अमेरिका की दादागिरी बढ ही जायेगी।

आर्थिक उदारीकरण प्रक्रिया शुरू होने से अब तक डालर के मुकाबले रूपया दुगुने से भी अधिक नीचे आ चुका है और वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए इसका क्या स्तर होगा इस पर अनिश्चितता बनी हुई है। वर्ष 1991 के मध्य मे नरसिहा राव सरकार ने देश में आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत की थी और उस समय वित्त मत्री डा मनमोहन सिह ने जुलाई 91 मे दो बार डालर के मुकाबले रूपये का अवमूल्यन किया और उसके बावजूद अमरीकी डालर के मुकाबले रूपये की कीमत 22-24 रूपये के बीच थी। पिछले सात वर्षों मे रूपया लगातार गिरता हुआ गत सप्ताहात 43 67 रूपये प्रति डालर तक घटने के बाद 42 56 - 42 58 रूपये पर बद हुआ। इस प्रकार रूपये में करीब सौ प्रतिशत की गिरावट आ चुकी है। दूसरे शब्दों मे यदि हम कहें कि सात वर्ष पहले एक अमरीकी डालर के हमे यदि 22 रूपये खर्च करने पडते थे तो आज इस पर 43 रूपये देने पडते हैं।

डालर-रूपये की विनिमय दर का असर आयात-निर्यात दोनो पर पडता है। रूपये के कमजोर पडने से निर्यात बाजार मे जहाँ हमारी प्रतिस्पर्धा बढती है वहीं दूसरी तरफ आयात महँगा होता है, लेकिन यदि रूपया मजबूत होता है तो निर्यात प्रभावित होता है और आयात लागत कम बैठती है। आर्थिक उदारीकरण प्रक्रिया के दौरान सरकार द्वारा रूपये को व्यापार खाते में बाजार शक्तियों पर छोड दिये जाने के बाद रूपया बराबर कमजोर होता ही रहा है। पिछले दो वर्षों मे यह गिरावट कुछ तेजी से आई है। 16 जनवरी, 1998 तक प्रति अमरीकी डालर की तुलना मे रूपये का मूल्य ह्रास होकर उसका मूल्य 40 36 रूपये पर पहुँच गया, परन्तु मार्च 1998 के अन्त तक उसमे सुधार होकर यह 39 50 रूपये पहुँच गया जो मार्च 1997 के अत की दर की तुलना में अमरीकी डालर को देखते हुए 9 1 प्रतिशत का मूल्य ह्रास है परन्तु रूपये-डालर की दर मे हाल की बाजार की वह स्थिति वास्तविक प्रभावी विनिमय दर मे मूल्यवृद्धि के एक हिस्से में सुधार करती है, जो पिछले दो वर्षों में घटित हुई है।[23] उपलब्ध आँकडों के अनुसार 31 जनवरी 96 और 21 अगस्त 98 की अवधि में अमरीकी डालर के मुकाबले रूपये में 18 31 प्रतिशत, ब्रिटिश पौंड के मुकाबले 28 प्रतिशत गिरावट आ

---

23 इकोनामिक सर्वे भारत सरकार, 1997-98, पृष्ठ सख्या-12

गई है लेकिन विश्व की कुछ प्रमुख मुद्राओ के मुकाबले इस अवधि मे रूपया मजबूत भी हुआ है। जर्मन मार्क रूपये के सामने 2 10 प्रतिशत जापानी येन 11 09 प्रतिशत और सिगापुर डालर 4 17 प्रतिशत नीचे गिर गया।

21 अगस्त 98 को समाप्त कारोबारी दिन मे डालर के सामने रूपया 42 65 पर, ब्रितानी पौण्ड के सामने 65 41 रूपये पर जर्मन मार्क के सामने 23 71 रूपये और 100 जापानी येन के मुकाबले 29 89 रूपये तथा सिगापुर डालर के मुकाबले 24 34 रूपये पर रहा। पिछले एक वर्ष के दौरान डालर के मुकाबले रुपया करीब 16 प्रतिशत से घटकर 36 20 से 42 56 रूपये प्रति डालर तक आ चुका है।

दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो में पिछले एक-दो वर्षो से जारी आर्थिक सकट के कारण भारतीय रूपये पर ज्यादा दबाव बना है। जापान, हागकाग, इडोनेशिया और मलेशिया के बाद हाल ही में रूसी मुद्रा रूबल मे गिरावट के उपरान्त रूपया काफी कमजोर पडने लगा। जून 98 तक के पिछले आठ महीनो मे डालर के मुकाबले रूपये मे आई गिरावट के चलते देश पर विदेशी कर्ज का बोझ करीब 440 अरब रूपये बढ गया, लेकिन इस दौरान दुनिया की अन्य प्रमुख मुद्राओं का जो रूझान रहा वह हमारे पक्ष में रहा, क्योंकि डालर के मुकाबले अन्य मुद्राओं में आई गिरावट के कारण उन मुद्राओं में लिये गये कर्ज का बोझ कम भी हुआ। वित्त मत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार सितम्बर 97 तक देश पर कुल 92 अरब 88 करोड डालर का विदेशी कर्ज था। इसमें से करीब 41 प्रतिशत कर्जा डालर में 12 8 प्रतिशत जापानी येन में और 6 5 प्रतिशत एस डी आर, 12 6 प्रतिशत रूपये में और शेष 8 प्रतिशत विश्व की अन्य मुद्राओं में था।

हाल के परमाणु परीक्षण और उसके बाद अमरीका और जापान समेत कुछ अन्य देशो द्वारा आर्थिक प्रतिबन्ध थोपे जाने तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की उठापटक को देखते हुए रूपये का क्या स्तर होगा यह फिर चर्चा का विषय बन गया है। केवल भारत ही नहीं इस समय जापान, रूस और यहा तक कि अमरीकी अर्थव्यवस्था मे भी मदी का दौर चल रहा है।

❧ ❖ ☙

3
बहुराष्ट्रीय कम्पनियों
की भूमिका

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका

भारत के आर्थिक विकास मे बहुराष्ट्रीय निगमो की भूमिका का मूल्याकन

करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि बहुराष्ट्रीय निगमो के कार्यक्षेत्र की सीमा क्या है तथा बहुराष्ट्रीय निगम किसे कहते हैं? एक ऐसी कम्पनी जिसके कार्य क्षेत्र का विस्तार एक से अधिक देशो मे होता है और जिसकी उत्पादन एव सेवा सुविधाए उस देश से बाहर भी होती है, जिसमे यह जन्म लेती हैं ऐसी कम्पनियो को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी अथवा बहुराष्ट्रीय निगम कहा जाता है। वर्तमान समय मे इनके लिए बहुराष्ट्रीय निगम अधिक प्रचलित एव लोकप्रिय शब्द है। ऐसी कम्पनियो की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनके प्रमुख निर्णय बहुधा उस देश की नीतियो से बेमेल हो जाते है, जिनमें यह कार्य कर रही होती हैं।

बहुराष्ट्रीय निगम वे बडी कम्पनियॉ हैं जिनके मुख्य कार्यालय किसी एक देश मे होते हैं और उनकी उत्पादन और व्यापारिक क्रियाए अन्य देशो में फैली रहती है। इनके प्रधान कार्यालय इनके मूल देशो में होते है। बहुराष्ट्रीय निगम कई देशों में अपनी अनुषगी इकाइयो अथवा शाखा इकाइयों द्वारा उत्पादन करती है। इन कम्पनियो की उत्पादन, विपणन और कीमत नीति सम्बन्धी निर्णय पूरे विश्व के लिए होते है न कि सिर्फ किसी एक देश के लिए होते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों को 'अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी' या 'राष्ट्रपारीय निगम' भी कहते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम अन्य देशो की कम्पनियो के साथ मिलकर भी अपना कार्य करती हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मूल स्थान विकसित देश हैं। इस प्रकार के निगम लगभग सभी विकसित देशों मे पाये जाते हैं। परन्तु सयुक्त राज्य अमेरिका में बहुराष्ट्रीय निगमो की सख्या सर्वाधिक है। हाल के वर्षो मे बहुराष्ट्रीय निगमों की सख्या अधिक तेजी से बढी है। अमेरिका पत्रिका 'फार्च्यून' ने 1965 मे विश्व भर मे समस्त बहुराष्ट्रीय निगमों की सख्या लगभग 500 माना था। सयुक्त राष्ट्र सघ के एक अध्ययन के अनुसार इनकी सख्या विश्व मे बढकर 11000 हो गयी। उक्त अध्ययन के अनुसार 1977 मे इन निगमों के 82000 शाखा कार्यालय और सम्बद्ध कम्पनियॉ थी। इन कम्पनियो में 36 प्रतिशत अमरीका की, 27 प्रतिशत इग्लैंड की, 7 प्रतिशत फास की, 6 प्रतिशत जर्मनी और जापान की तथा 4 प्रतिशत नीदरलैंण्ड की थीं। अन्य समस्त विकसित देशों के बहुराष्ट्रीय निगमों की सख्या कुल की 20 प्रतिशत थी। बहुराष्ट्रीय निगमों की क्रियाशीलता विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अधिक है। ये निगम इस समय लगभग सभी विकासशील देशों में फैले हैं। 1977 में समस्त बहुराष्ट्रीय

निगमो के कुल 82000 विदेशी कार्यालय और सम्बद्ध कम्पनियो मे से 21000 कार्यालय विकासशील अर्थव्यवस्थाओ मे थे।[1] इनके अधिकतम लाभ के उद्देश्य मे इस बात का समावेश नहीं होता कि इनकी क्रियाओ की प्रतिक्रिया उन देशो पर क्या होगी, जिनमे यह कार्यरत होती हैं। इनकी एक विशेषता यह भी है कि यह निगम विभिन्न देशो मे विभिन्न प्रकार की सस्थाओ के माध्यम से कार्य करते हैं। अल्प-विकसित देशो मे यह अपनी नियन्त्रित कम्पनी या कम्पनियो जिनपर इनका पूर्ण स्वामित्व होता है, के माध्यम से कार्य करती हैं। यह नियन्त्रित कम्पनियॉ दूसरे देशों की कम्पनियों के साथ मिलकर सयुक्त उद्यम कर सकती है या विभिन्न देशो की कम्पनियों के साथ उत्पादन, बाजार आदि तथा लाइसेंस के लिए समझौता भी कर सकती हैं। बहुराष्ट्रीय निगमो के उदय और प्रसार से उत्पादन और निवेश का भी अन्तर्राष्ट्रीयकरण हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक महत्वपूर्ण कार्य इन कम्पनियो अथवा निगमो का आन्तरिक लेन-देन बन गया है। दूसरे शब्दो मे बहुराट्रीय निगमों की उत्पादन, निवेश और व्यापार सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओ का एक महत्वपूर्ण भाग अन्तर-फर्म लेन-देन होता है। इसके फलस्वरूप बाजारों में अल्पाधिकार और केन्द्रीकरण का विकास होता है। सक्षेप में, आन्तरिक एकाधिकार और आर्थिक केन्द्रीकरण से भिन्न हैं, बहुराष्ट्रीय निगम अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार और विश्व स्तर पर आर्थिक शक्ति केन्द्रीकरण का प्रतीक है। यद्यपि बहुराष्ट्रीय निगमों का उद्भव विगत वर्षो में ही हुआ है, तथापि इनका विस्तार विश्व के अनेक देशो मे हो चुका है। इस प्रकार के निगम विश्व के लगभग सभी देशो मे विद्यमान है। सयुक्त राज्य अमरीका मे इनकी सख्या सर्वाधिक है। इन निगमो का कार्यक्षेत्र अपने देशो के बाहर विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में फैल चुका है। यहा तक कि सोवियत रूस जैसा समाजवादी देश भी इनकी पहॅुच से बाहर नहीं रह सका है। बहुराष्ट्रीय निगमों का अस्तित्व अल्पविकसित देशों में भी देखा जा सकता है। अनुमान है कि इन देशों मे इनकी सख्या एक हजार से ऊपर है। अल्पविकसित देशो के बहुराष्ट्रीय निगम अन्य विकासशील देशों में कार्य करते हैं, किन्तु विकसित देशो के बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रतिस्पर्धा के सम्मुख यह कहीं नहीं ठहर पाते है। अधिकाश देशो मे प्रचलित सरक्षणवादी भावनाओ के बावजूद बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका मे विशेष रूप से अस्सी के दशक से वृद्धि हुई है। अस्थिर विनिमय एव ब्याज दरों जैसी विश्वव्यापी अनिश्चितताओं का बहुराष्ट्रीय निगमों पर कोई प्रतिरोधक प्रभाव नहीं पडा है। परिवर्तित अतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य के अनुरूप अपनी कार्य नीति अपनाने में ये निगम सिद्धहस्त रहे हैं। इस समय 37,000 बहुराष्ट्रीय निगम है, जिनकी 2,00,000 से भी अधिक विदेशी अनुषगिया (सहायक कम्पनियॉ) हैं। इनके पास ससार की कुल निजी समपत्ति का एक तिहाई भाग (3-4 मिलियन डालर से भी

---

1 *त्रिपाठी, डॉ० बद्री विशाल भारतीय अर्थव्यवस्था (पचम सस्करण), 1997, पृष्ठ सख्या- 437*

अधिक) है। और इनकी बिक्री 55 000 करोड डालर प्रतिवर्ष है।[2]

विकासशील देशों मे बहुराष्ट्रीय निगमो की भूमिका को प्रभावशाली बनाने मे कतिपय घटको का महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव मे बहुराष्ट्रीय निगम यह अनुभव करते हैं कि उनकी विश्वव्यापी गतिविधियो का प्रसार करने मे वर्तमान परिवेश प्रोत्साहक है। अपनी अर्थव्यवस्थाओ पर वर्चस्व रखने वाले चीन और रूस जैसे देश भी सस्कृति और विकास सम्बन्धी अभिवृत्तियो मे परिवर्तन के कारण बहुराष्ट्रीय निगमों मे रूचि दर्शा रहे है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ एक समूह के देशो द्वारा उत्पादित कच्चे माल को,दूसरे समूह के देशो की श्रम शक्ति एव सयन्त्र सुविधाओं की सहायता से रूपान्तरित करके, वस्तुओ का विनिर्माण करके और इन वस्तुओ को बाजार में बेचकर उत्पादन के अतर्राष्ट्रीयकरण में योगदान करती है। निरन्तर सम्प्रेषण, त्वरित परिवहन, कम्प्यूटर, आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीके आदि बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को ससाधनो के विदोहन मे सहायता करती रही है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश विपणन, वित्तीय एव तकनीकी सेवाओ से सम्बन्धित कौशल लाता है। सयुक्त उद्यमों के माध्यम से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश स्थानीय प्रबन्धको को प्रशिक्षित करने मे सहायता करता है और व्युत्पादगत प्रभावो के माध्यम से रोजगार के अवसरों मे वृद्धि करता है। जिस देश में पूँजी की अल्प मात्रा हो वहॉ पर हमे पूँजी प्राप्त करने के लिए ऐसे उद्योगो को आमन्त्रित करना चाहिए। जो देश में रोजगार, तकनीकी, गुणवत्ता, यातायात सुविधा आदि का विस्तार कर सकें। इन सब मदों की जरूरतें बहुराष्ट्रीय निगम या बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ करती हैं क्योकि ये कम्पनियॉ विकसित देश की होती हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के सम्बन्ध में कुछ ऐसे नियम बनाने चाहिए जिससे हमारे भारतीय उद्योगो को सरक्षण मिल सके। ये नियम इस प्रकार होने चाहिए जैसे बहुराष्ट्रीय निगमो को बडे उद्योगो के सम्बन्ध मे कार्य करना चहिए जिससे उनकी पूँजी एव तकनीकी का सही ढग से उपयोग हो सके। छोटे उद्योगो से हमारा तात्पर्य - कुटीर उद्योग जो भी वस्तुए बनाती है, उसे बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा न बनाने पर रोक लगानी चाहिए। इसके साथ-साथ दैनिक जीवन यापन करने के लिए जो छोटे एव लघु उद्योगो से अपना पेट पालते है बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उन सभी व्यवसायों से उद्योगों पर रोक लगानी चाहिए।

क्योंकि ये बहुराष्ट्रीय निगम विकसित देश की कम्पनियॉ होती है जिनके पास पूँजी की प्रचुर मात्रा होती है। अत ये कम्पनियॉ विकासशील देश में आकर अपने उद्योगों एव तकनीकी विकसित करके लाभ का अधिकतम हिस्सा अपने यहॉ ले जाती हैं। इसलिए इनके लाभ के सम्बन्ध में यह नियम

---

2 योजना सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अक 8 नवम्बर 1996, पृष्ठ सख्या-14

बनाना चाहिए कि लाभ का थोडा सा भाग केवल वे अपने देश मे ले जा सकती हैं। लाभ का अधिकतम भाग उसे उसी उद्योग मे विनियोग कर देना चाहिए।

जिस प्रकार उद्योग मे पूँजी रक्त का सचार करती है। उसी प्रकार उन बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के सम्बन्ध मे यदि नीतियॉ देश के अनुकूल हो तो देश की अर्थव्यवस्थाा मे रक्त की सचार को तीव्र गति प्रदान करती है आज के व्यवसाय के लिए अत्यधिक आवश्यकता है न करने से ज्यादा अच्छा हम दूसरे देशो से पूँजी एव तकनीकी लेकर अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकें, जिससे देश के विकास मे अत्यधिक योगदान कर सकें। यही उदारीकरण का उद्देश्य है। जहॉ तक बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की भूमिका का सवाल है यह वे कम्पनियॉ होती है जिनकी क्रियाए अपने देश से बाहर अन्य देशो मे फैली रहती है। इनका प्रबन्ध तथा स्वामित्व भी बहुराष्ट्रीय होता है। कुछ बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ भारत मे पहले से ही जैसे कोका कोला, महुराई कोट्स, कायनेटिक होडा, यल एम एल इनका प्रबन्ध और नियन्त्रण बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के हाथ में नहीं है। नवीनतम् तकनीकी प्रदान करने के सन्दर्भ में प्रबन्ध नियत्रण एव पूँजी मे हिस्सा ले सकते हैं। टेलीविजन के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भरमार है जैसे सोनी, अकाई, नेशनल, पैनासोनिक आदि। दवाइयो का निर्माण करने वाली कम्पनी शीबा, ग्लैक्सो रग तथा बर्निश का उत्पादन करने वाली कम्पनी हिन्दुस्तान लीवर तथा अन्य मे पाण्ड्स, कोलगेट, पामोलिव आदि। भारत मे अनेक उद्योगों मे बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारी मात्रा मे पूँजी निवेश किया है। वर्मा शैल और कालटैक्स पेट्रोलियम कम्पनियॉ भी इन्हीं के सहयोग का अनुपम उदाहरण हैं।

इन्होने भारत मे उपलब्ध प्राकृतिक साधनो के विदोहन कार्य को भी किया है जो अब तक यहॉ पूँजी के अभाव में सम्भव नहीं था। इन्हीं की सहायता से देश के अनेक उद्योगों में सुसज्जित अनुसधान शाखाए भी स्थापित है। जिससे भारतीय उद्योग नित्य नयी नकनीकों का उपयोग और अपनी उत्पादन की श्रेष्ठता को बरकरार रखा है। इनके द्वारा औद्योगिक विकास में भरपूर सहयोग करने से रोजगार के अवसरो मे भी वृद्धि हुई है। इन निगमों की व्यवस्थित कार्य प्रणाली और अपने उत्पादनों के प्रति सजगता के कारण देश के उद्योगपतियों मे भी एक नयी चेतना जागृत हो पायी है। लेकिन इन निगमों से प्राप्त होने वाले लाभो से हमें खुश नहीं रहना चाहिए। बल्कि इनका हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर दीर्घकाल में बुरा प्रभाव पडता है। ये उपभोक्ता के हितो की रक्षा नहीं कर पाते हैं। ये अपने देश के उपभोक्ताओ की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन नहीं कर पाते हैं। वास्तव में इनके उत्पादन इतने मॅहगे होते हैं कि आम नागरिक इनके उपभोग से वचित रहता है। इनके जो तकनीकी विशेषज्ञ भारतीय उद्योगों को परामर्श देते हैं इसके बदले में शुल्क एव रायल्टी के रूप में बहुत अधिक धनराशि

वसूल करते हैं। चूँकि इनकी भुगतान की राशि हमे विदेशी मुद्रा मे करनी होती है।

अत भारत के विदेशी मुद्रा पर उसका विपरीत प्रभाव पडता है। इन निगमो द्वारा विदेशी मुद्रा की बडी पैमाने पर हेरा-फेरी भी की जाती है। ये नये-नये उद्योग की स्थापना के लिए लाइसेस लेना अनिवार्य कर देते हैं, जिसके लिए ये अनैतिक आचारण अपनाते हैं, लेकिन इन सब दोषो के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था मे इनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इन्होने भारतीय अर्थव्यवस्था को औद्योगिक सुदृढता प्रदान करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

बहुराष्ट्रीय निगमो की कतिपय विशिष्टताऐ और गुण हैं जिनके कारण इनका प्रसार अधिक तेजी से हुआ। बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से विकासशील अर्थव्यवस्थओ में पूँजी प्रधान उद्योगो की स्थापना हुई। इन्होने देशो में औद्योगीकरण को प्रश्रम दिया। इनके द्वारा विकासशील अर्थव्यवस्थाओ मे प्रौद्योगिकी स्थानान्तरण को सहायता मिली है। पेट्रोलियम, खनिज, रसायन, आदि उद्योगो के लिए अधिक पूँजी और उन्नत प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है। बहुराष्ट्रीय निगमो ने इसकी पूर्ति विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में की है। औद्योगिक प्रगति और उत्पादन तकनीक में सुधार सतत् शोध कार्य की आवश्यकता पर बल देता है। बहुराष्ट्रीय निगम इसके प्रति लगातार प्रयत्नशील रहते हैं। शोध एव अन्वेषण पर होने वाला व्यय का एक बडा भाग बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा उसके अपने देश से बाहर किया जाता है। उससे अन्य अर्थव्यवस्थाओं को भी लाभ मिलता है। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली विपणन सेवाए भी विकासशील देशों के औद्योगीकरण में सहायक हैं। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि बहुराष्ट्रीय निगमो ने विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के आधुनिकीकरण और अवस्थापना सृजन में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

विदेशी पूँजी की क्रियाविधि मुख्य रूप से लाभ कमाने की रही है। विदेशी पूँजी का प्रयोग विभिन्न विदेशी कम्पनियो या बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा ऐसे उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में भी किया गया है जिनके उत्पादन एव विपणन की सम्यक दशाये भारतीय उत्पादकों के पास उपलब्ध है। विदेशी पूँजी व उससे पोषित कम्पनियों के सम्यक नियत्रण के लिए समय-समय पर प्रयास किये गये, क्योंकि लगातार यह आवश्यकता समझी जा रही थी कि विदेशी कम्पनियों द्वारा लाभ कमाने, विदेशी मुद्रा के क्रय-विक्रय, अर्जन और खर्च पर नियत्रण लगाया जाये। विदेशी मुद्रा के क्रय-विक्रय, अर्जन और खर्च पर सर्वप्रथम डिफेस रूल्स 1939 के अन्तर्गत नियत्रण लगाया गया था। इसके पश्चात् फारेन एक्सचेज रेगुलेशन एक्ट 1949 के अनुसार विदेशी मुद्रा के नियण का प्रयास किया गया। यह अधिनियम 31 दिसम्बर 1956 तक की अवधि के लिए था, परन्तु 1956 में इस अधिनियम को स्थायी स्वरूप प्रदान

कर दिया गया। इस अधिनियम मे 1964 मे किये गये एक सशोधन के अनुसार रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को यह अधिकार दिया गया कि वह विदेशी कम्पनियो के अशो और अनिवासियों को हुए भुगतान का निरीक्षण करे। इस अधिनियम मे 1969 में पुन सशोधन किया गया, जिसमें यह व्यवस्था की गयी कि विदेशी पूँजी जो विदेशी कम्पनियो और उनकी शाखाओ के माध्यम से आती है, उस पर नियत्रण किया जाना चाहिए।

विदेशी पूँजी और उसके विविध पक्षों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण नियामक प्रयास 1973 मे किया गया। 1971 मे पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी की 56वीं रिपोर्ट और 1972 मे विधि आयोग की 47वीं रिपोर्ट सरकार को प्राप्त हुई।

इन दोनो रिपोर्टो की सस्तुति और परिस्थिति को देखते हुए 1973 में सशोधित विदेशी विनिमय नियत्रण अधिनियम पारित किया गया। सशोधित विदेशी विनिमय नियत्रण अधिनियम 1974 मे लागू किया गया। इस अधिनियम फेरा' का मुख्य उद्देश्य देश के विदेशी विनिमय ससाधनों का सरक्षण करना और उसका राष्ट्रीय हित में प्रयोग करना है। यह अधिनियम विदेशी विनिमय नियमन, कतिपय भुगतानो, प्रतिभूतियो और करेन्सी आयात-निर्यात को परोक्ष रूप से प्रभावित करने वाले लेन-देन को नियत्रित करता है। 1947 के अधिनियम मे 27 धाराये थी जबकि 1973 के अधिनियम में 81 धाराये हैं।[3] इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति स्वर्ण, चॉदी, भारतीय मुद्रा अथवा विदेशी मुद्रा न तो बाहर भेज सकता है और न भारत के अन्दर ला सकता है। विदेशी मुद्रा का लेन-देन 'मनी चेंजर के' माध्यम से ही हो सकता है।

'फेरा' के अन्तर्गत विदेशी कम्पनियो का विदेशी विनियोग के प्रति नियत्रण हेतु वैधानिक प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम मे 1976 में सशोधन किया गया। इस सशोधन के अनुसार विदेशी कम्पनियो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया गया। प्रथम श्रेणी मे वे कम्पनियॉ हैं जो अपने उत्पादन का सम्पूर्ण भाग निर्यात करती हैं अथवा अत्यन्त जटिल प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित क्रियाए करती हैं। इनके उत्पादन की बिक्री का कम से कम 75 प्रतिशत भाग प्रमुख क्षेत्र यथा उर्वरक, पेट्रोरसायन व पूँजी का 74 प्रतिशत तक भाग अपने पास रख सकता है। द्वितीय श्रेणी में वे कम्पनियाँ आती हैं जिनका कम से कम 60 प्रतिशत व्यवसाय प्रमुख क्षेत्र में किया जाता हैं। वे अपने उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग निर्यात करती है। इस प्रकार की कम्पनियॉ कुल अश पूँजी का 51 प्रतिशत तक भाग अपने पास रख सकती हैं। इस कम्पनियों को अपनी विदेशी अश पूँजी का 40 प्रतिशत तक घटाने के

---

3 *त्रिपाठी, डॉ० बद्र विशाल भारतीय अर्थव्यवस्था (पचम सस्करण), 1977, पृष्ठ सख्या 440*

लिए कहा गया।

भारत मे बहुराष्ट्रीय निगम

भारत में इस प्रकार के कई बहुराष्ट्रीय निगम क्रियाशील हैं जिनके प्रधान कार्यालय भारत से बाहर के कई देशो मे हैं। राजनीतिक स्वतत्रता के बाद भारत मे बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियॉ अधिक हुई है। कई वस्तुओ और सेवाओ का वितरण बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा किया जाता है। भारत की दीर्घकालीन राजनीतिक दासता लगभग इसी प्रकृति की कम्पनी, ईस्ट इडिया कम्पनी, के कार्यविधि का परिणाम रही है। ईस्ट इडिया कम्पनी जो भारत में यूरोप की बनी वस्तुए बेचने आयी या इग्लैण्ड के हित साधन भारत से सामान खरीदने और बेचने आयीं, अतत देश को ब्रिटेन का उपनिवेश बना दिया। भारत में आरम्भिक दशा मे बहुराष्ट्रीय निगमो की सक्रियता कच्चे पदार्थ और खनिजो के सन्दर्भ में थी। परन्तु अब उनकी गतिविधि मे अत्यधिक सघनता और व्यापकता आई है। इस समय भारत में कार्यरत प्रमुख बहुराष्ट्रीय निगमो मे चेहरे की क्रीम बनाने वाली कम्पनी पौन्ड्स, चाय बेचने वाली वोरेन टी कम्पनी, दवाई बनाने वाली सीबा कम्पनी, दॉत मजन और क्रीम बनाने वाली कोलगेट पामोलिव, साबुन, डालडा घी आदि बनाने वाली कम्पनी हिन्दुस्तान लीवर, दवाइयां बनाने की कम्पनी ग्लैस्को, रग और वार्निश बनाने वाली कम्पनी गुडलक नेरौलैक पेण्ट्स, रेडियो, ट्रान्जिस्टर बनाने वाली कम्पनी फिलिप्स आदि बहुराष्ट्रीय निगमो के उदाहरण है। भारत में बहुराष्ट्रीय निगम औषधि, रसायन, विद्युत मशीनरी, भारी इजीनियरिंग सामान, धातु उत्पादन, अल्यूमिनियम आदि के क्षेत्र में कार्यरत हैं। उपरोक्त मे इनकी सक्रियता अपेक्षाकृत नवीन घटना है बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीय औद्योगिक परिदृश्य पर अत्यन्त शक्तिशाली नियामक प्रभुत्व है। यह अनुमान है कि 1970 के आस-पास भारत में बडे उद्योगों की परिसम्पत्तियो में लगभग 54 प्रतिशत अश का स्वामित्व बहुराष्ट्रीय निगमों का था। औद्योगिक लाइसेंस नीति जॉच समिति के अनुसार 1966 मे भारत में 10 करोड या इससे अधिक परिसम्पत्ति वाली 112 कम्पनियॉ थीं। इन 112 कम्पनियो मे 48 कम्पनियाँ या तो बहुराष्ट्रीय निगमों की शाखाए थी या उनकी अनुषगी कम्पनियॉ थी। इसके अतिरिक्त इसमे 14 कम्पनियॉ इस प्रकार की थीं, जिनकी क्रियाविधि के परिचालन हेतु प्रभूत विदेशी पूँजी लगी थी। इसलिए इन 14 कम्पनियों पर अत्यधिक विदेशी नियन्त्रण था। इस प्रकार 1319 में 112 बडी कम्पनियो में से 62 कम्पनियो पर विदेशी नियत्रण स्पष्ट है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के औद्योगिक शिखर पर विदेशियों का नियत्रण था। इनके अतिरिक्त अन्य कई रूपों में विदेशी उद्‌गम वाली कई कम्पनियॉ कार्यरत हैं। निम्नलिखित तालिका में भारत में कार्यरत विदेशी कम्पनियों का विवरण इस प्रकार है

तालिका - 31

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों की शाखाये

(मार्च 1987 के अन्त मे)

देश	कार्यरत कम्पनियों की सख्या	सूचना देने वाली शाखाओ की सख्या	सूचना देने वाली शाखाओं की पूँजी	कुल पूँजी प्रतिशत में
फ्रास	13	6	309	4 9
जर्मनी	8	4	86	1 4
हागकाग	9	5	937	14 8
जापान	29	23	308	4 9
नीदरलैण्ड	4	3	121	1 9
यू के	66	51	2373	37 5
यू एस ए	62	48	1531	24 2
अन्य	78	43	667	10 5

*** SOURCE** ***Statistical out line of India 1992- 1993***

बहुराष्ट्रीय निगमो के सन्दर्भ मे एक भ्रान्त धारणा अब भी बनी है कि वे अपेक्षित पूँजी विदेशो से लाते हैं। तथ्य इसके प्रतिकूल है। आर्थिक और राजनीति सप्ताहिक पत्रिका के अनुसार 1956-57 की अवधि के लिए वित्तीय स्रोतों का अनुमान किया। उन्होने मार्च 1975 की 50 सबसे बडी अनुषंगी इकाइयों मे प्रयुक्त पूँजी का लगभग 82 प्रतिशत है। उनके अनुमान के अनुसार इन कम्पनियो ने केवल 1956-57 की अवधि मे विदेशी स्रोतों से कुल पूँजी का केवल 5 4 प्रतिशत भाग प्राप्त किया। शेष 94 6 भाग उन्होने भारत में आतरिक स्रोतो से ही एकत्र किया। यह तथ्य बहुराष्ट्रीय निगमों के सन्दर्भ मे बने भ्रम को उजागर करता है।

विभिन्न बहुराष्ट्रीय निगम भारत से प्रतिवर्ष अत्यधिक धनराशि बाहर भेजते हैं। यह राशि केवल लाभ के रूप में नहीं, बल्कि अन्य विभिन्न रूपों में जाती है

तालिका 3 2

विदेशी कम्पनियो द्वारा भारत मे भेजी गयी राशियाँ

मदे	1971-72	1972-73	1977-78
लाभ	99 4	155 4	101 3
लाभाश	388 7	390 8	680 1
रायल्टी	58 6	73 3	195 0
तकनीकी जानकारी	139 6	113 3	281 4
ब्याज का	121 3	156 0	227 0
योग	**807 6**	**888 8**	**1484 8**

** SOURCE Statistical Outline of india -1992-93*

उपरोक्त तालिका मे यह दिखाया गया है कि 1971-72 मे भारत में कुल 807 6 करोड रूपये की धनराशि बाहर भेजी गयी जो 1977-78 मे बढकर 1484 करोड रूपये हो गयी। विभिन्न बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ प्रत्येक वर्ष इतना लाभ कमाती हैं, जो अन्य भारतीय कम्पनियो के लिए सम्भव नहीं हो पाता है। इस सम्बन्ध मे आर के हजारी और एच जी लाखन ने महाराष्ट्र की 88 औषधि बनाने वाली कम्पनियो का अध्ययन किया। उन्होने अपने अध्ययन मे पाया कि 1964 में पूर्णतया विदेशी स्वामित्व की प्रत्येक कम्पनी इतना नकद लाभ उत्पन्न कर रही थी, जिससे उन कम्पनियों के निवेश दो वर्षो मे ही उन्हे मिल सकते थे। अधिकाश विदेशी कम्पनियाँ अपने निवेशों को फिर से वापस लेने पर चार वर्षों से कुछ अधिक समय लेती थी। एक अध्ययन माइकेल किडरौन फारेन इनवेस्टमेंट इन इण्डिया से भी प्रवृत्ति की पुष्टि होती है। इसमें 1948-61 के ऑकडो का विश्लेषण किया गया है। इसके अनुसार उक्त अवधि मे विदेशी निवेश दुगने से भी अधिक बढ गये हैं और विदेशी निवेशक कुल मिलाकर जितनी मुद्रा का अपने उद्योगों में प्रारम्भिक रूप में विनियोग किये थे, उससे लगभग तीन गुना अधिक मुद्रा प्राप्त कर चुके हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भारत से अत्यधिक धनराशि विदेशी कम्पनियाँ बाहर भेज रही है।

बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अनिवार्यताओं से सम्बद्ध नहीं, अपितु विलासिता से सम्बद्ध वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया जाता है। अनिवार्यताओं के उत्पादन में प्रतिफल की दर अपेक्षाकृत कम होती है। कई विदेशी कम्पनियाँ तो आवश्यक वस्तुए बनाकर साधनों का शोषण करती हैं। दत्त समिति औद्योगिक लाइसेंस समिति, 1968 में उल्लेख किया गया है कि कई विदेशी कम्पनियाँ अनावश्यक वस्तुए या ऐसी वस्तुए बना रही थी जिनका उत्पादन भारत की छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयाँ कर

सकती हैं यथा खिलौने, आइसक्रीम, सिफ्टीपिन, दातों का पेस्ट, लिपिस्टिक पेसिल स्याही, स्त्रियो के परिधान, ग्रामोफोन रिकार्ड इत्यादि। समिति ने यह भी उल्लेख किया है कि जब इन वस्तुओ का उत्पादन कार्य भारत मे सक्षमता पूर्वक हो रहा था तब इसे बनाने की अनुमति क्यो दी गई।

बहुराष्ट्रीय निगम आरम्भ मे कच्चे पदार्थ, खाद्य सामग्री, और खनिज तेल का व्यापार करते थे। अब इनकी गतिविधि मे विविधता आई है। बहुराष्ट्रीय निगम अब चाय, काफी, डेयरी और तम्बाकू के अतिरिक्त डिब्बा बन्द खाद्य और पेय, कपडा, साबुन, माचिस, सिगरेट, विद्युत उपकरण, वनों पर आधारित उद्योग आदि की ओर अग्रसर हुए। परम्परागत वस्तुओ के साथ-साथ वे नवीन और अधिक लाभदायक वस्तुओ के निर्माण मे अधिक रूचि प्रदर्शित करने लगे है। इनका उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। ये निगम कभी भी अपने उत्पादन का नुस्खा या सूत्र विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को नहीं बताते हैं। उत्पादन प्रक्रिया के सूत्र की जानकारी न हो सके, इसलिए अधिकाशत वस्तु की पूरी तरह से उत्पादन वे विकासशील देश मे नहीं करते हैं। कोई पुर्जा अथवा अश सम्बद्ध देश मे बनाते है तो उसका कुछ अश अपने देश से आयात करते हैं। यह होते हुए भी सूत्र के शुल्क के रूप मे एक बडी धनराशि लगातार स्वदेश भेजते रहते हैं। विकासशील देशो मे इन कम्पनियों को आवश्यक और उत्तम किस्म का कच्चा पदार्थ सुविधा पूर्वक प्राप्त हो जाता है। आधुनिक प्रौद्योगिकी और वित्तीय साधनों की प्रचुरता, विकसित प्रचार तन्त्र आदि के कारण वे अपने उत्पादन को श्रेयस्कर बनाकर स्थानीय उत्पादन पर अधिमान्यता प्राप्त कर लेते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगम, राष्ट्रीय सीमाओ पर ध्यान नहीं देते हैं, वे एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय सस्कृति, वर्ग और समाज के सृजन के प्रति अधिक सक्रिय रहते हैं। वे एक विशिष्ट रूचि, मानसिकता, स्वभाव और वर्ग चरित्र वाला विशेष अन्तर्राष्ट्रीय समाज बनाने का प्रयास करते हैं। उच्च और मध्य आय वर्ग के साथ-साथ निम्न आय वर्ग मे भी वे अपने उत्पादन के प्रति रूचि उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम अपने हितो को बढाने के लिए ब्रिक्री व्ययों का प्रभावी उपयोग करते हैं। अपने बजट का बहुत बडा भाग प्रसार कार्यक्रमों और विज्ञापन पर लगाते हैं। इन निगमों के अत्यन्त दक्ष और प्रशिक्षित कर्मचारी समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो और अन्य प्रचार-सचार माध्यमों पर अपना वर्चस्व बनाये रखते हैं। प्रचार माध्यमो से अति आकर्षक और मोहक विज्ञापनों से वे लोगों को अपने उत्पादन के प्रति अत्यधिक अभ्यस्त बना लेते हैं। लोगो को इस मानसिक गुलामी से मुक्ति न मिले इसके लिए भी वे लगतार प्रयत्नशील रहते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा इस स्तर तक लाभ कमाया जाता है कि उसे लाभ कमाना न कहकर शोषण कहा जा सकता है। इनका लाभ कमाने का रास्ता इतना चालाकी

भरा होता है कि वे राष्ट्रीय कानून और नियमो की परिधि से भी बच जाते है, वे कई रूपो में मुनाफा लगाकर स्वदेश भेजते हैं। वे लाभ और लाभाश, तकनीकी और पेटेन्ट जानकारी का शुल्क, पूँजी पर ब्याज ऋण अदायगी अतर्कम्पनी लेन-देन आदि रूपों मे मुनाफा स्वदेश भेजते है। इन माध्यमो से मुनाफा स्वदेश भेजकर वे राष्ट्रीय निगमो ने 1950 से 1965 की अवधि मे विकासशील देशों से 27 4 प्रतिशत मुनाफा कमाया। यह अनुमान है कि 1985 मे विकासशील देशो से बहुराष्ट्रीय निगमो ने लगभग 5 अरब डालर की राशि तकनीकी जानकारी और शुल्क के रूप मे बाहर भेजी है। इससे यह जानकारी होती है कि विभिन्न बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील अर्थव्यवस्थाओ मे अपने लाभ वृद्धि की नीति अपनाते है।

बहुराष्ट्रीय निगम लाभ कमाने के उद्देश्य से अति पूँजी प्रधान प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। वे ऐसी प्रौद्योगिकी के प्रसार पर जोर देते रहे हैं जो भारतीय दशाओ के अनुकूल नहीं रही। बहुराष्ट्रीय निगमो की शोध और अन्वेषण की क्रियाए विकासशील अर्थव्यवस्थाओ में नहीं की जाती हैं। इन कम्पनियो द्वारा शोध और अन्वेषण की लागत और उस पर रायल्टी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से अपने शाखा कार्यालयो और अनुषगी इकाइयो के माध्यम से वसूल करते हैं। इन निगमो द्वारा हस्तान्तरित प्रौद्योगिकी ऊर्जा के गैर नवकरणीय स्रोतो पर निर्भर हैं, जो अत्यन्त खर्चीली प्रकृति की है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगम विद्यमान उत्पादन ढॉचे को और आर्थिक सरचना को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। वे एक वर्ग की विशेष आय बढाकर उनके लिए ही उत्पादन करके अर्थव्यवस्था में सामाजिक अन्तराल बढा देते हैं। समाज का सम्पन्न वर्ग इन बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्पादन के उपभोग से अपने को गौरवान्वित अनुभव करने लगते हैं। इसका लाभ उठाकर बहुराष्ट्रीय निगमों ने हमारे समाज के सम्पन्न वर्ग के लोगों पर अपना भावनात्मक अधिकार स्थापित कर लिया है। इसके कारण परिस्थिति कुछ इस प्रकार बन गई है कि बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा आरोपित शर्तों पर ही उनके उत्पादन प्रभाव व आधिपत्य के नीचे आने के लिए हम लालायित रहते है। समाज की बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रति यह निर्भरता वस्तुत समाज के उच्च और मध्य वर्ग की इच्छाओं और आकाक्षाओं का पश्चिमी देशों के प्रति उन्मुख होने का परिणाम है। पश्चिमी उपभोगवादी विचारधारा और पूँजी बहुल विज्ञापनों ने इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने में सहायता की है। आज समाज के अधिकाश उच्च वर्ग और मध्य उच्च वर्ग के परिवारों की स्थिति इस प्रकार हो गई है कि प्रात काल से सायकाल तक के जीवन व्यवहार में वे बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्पादन का ही प्रयोग करते हैं। उनकी दिनचर्या में सम्मिलित बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्पादनों के प्रयोग की अधिकता और सतत्ता को निम्नवत प्रदर्शित किया है। उच्च और उच्च मध्यम वर्ग का व्यक्ति जब उठता है तो कोलगेट टूथ ब्रस पर कोलगेट क्रीम फैलाता है। कोलगेट

पामोलिव लिप्टन कम्पनी यूनीलीवर नियात्रित द्वारा वितरित और पैकिग की गयी चाय पीता है पामोलिव शेविग क्रीम और इरस्मिक ब्लेड का प्रयोग करता है। लक्स या रेक्सोना से स्नान करता है, डालडा हिन्दुस्तान लीवर से भोजन पकाता है और सोते समय बहुराष्ट्रीय निगम की औषधि का प्रयोग करता है।

बहुराष्ट्रीय निगम अपनी सबल आर्थिक स्थिति और प्रभाव के कारण विकासशील अर्थव्यवस्थाओ के राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं। वे श्रमिक नेताओ, कर्मचारियों और राजनीतिक दलो पर प्रभाव डालने का प्रयास करते है। बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का विभिन्न प्रकार से शोषण और नव साम्राज्यवाद के पोषण का अभिकरण माना जाता है। साम्राज्यवाद की दशा मे विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का एक शोषक होता था। अब तो इनके शोषकों की सख्या बढ गयी है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से बहुराष्ट्रीय निगमों के हटने पर ही उनके साधनो और आवश्यकताओ के अनुरूप विकास की सम्भावना उत्पन्न होगी। बहुराष्ट्रीय निगमो के उद्‌विकास को एक प्रकार के नव-साम्राज्यवाद की सज्ञा दी जाती है।[4]

---

4 *दत्व, रूद्र सुन्दरम्, के पी एम : भारतीय अर्थव्यवस्था (23वा सस्करण) फरवरी 1992, पृष्ठ सख्या 374*

4

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से आशय, उद्देश्य, गुण-दोष एवं उसके प्रभाव

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से आशय, उद्देश्य, गुण-दोष एवं उसके प्रभाव

आशय ·

बहुराष्ट्रीय निगमो से तात्पर्य एक ऐसी कम्पनी से है, जिसके कार्यक्षेत्र का विस्तार एक से अधिक देशो मे होता है और जिसकी उत्पादन एव सेवा सुविधाए उस देश से बाहर है। ये कम्पनियॉ ऐसी होती है जिसका प्रधान कार्यालय एक देश में स्थित होता है परन्तु वे अपनी व्यापारिक क्रियाओं को बहुत से अन्य देशों मे फैला लेते हैं, जिसका आशय यह है कि इनकी क्रियाए मौलिक देश में आरम्भ होने के पश्चात् उसके सीमाओ के बाहर भी फैली होती है अत निम्न बाते बहुराष्ट्रीय निगम के लिए आवश्यक हैं —

1 एक से अधिक देशों में अपनी सेवाए प्रदान करती हो।
2 उन देशो मे अनुसधान, विकास एव निर्माण का कार्य करती है।
3 जिसका बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध होता है, एव
4 जिसका स्कन्ध स्वामित्व बहुराष्ट्रीय हो।

ऐसी कम्पनियों को अन्तर्राष्ट्रीय निगम या राष्ट्रपारीय निगम भी कहा जाता है। वर्तमान समय में इसके लिए बहुराष्ट्रीय निगम अधिक प्रचलित एव लोकप्रिय शब्द है। ऐसी कम्पनियों की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनके प्रमुख निर्णय पूरे विश्व के सन्दर्भ में एक साथ लिये जाते हैं जिसके कारण इनके निर्णय बहुधा उस देशों की नीतियों से बेमेल हो जाते हैं। ये कम्पनियॉ जिन देशों में अपना कारोबार करती है उन देशों में इनकी क्रियाओं की प्रतिक्रिया क्या होगी इसका ध्यान नहीं देती हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमो के उदय और प्रसार से उत्पादन और निवेश का भी अन्तर्राष्ट्रीय कारण हुआ है जिसके फलस्वरूप बाजारो में अल्पाधिकार और केन्द्रीयकरण का विकास होता है। यद्यपि बहुराष्ट्रीय निगमों का उद्भव विगत वर्षों में ही हुआ है तथापि इनका विस्तार विश्व के अनेक देशों में हो चुका है। इस प्रकार के निगम विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान है। सयुक्त राज्य अमेरिका में इनकी सख्या सर्वाधिक है। इस समय 37000 बहुराष्ट्रीय निगम है जिनकी 2,00,000 से भी अधिक विदेशी अनुषागिया (सहायक कम्पनियाँ) हैं, इनके पास ससार की कुल निजी सम्पत्ति का एक-तिहाई भाग (3 4 मिलियन डालर से भी अधिक) है और इनकी बिक्री 55,000 करोड़ डालर प्रतिवर्ष है।[1]

---

1 योजना सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अंक 8 नवम्बर 1997, पृष्ठ सख्या- 14

इन निगमो का कार्यक्षेत्र अपने देशो के बाहर विकसित और विकासशील दोनो ही प्रकार के देशो मे फैल चुका है। यहॉ तक कि सोवियत रूस जैसा समाजवादी देश भी इनकी पहुॅच से बाहर नहीं रह सका, बहुराष्ट्रीय निगमों का अस्तित्व अल्पविकसित देशों मे भी देखा जा सकता है, अनुमान है कि इन देशो मे इनकी सख्या एक हजार से ऊपर ही है, अल्पविकसित देशों के बहुराष्ट्रीय निगम अन्य विकासशील देशों में कार्य करते हैं, किन्तु विकसित देशों के बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रतिस्पर्धा के सम्मुख यह कहीं नहीं ठहर पाते हैं।

भारत में इस प्रकार की अनेक कम्पनियॉ हैं जैसे पाण्ड्स, वारेन टी , सीबा, कोलगेट, पामोलिव, हिन्दुस्तान लीवर, ग्लैस्को, गुडलक, नैरोलक पेण्ट्स, पेप्सी, कोला, राथमन्स, फाइजर इत्यादि। जो औषधि उद्योग, विद्युत मशीनरी, रसायन, एल्यूमिनियम धातु और उत्पाद इजीनियरिंग, सामान, खाद्य पदार्थ आदि उद्योगों में कार्यरत हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं :

बहुराष्ट्रीय निगमों में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनमें से प्रमुख अग्र प्रकार है -

1. अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाकलाप :

बहुराष्ट्रीय निगमों की पहली विशेषता यह है कि इनकी क्रियाएँ किसी एक राष्ट्र में सीमित न होकर अनेक राष्ट्रों तक चलती हैं। इसके लिए ये अपने देश में मुख्य निगम रखती हैं व अन्य देशों में शाखाए या सहायक कम्पनियॉ, लेकिन इन सहायक कम्पनियों में मुख्य निगम का हिस्सा 51 प्रतिशत या इससे अधिक होता है। इस प्रकार मुख्य निगम इन शाखाओं व सहायक कम्पनियों पर नियन्त्रण करता रहता है।

2. साधनों का हस्तान्रण :

इन निगमों की दूसरी विशेषता यह है कि ये अपने साधनों को सहायक कम्पनियों व शाखाओं मे हस्तान्तरित कर देते हैं। ये अपनी तकनीक, प्रबन्धकीय सेविवर्ग, कच्चा माल एव पक्का व तैयार माल आदि को अपनी सहायक कम्पनियों व शाखाओं पर आसानी से हस्तान्तरित कर देते हैं।

3. बृहत आकार :

इन निगमों की तीसरी विशेषता यह है कि ये बहुत आकार के होते हैं। इनकी पूँजी व बिक्री अरबों रूपये में होती है। उदाहरण के लिए आई बी.एम. या जनरल मोटर्स की बिक्री अरबों रूपयों में

है।

4. बहुराष्ट्रीय स्कन्ध स्वामित्व :

इन निगमो की पूँजी में हिस्सा अनेक राष्ट्रों का होता है।

5. बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध .

इन निगमो का प्रबन्ध बहुराष्ट्रीय होता है अर्थात प्रबन्ध मण्डल मे अनेक राष्ट्रो के व्यक्ति होते हैं।

उद्देश्य ·

बहुराष्ट्रीय निगमों के निम्नलिखित उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1. विदेशी पूँजी निवेश में अत्यधिक वृद्धि :

भारत सरकार द्वारा वर्ष 1991 में उदारीकरण की नीति प्रारम्भ करने के साथ ही इन सभी में बदलाव आया है। उदाहरणार्थ विदेशी निवेश शामिल करने वाले विदेशी सहयोग के अनुमोदन वर्ष 1991 के 289 की तुलना मे वर्ष 1994 में बढकर 1062 हो गए। अनुमोदित विदेशी निवेश की कुल राशि जो 1991 में 530 करोड रूपये थी, 1994 में बढकर 14,190 करोड तक पहुँच गयी। वर्ष 1994 के दौरान कुल 21,972 करोड रूपये की वास्तविक पूँजी का उत्प्रवाह हुआ जो एक बिलियन डालर के निकट है।[2] जबकि वर्ष 1971-80 की अवधि में लगभग 59 92 करोड रूपए तथा वर्ष 1981-90 की अवधि में 1,274 02 करोड रूपये का विदेशी पूँजी निवेश ही किया गया था। स्वीकृत की गयी परियोजनाओ मे 518 परियोजनाओं में विदेशी इक्विटी भागीदारी 0-26 प्रतिशत तक, 668 परियोजनाओ में 26-50 प्रतिशत, 348 परियोजनाओं में 50-74 प्रतिशत तथा 147 परियोजनाओं में 74-100 प्रतिशत तक है। इनमे से 80 प्रतिशत से अधिक प्रस्ताव प्राथमिकता क्षेत्र के लिए है। विभिन्न क्षेत्रो के लिए स्वीकृत प्रस्तावों का विवरण निम्न प्रकार है। ईधन एव तेल शोधन-शालाओं में 2394 06 करोड रूपये, विद्युत 2,013 81 करोड रूपये, खाद्य प्रसस्करण उद्योग 1,390.28, धातुई उद्योग 321 40 करोड रूपये, विद्युत उपकरण तथा इलेक्ट्रानिकी 1,107 76 करोड रूपये, रसायन उद्योग 914 13 करोड रूपये, होटल एव पर्यटन सम्बन्धी उद्योग 721.56 करोड रूपये, परिवहन उद्योग 512 82 करोड रूपये, औद्योगिक मशीनरी एवं उपकरण तथा कृषि उपकरण 313 80 करोड रूपये,

---

2 योजना सूचना एव प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार) अक 8 नवम्बर 1996, पृष्ठ सख्या - 15

दूरसचार 179 42 करोड रूपये, कागज एव लुगदी 145 87 करोड रूपये, कॉच एव चीनी मिट्टी 118 45 करोड रूपये। सयुक्त राज्य अमरीका के वर्ष 1991 मे 185 85 करोड रूपये, 1992 मे 1,231 50 करोड रूपये, 1993 में 30 जून तक 2097 62 करोड रूपये के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। जापान के वर्ष 1991 मे 52 71 करोड रूपये, वर्ष 1992 में 610.28 करोड रूपये तथा वर्ष 1993 में 30 जून तक 103 67 करोड रूपये के प्रस्ताव स्वीकृत किए गये।

अनिवासी भारतीयों के लिए वर्ष 1993 मे 30 जून तक 255 86 करोड रूपये के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये जबकि वर्ष 1991 तथा वर्ष 1992 में स्वीकृत किये गये प्रस्तावो की राशि क्रमश 197 करोड रूपये तथा 439 13 करोड रूपये थी। इसी क्रम में जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, यूनाइटेड किगडम, मलेशिया, नीदर लैण्ड्स, सिगापुर, इटली, स्वीडन तथा दक्षिण कोरिया से भी भारी मात्रा मे पूँजी निवेश किए जाने के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये हैं। फरवरी 1994 तक भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड के पास 145 विदेशी सस्थागत निवेशक पजीकरण करा चुके हैं एव इनके माध्यम से 4139 करोड रूपये के बराबर विदेशी पूँजी भारत आ चुकी है।

वर्तमान विदेशी निवेश नीति में कम्पनियों को उच्च प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में बडे पैमाने पर विदेशी इक्विटी की सहभागिता अनुमत की गयी है। भारत के सन्दर्भ में बहुराष्ट्रीय निगम कुल मिलाकर यह अनुभव करते हैं कि सरकार उनके प्रति कोई भेदभाव नहीं बरतती हैं। भारत की मौद्रिक नीति बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लाभों का आकर्षण भी सुलभ कराती है और कारपोरेट बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए करों में भी छूट देती हैं। भारत स्थित अधिकाश बहुराष्ट्रीय निगम भारी विदेशी मुद्रा सचय करते हैं, जिससे वे उदार बोनस शेयर जारी करने में समर्थ होते हैं।

भारतीय पूँजी बाजार को विदेशी निवेश के लिए खोलने और बेहतर दर्जे की कम्पनियों को विदेशी शेयर बाजारों में अपने स्टाक के सूचीकरण द्वारा विदेशी निवेशकों से सम्पर्क करने की अनुमति देने के लिए कदम उठाये गये। इस प्रस्ताव का मुख्य कारण था कम से कम अशत भारतीय पूँजी बाजार को सार्वभौमिक पूँजी बाजार से समन्वित किया जाए और इस प्रक्रिया में भारतीय उद्योग और विदेशी निवेशकों, दोनों के लाभ के लिये रास्ता खोला जाए। इससे जहाँ एक ओर उद्योग में निवेश के लिए विदेशी पूँजी की अधिक प्राप्ति से लाभ होगा वहीं विदेशी निवेशकों को भी बेहतर प्रतिफल के द्वारा लाभ होगा, क्योंकि इस समय प्रगतिशील बाजारों में से भारतीय पूँजी बाजार बहुत आकर्षक है।

नई नीति में विदेशी पूँजी निवेश को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है और निर्यात

सम्बर्द्धन व आयात नीति काफी उदार बना दी गयी है। इसमे -

1 उच्च प्राथमिकता एव भारी विनियोग वाले उद्योगो की कम्पनियों में विदेशी पूँजी अनुपात अब 40 प्रतिशत के स्थान पर 51 प्रतिशत हो सकेगा तथा विदेशी पूँजी की स्वीकृति प्राप्त करने मे अब कोई अडचन नहीं आएगी।[3]

2 विदेशी पूँजी निवेश के प्रस्ताव के साथ विदेशी टेक्नोलॉजी के लिए अलग से अनुमति प्राप्त करना अब जरूरी नहीं।

3 जिन मामलों में मशीनों के लिए विदेशी पूँजी शेयर पूँजी के रूप में उपलब्ध होगी उन्हें स्वत ही उद्योग लगाने की अनुमति मिल जाएगी।

4 अप्रैल 1992 से दो करोड रूपये अथवा कुल पूँजी के 25 प्रतिशत से कम की उत्पादन मशीनें बिना किसी पूर्वानुमति के आयात करने का प्रावधान।

5 विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति अथवा देश में ही विकसित तकनीकों का विदेशों में परीक्षण कराने के लिए विदेशी मुद्रा मे भुगतान की अनुमति लेना अब आवश्यक नहीं। सरकार इस बात को विशेष महत्व देती है कि प्रवासी भारतीय भारत में पूँजी निवेश करें और इसके लिए सरकार ने निवेश को आकर्षक बनाने के लिए अनेक उपाय किये हैं।

इनमें प्रमुख योजनाए निम्न है :

1 स्वदेश वापसी के आधार पर- प्रवासी भारतीयों के प्रत्यक्ष निवेश की अधिकतम सीमा 74 प्रतिशत से बढाकर 100 प्रतिशत कर दी गयी है। यह निवेश उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों, होटलों और पर्यटन से जुडे उद्योगों, अस्पतालों, आधुनिक रोग निदान केन्द्रों, जहाजरानी, निर्यात के लिए गहरे समुद्र से मछली निकालने का उद्योग और तेल खोज की सेवाओं में किया जाता है।

2 प्रवासी भारतीय देश- प्रत्यावर्तन के आधार पर आवास सुविधाओं के विकास, सम्पत्ति के कारोबार और आधारित सरचना के क्षेत्र में भी निवेश कर सकते हैं।

3 किसी भारतीय कम्पनी में प्रवासी भारतीयों के पोर्टफोलियों निवेश की अधिकतम सीमा 5 प्रतिशत से बढाकर 24 प्रतिशत कर दी गयी।[4]

---

3 योजना सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार), अक 3 मार्च 1995, पृष्ठ संख्या - 23

4 योजना सूचना एव प्रसारण (भारत सरकार), अक 3, मार्च 1995 पृष्ठ संख्या- 23

4 प्रवासी भारतीयो के लिए मुख्य आयुक्त का कार्यालय खोलने का प्रस्ताव मान लिया गया है, जिससे प्रवासी भारतीयो और विभिन्न सरकारी एजेन्सियों के मध्य अच्छा सम्पर्क रहे।

5 अक्टूबर 1991 मे "भारत विकास बाड" योजना शुरू की गई जिसमें 129 7 करोड अमरीकी डालर और 1798 2 करोड पाउड स्टर्लिंग एकत्र हुआ।

6 कुवैत से आने वाले प्रवासी भारतीयो को 30 जून 1992 तक विशेष दर्जा दिया गया।

7 सितम्बर 1991 में शुरू की गयी एक योजना के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा मे कितनी भी राशि बिना उसकी आय का स्रोत बताये भारत भेजी जा सकती थी। यह योजना 31 जनवरी 1992 को बद हुई और इसके अन्तर्गत 1237 करोड रूपये की राशि एकत्र की गयी।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि यूरो निर्गमों और पूँजी बाजार 13 7 अरब डालर से स्थिति सुधरी, 1 दिसम्बर 1990 में विदेशी मुद्रा भण्डार 1.2 अरब डालर का था जो वर्तमान में 15 अरब डालर तक पहुँच गया है। विश्व में निवेश के लिए अब भारत को एक नया आकर्षण माना जा रहा है। आर्थिक विकास के अच्छे सकेतों के अलावा विदेशी निवेशक विश्व के अन्य बाजारों में अवसर घटते जाने से भी भारत की ओर आकर्षित हुए है। व्यापक स्थानीय बाजार तलाश रही बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ उत्पादन का सस्ता आधार और राजनीतिक स्थायित्व चाहती हैं। वे भी भारत का चयन कर रही हैं।

विदेशी निवेश धुआधार आ रहा है, ऐसा वातावरण निरन्तर बन रहा है। विदेशी निवेश मूलत तीन मार्गों से आया है एक तो शेयर बाजार मे शेयरों के निवेश रास्तों, विदेशी सस्थागत निवेशकर्ताओं की सख्या जो सेबी के पास पजीकृत है और भारत में उनके द्वारा प्रभावित निवेशों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हुई है। दूसरा रास्ता भारतीय कम्पनियो द्वारा यूको इश्यू के जरिये पैसा उगाहने का है। इस समय चार समुद्रपारीय देशी फड हैं- इण्डिया फण्ड, इण्डिया ग्रोथ फण्ड, हिमालय फण्ड और इण्डियन मैगनय फण्ड। इन्होंने विदेश में धन एकत्र करके भारतीय पूँजी बाजार में निवेश किया है। इन फडों की कुल सपत्ति मूल्य (एन ए वी) लगभग 85 करोड डालर है।[5] पिछले चार वर्षों में देशी फण्ड प्रचलन से बाहर थे और भारतीय फण्ड ही नहीं बल्कि दूसरे अधिकाश फण्ड भी अपने शुद्ध सम्पत्ति मूल्य से डिस्काउन्ट पर चल रहे थे। यह स्थिति बदल गई है और उभरते पूँजी बाजार में दिलचस्पी रखने वाले निवेशक देशी फण्ड की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसके अलावा भारत को विश्व में एक उभरते पूँजी बाजार के रूप में महत्व दिया जाने लगा है जो अपने आप में एक उपलब्धि है।

---

5. योजना सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार) अक-3 मार्च 1995, पृष्ठ संख्या-24

अत यह कहा जा सकता है कि अब जबकि भारतीय पूॅजी बाजार मे विदेशी पूॅजी निवेश का रास्ता खोल दिया गया है। इस नये रास्ते के खुलने से जहॉ एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार के नये अवसर प्राप्त हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर विदेशी पूॅजी को आकर्षित करने में भी सफलता मिल रही है।

इस प्रकार आर्थिक नीति के तहत इस नयी घोषणा से भारतीय पूॅजी बाजार में विदेशी निवेश की सभावनाए दिखाई देने लगी हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नए सुधारों के पैकेज के रूप में भारतीय बाजार के सार्वभौमीकरण की दिशा मे यह एक निर्णायक कदम है, लेकिन पूॅजी के प्रवाह का स्थायित्व अर्थव्यवस्था के बुनियाद की सशक्तता पर निर्भर करेगा, जैसा कि पूॅजी बाजार की गतिविधियो से परिलक्षित होता है। वर्तमान विदेशी निवेश नीति में कम्पनियो को उच्च्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो में बडे पैमाने पर विदेशी इक्विटी सहभागिता अनुमत की गई है। भारत के सन्दर्भ में बहुराष्ट्रीय निगम कुल मिलाकर यह अनुभव करते हैं कि सरकार उनके प्रति कोई भेदभाव नहीं बरतती है। भारत की मौद्रिक नीति बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लाभों का आकर्षण भी सुलभ कराती है और कारपोरेट बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए करो में भी छूट देती है। भारत स्थित अधिकाश बहुराष्ट्रीय निगम भारी विदेशी मुद्रा सचय करते हैं, जिससे वे उदार बोनस शेयर जारी करने में समर्थ होते हैं। मोर्चा सरकार द्वारा लिए गए एक महत्वपूर्ण निर्णय के तहत विदेशी निवेश सम्बर्द्धन बोर्ड का पुनर्गठन करके इसे अधिक शक्ति सम्पन्न बनाया गया है। साथ ही इसे अब पुन उद्योग मत्रालय के अधीन कर दिया गया है। नरसिहराव सरकार ने इसे उद्योग भवन से स्थानान्तरित करके प्रधानमत्री कार्यालय के अधीन कर दिया था। प्रधानमत्री के प्रधान सचिव की बजाय उद्योग सचिव ही अब इस बोर्ड के अध्यक्ष होंगे। केन्द्रीय वित्त सचिव, वाणिज्य सचिव तथा विदेश मत्रालय में आर्थिक सम्बन्धों के सचिव पुनर्गठित एफ आइ पी बी के सदस्य होगें। 600 करोड रूपये तक के निवेश के मामले, बोर्ड के अनुमोदन के पश्चात्, उद्योग मत्री द्वारा स्वीकृत किये जायेगे। जबकि इससे अधिक राशि के निवेश के मामले विदेशी निवेश पर मत्रिमण्डलीय समिति (सी सी एफ आई) को प्रेषित किये जायेंगे।

नई व्यवस्था के तहत विदेशी निवेश सम्बर्द्धन बोर्ड के दायित्वों का विस्तार भी किया गया है। विदेशी निवेश प्रस्तावों को मजूरियों के साथ-साथ अब यह निवेश प्रोत्साहन के लिए भी कार्य करेगा। विदेशी निवेश के प्रोत्साहन के लिए एक विदेशी निवेश सम्बर्द्धन परिषद की स्थापना का भी निर्णय सयुक्त मोर्चा सरकार ने लिया है। बोर्ड जहाँ विदेशी निवेश प्रस्तावों को मंजूरियाँ प्रदान करेगा, परिषद विदेशी निवेश के प्रोत्साहन के लिए कार्य करेगी। बोर्ड को जहाँ प्रशासनिक अधिकारियों से गठित

किया जाता है। परिषद गैर-प्रशासनिक व्यक्तियों से सुसज्जित होगी।

2. औद्योगिक नीति को सरलीकृत करने के लिए :

चार दशकों की नियन्त्रित अर्थव्यवस्था के अनुभवों के बाद भारत में मुक्त एव बाजार अर्थव्यवस्था की नयी शुरूआत की गयी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को स्वीकार करते हुए आर्थिक ढाँचे को मजबूत बनाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में उद्यमों को वरीयता प्रदान की थी और निजी क्षेत्रों की तुलना मे उसे अधिक सरक्षण प्राप्त किया गया था। अर्थव्यवस्था की जडे मजबूत करने के लिए भारत सरकार द्वारा 1956 की औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी और उसके बाद 1970, 1977, 1980 और 1995 में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके औद्योगिक नीति को उदार बनाया गया। और देश के आर्थिक विकास को गति देने काप्रयास किया गया।[6] आर्थिक विकास के इसी क्रम मे नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी और अब सरकारी नियन्त्रण को समाप्त कर विश्वव्यापी बाजार और प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था के महत्व को स्वीकार किया गया है और सार्वजनिक क्षेत्र को भी आत्मनिर्भर बनाने के उपाय किये गये हैं। नई औद्योगिक नीति का उद्देश्य इस प्रकार है -

1 अब तक की उपलब्धियों को मजबूती प्रदान करना।

2 औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं और कुरीतियों को दूर करना।

3 इसके साथ ही उत्पादकता और रोजगार के अवसर बढाना।

4 भारतीय उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना।

5 इसके लिए बडे, मध्यम और छोटे उद्योगों को समान रूप से प्रोत्साहित करने की नीति स्वीकार की गयी है।

6 ग्रामीण इलाको मे लघु एव कुटीर उद्योगों के विकास के लिए भी सशोधित नीति की घोषणा की गयी।

इन मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार ने औद्योगिक नीति में पाँच महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं -

1 नये उद्योगों की स्थापना और पुराने उद्योगों के विस्तार के लिए जरूरी लाइसेंस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है।

2 विदेशी पूँजी की सीमा 40 प्रतिशत से बढाकर 59 प्रतिशत कर दी गयी है। निर्यात मूलक

---

6 योजना अक 6 जून 1995, पृष्ठ संख्या - 6

उद्योगों में यह सीमा 100 प्रतिशत तक भी हो सकती है।

3 विदेशी तकनीकी प्राप्ति पर लगे प्रतिबन्ध खोल दिये गये हैं।

4 एकाधिकारी एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार पद्यति(एम आर टी पी)के अन्तर्गत औद्योगिक सम्पत्ति की सीमा समाप्त कर दी गयी है।

5 अब तक सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित अनेक उद्योगों के दरवाजे निजी क्षेत्र के लिए भी खोल दिये गये हैं। सार्वजनिक क्षेत्र अब मुख्य रूप से रक्षा उपकरणों, परमाणु उर्जा, कोयला, खनिज तेल, खनन तथा रेलवे, परिवहन जैसे आधारभूत सरचनात्मक क्षेत्रों तक सीमित रहेगा।

नि सदेह भारत सरकार द्वारा नई उद्योग नीति की घोषणा आर्थिक विकास के क्षेत्र में एक नया आयाम लेकर आयी है और यह आशा की गयी है कि इन नीतियो पर चलकर हम भारत के आर्थिक विकास को मजबूती प्रदान कर सकेंगे। योजनाबद्ध विकास और सार्वजनिक क्षेत्र की प्रमुखता के दौर मे भी देश के औद्योगिक विकास को तो गति अवश्य मिली है और विशेषकर सातवीं योजनाकाल में औद्योगिक विकास की दर 8 5 प्रतिशत तक थी, किन्तु आठवीं योजनाकाल मे अर्थव्यवस्था के विकास की दर काफी लडखडा गयी और नयी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी है। यदि उदारीकरण की नीति की घोषणा के बाद आर्थिक विकास की गतिविधियों पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि अर्थव्यवस्था की विकास की दर में तेजी आयी है, किन्तु वह सापेक्षिक रूप में कम है।

आर्थिक विकास की गतिविधियों में हो रहे परिवर्तन को सारणी-4.1से अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है -

तालिका 4.1

समष्टि आर्थिक परिदृश्य प्रतिशत

	मद	1993-94	1992-93	1991-92
1	वास्तविक सकल देशी उत्पाद वृद्धि दर	3 8	4 00	1 1
2	सकल देशी बचत दर	24.2	22 10	24 1
3	कुल सकल निवेश दर	24 1	24 3	25 1
4	निवेश देशी बचत दर	15 3	13 0	15 2
5	निवल कुल निवेश दर	15 6	15 4	16 3

स्रोत· *योजना, सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार) जून 1995, पृष्ठ सख्या-7*

वर्ष 1993-94 के दौरान वास्तविक आर्थिक गतिविधियॉ साधारण रही हैं। वास्तविक सकल देशी उत्पादन वृद्धि दर 3 8 प्रतिशत है जोकि 1992-93 की तुलना में कम है। यद्यपि बात 80 के दशक मे हासिल की गयी वृद्धि की तुलना मे नयी औद्योगिक नीति की घोषणा के बावजूद यह प्रतिशत न्यूनतम रहा है। 1991-92 मे जहॉ सकल देशी बचतदर, सकल देशी उत्पादन का 24 1 प्रतिशत थी। जो वर्ष 1992-93 में घटकर 22 9 प्रतिशत हो गयी। किन्तु इस दर को पुन वर्ष 1993-94 मे बढाकर 24 2 प्रतिशत तक लाने का प्रयास किया गया है। वित्तीय परिसम्पत्तियो मे घरेलू क्षेत्र की बचत दर जो वर्ष 1991-92 में 10 प्रतिशत थी, वर्ष 1992-93 में घटकर 7 4 प्रतिशत हो गयी थी। पुन वर्ष 1993-94 मे उछल कर यह दर 10 1 प्रतिशत हो गयी है। इसका मूल कारण घरेलू क्षेत्र द्वारा मुद्रा और बैक जमा राशियों की वर्धित धारित राशिया, शेयरो और डिबैंचरो में निवेश की सभावनाये हैं।

तालिका 4.2

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दरें

वर्ष	खनन और उत्खनन	विनिर्माण	विजली	सामान्य
1989-90	6 3	8 6	10 9	8 6
1990-91	4 5	8 9	7 8	8 2
1991-92	0 6	0 8	8 5	0 6
1992-93	0 5	2 1	5 0	2 3
1993-94	2 3	2 3	7 3	3 0

स्रोत *योजना सूचना एव प्रसारण मत्रालय(भारत सरकार), अक 6 जून 1995, पृष्ठ सख्या 7*

नई औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद देश में औद्योगिक उत्पादन में बढोत्तरी की सभावनाए व्यक्त की गयी थीं। तालिका-4 2 में प्राप्त ऑकडों से पता चलता है कि वर्ष 1993-94 के दौरान औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर पूर्व की दर की तुलना मे 2 3 प्रतिशत से बढकर 3 0 प्रतिशत हो गयी थी। विनिर्माण के क्षेत्र मे भी वर्ष 1993-94 में 3 प्रतिशत की वृद्धि आकी गयी है जो पिछले दो वर्षो की तुलना में थोडी सी अधिक है। खदान और पत्थर निकालना और बिजली के क्षेत्रों में कार्य निष्पादन क्रमश 3 प्रतिशत और 7 3 प्रतिशत की वृद्धि दर से बेहतर रहा है जो पिछले दो वर्षों से अधिक है।

विनिर्माण के क्षेत्र में जिन औद्योगिक समूहों में वृद्धि की दरें देखी गयी है वे हैं- मादक, पेय, तम्बाकू और उत्पाद, जूट, हेम्प और मेस्ता वस्त्र उद्योग, रसायन और रसायन उत्पाद, कागज और

कागज उत्पाद, परिवहन उपकरण, मूल धातु और सम्बद्ध उत्पाद, चमड़ा और चमड़े के उत्पाद तथा फूड के उत्पाद। वर्ष 1991-92 के दौरान सरकार ने बहुत सी वस्तुओं पर सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क में कटौती कर दी है, जिसके कारण वस्तुएं सस्ती हुई और उत्पादन और निर्यात में बढ़ोत्तरी हुई। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का भी उत्पादन अच्छा रहा है और गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में गिरावट आयी है।

आधारभूत उद्योगों में भी विकास की दरें परिलक्षित हुई हैं। छः आधारभूत उद्योगों जिनमें बिजली, कोयला, इस्पात, फूड पेट्रोलियम, पेट्रोलियम रिफाइनरी उत्पाद और सीमेंट शामिल हैं ने वर्ष 1992-93 के 2.2 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में, वर्ष 1993-94 में 5.4 प्रतिशत की वृद्धि हासिल की। पेट्रोलियम रिफाइनरी और कोयला उद्योगों को छोड़कर अन्य आधारभूत उद्योगों में भी सुधार हुआ है।

कृषि जो भारत का आधारभूत उद्योग है और जिस पर भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या निर्भर करती है, पर नवीन औद्योगिक नीति का प्रभाव हुआ है। वर्ष 1992-93 में कृषि उत्पादन उच्चतम स्तर पर था उसमें भी, वर्ष 1993-94 में काफी सुधार हुआ है। वर्ष 1992-93 में जहाँ 180 मिलियन टन खाद्यान्न का रिकार्ड उत्पादन हुआ था, इस रिकार्ड को तोड़ते हुए वर्ष 1993-94 में 182 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ और आज हम खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर ही नहीं, बल्कि निर्यात की स्थिति में भी है।

जैसा कि स्पष्ट है कि नियोजित ओद्यौगिक विकास के लम्बे अनुभवों के बाद सरकार ने औद्योगिक नीति में सभी बुनियादी और क्रांन्तिकारी परिवर्तन किये है, जिसमें सरकार के बजाय बाजार शक्तियों को नियामक भूमिका प्रदान करने का अवसर प्रदान किया गया है और यह कदम विश्व के बड़े औद्योगिक देशों द्वारा परीक्षित आर्थिक विकास के अनुभवों के आधार पर उठाया गया है, किन्तु क्या सरकार की इस औद्योगिक नीति से आशातीत सफलता मिली है? उत्तर है नहीं। सरकार विभिन्न आर्थिक मोर्चों पर अपने आपको असफल महसूस कर रही है और औद्योगिक उत्पादन सापेक्षिक रूप में बढ़ने के बजाय घटा है।

1. सार्वजनिक निवेश में राजकोषीय समायोजन घट रहा है और इसके परिणामस्वरूप कई पूँजीगत माल उद्योगों में उत्पादन की मांग में अनिवार्य रूप से कमी आयी है।

2. उद्योग में कतिपय खण्डों में टेरिफ को कम करने से पहली बार इन उद्योगों को बाहरी देशों के उद्योगों से प्रतियोगिता करनी पड़ी, जिसके कारण देशी उद्योगों के माल की मांग घटती जा रही है।

3 आयातित निर्विष्टियो का मुक्त रूप से उपलब्ध होना और सापेक्ष रूप से ऋण शर्तों का आसान होना, जिसके परिणामस्वरूप सापेक्ष रूप से माल के लिए माग कम हो गयी और उत्पादन कम हो गया।

4 निर्यात प्रोत्साहन प्रणाली और विनिमय दर में परिवर्तन से सतुलन का प्रभाव निम्न आयातित घटक वाले निर्यात उद्योगों की ओर हो गया है, जबकि इसमें निर्यात प्रोत्साहन उन उद्योगो को दिया जाता था जिनके आयात घटक अधिक होते थे।

उपरोक्त कारणों को ध्यान मे रखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि भारतीय उद्योगों में रचनात्मक परिवर्तन किया जाये। यह सत्य है कि जैसे-जैसे भारतीय उद्योग समय के साथ चलने की स्थिति में आते रहेंगे, कारोबारी चक्रों का इस पर प्रभाव पडेगा जिसके साथ-साथ वृद्धि की दरों में तेज उतार-चढाव की स्थिति भी जुडी रहेगी, किन्तु नवीन औद्योगिक नीति को फलीभूत करने के लिए औद्योगिक प्रगति की दिशा पर समय-समय पर गति नियत्रण करते रहना भी आवश्यक है और साथ ही साथ औद्योगिक क्षेत्र की उप क्षेत्रीय असमानताओं को भी दूर करना होगा।

3. रोजगार के अवसर प्रदान करना :

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने देशों और विदेशों में लगभग 73 मिलियन लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार प्रदान किया है, जिनमें सम्पूर्ण विश्व के गैर-कृषि कार्यकलापों के लगभग 10 प्रतिशत रोजगार निहित है। यदि केवल विकसित देशों की गणना की जाए तो इसका परिणाम लगभग 20 प्रतिशत होता है। विश्व का लगभग एक तिहाई उत्पाद बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा नियत्रित किया जाता है। भारतीय उद्योग महासघ के सर्वेक्षण के अनुसार बहुराष्ट्रीय निगमो को रोजगार के अवसर सृजित करने में सफलता प्राप्त हुई है। इनमें 1990 से 1995 की अवधि के दौरान 3 84 प्रतिशत रोजगार वृद्धि हुई। इसके साथ अप्रत्यक्ष रोजगार मे लगभग 9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। अतर्वर्ती वस्तु उद्योग (3 01 प्रतिशत), उपभोक्ता अस्थाई उद्योग 8 20 प्रतिशत और सेवा उद्योग 3 21 प्रतिशत ने कुल रोजगार में उच्च सम्वृद्धि दर दर्शाई।[7] उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उद्योग में 0 8 प्रतिशत की दर से कम रोजगार वृद्धि हुई, किन्तु बढते हुए मध्यमवर्ग की क्रयशक्ति में वृद्धि होने के साथ ही इसमें सुधार होने की आशा है।

सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के रोजगार में 1990 से

---

7 योजना सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अक 6 जून 1995, पृष्ठ सख्या - 10

1995 की अवधि में 0 89 प्रतिशत की कमी आई। निजी क्षेत्र के रोजगार में सभी उद्योगो की तुलना मे 2 89 प्रतिशत की दर से औसत से अत्यीधक उच्च सवृद्धि हुई।

उदारीकरण और नई आर्थिक नीति को शुरू करते समय सरकार की ओर से कहा गया कि इससे देश मे रोजगार के अवसर अधिक बढेंगे तथा बेरोजगारी पर अकुश लगेगा, लेकिन विगत पॉच वर्षो मे सरकारी दस्तावेजो में दिये गये ऑकडों के तस्वीर विरोधी बातें ही कहती हैं। केन्द्र सरकार के 'मिड टर्म इकोनामिक्स' सर्वे वर्ष 1993-94 की रपट तथा रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के 'ओकेजनल पेपर्स' के अनुसार वर्ष 1992-93 में बेरोजगार की सख्या में 174 करोड की वृद्धि हुई।

साल दो साल मे बेरोजगारी में भारी बढोत्तरी हो रही है और रोजगार के अवसर लगातार समाप्त हो रहे हैं। बेरोजगारी मे बढोत्तरी या रोजगार मे कमी वर्ष 1972 से ही आना शुरू हो गयी थी, लेकिन वर्ष 1978 के आते-आते बेरोजगारी काफी तेजी से बढने लगी। उदाहरण के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया सालानार-पट के अनुसार वर्ष 1972 में कृषि क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर 2 32 प्रतिशत थी जो वर्ष 1993 में घटकर 1 2 प्रतिशत हो गयी और वर्ष 1987 में 0 65 प्रतिशत रह गयी। 1991-92 मे यह अत्यन्त ही चिन्ताजनक तरीके से घटकर मात्र 0 32 प्रतिशत रह गई। 1995 के अन्त तक रोजगार वृद्धि करके 0 20 प्रतिशत आ जाने की सभावना है इसी तरह उद्योगो के क्षेत्र मे 1972 में रोजगार वृद्धि दर 5 1 प्रतिशत था। जो वर्ष 1978 में घटकर 3 75 प्रतिशत रह गई। वर्ष 1987 में यह 2 10 प्रतिशत पर आ गयी और 1991-92 में घटकर मात्र 1 40 प्रतिशत रह गई।[8]

इन्हीं सरकारी ऑकडों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि रोजगार में वृद्धि की दर कृषि तथा उद्योगों दोनों मिलाकर प्रतिवर्ष 1 90 प्रतिशत है जबकि बेरोजगारी में वृद्धि कीदर प्रतिवर्ष औसतन 98 10 प्रतिशत है। अत पिछले पॉच साल की उदारीकरण की नीतियों में रोजगार के अवसर दिलाने में पर्याप्त सफलता नहीं मिल पाई किन्तु आशा यह है कि आगामी वर्षों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा रोजगार के अवसर में वृद्धि होगी।

फिर भी भारत एक विकासशील देश है और यह विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसख्या वाला राष्ट्र है यहॉ श्रम की प्रचुरता है, फिर भी कुशल श्रमिकों की सख्या अपेक्षाकृत कम है, बडे पैमाने पर बेरोजगारी यहॉ देखी जा सकती है। सस्ते श्रम की उपलब्धि आज भी भारत में बनी हुई है। अत यदि बहुराष्ट्रीय निगम इस सस्ते श्रम का उपयोग कर अधिकतम लाभ कमाने की दृष्टि से भी भारतीय

8 *योजना, सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अग 8 नवम्बर 1996, पृष्ठ सख्या - 14-15*

श्रमिको को रोजगार प्रदान कर सकते हैं तो इससे उनकी आय मे तो वृद्धि होगी ही, साथ ही प्रति व्यक्ति आय और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। यदि बहुराष्ट्रीय निगम श्रम-प्रधान तकनीक का प्रयोग कर उत्पादन करता है तो रोजगार की दृष्टि से इसे वाछित माना जा सकता है।

4. प्रौद्योगिकी व तकनीक हस्तान्तरण में सुविधा :

बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से तकनीक का अन्तरण भारत सहित विभिन्न देशों मे हुआ है। इस प्रकार से अन्तरित तकनीक विभिन्न देशो के साधन-भण्डारों के अनुकूल हो भी सकती है और नहीं भी। अन्तरित तकनीक के देश में उपलब्ध साधन भण्डारों के अनुकूल न होने की बात पूँजी-प्रधान देशो से श्रम-प्रधान देशों को अन्तरित अनुपयुक्त तकनीक के अन्तरण के लिए भी उत्तरदाई है जो अकुशल श्रम प्रधान है। ऐसा करने का मतव्य यह भी हो सकता है कि इस प्रकार उत्पादन लागत कम बैठने से अधिक लाभ कमाया जा सकता था। अल्पविकसित देशों में उपलब्ध सस्ते श्रम का लाभ उठाने के लिए राष्ट्र-पार उद्यमों ने अपने विनिर्माण वस्तु-क्षेत्र के उत्पादन की तकनीक मे अनेक बार महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं इतना ही नहीं, यह बहुराष्ट्रीय निगम नई तकनीक के विकास में समर्थ हो सकते हैं और रहे भी हैं। इसका कारण यह है कि इनके पास विशाल मात्रा मे कौशल और ससाधन उपलब्ध है। इनके प्रयोग से श्रम-प्रधान तकनीक का विकास किया जा सकता है।

श्रम प्रधान तकनीक के अलॉवा, उत्पादन के कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जिनका विकास पूँजी-प्रधान तकनीक के बिना नहीं हो सकता, जैसे-पेट्रोलियम, रसायन, खनिज आदि। इन क्षेत्रों में तकनीक का अन्तरण लाभप्रद हो सकता है। ऐसी तकनीक का उत्पादन चाहे स्थानीय हो या आयात-निर्भर, इसके लिए बहुत अधिक साधन और समय की आवश्यकता होती है। समय की बचत करने के लिए बहुराष्ट्रीय निगमो का सहारा लिया जा सकता है, विशेषतया कच्चे तेल जैसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन की सम्भावनाओं की वृद्धि के लिए। भारत मे यदि बहुराष्ट्रीय निगम पूँजी-प्रधान तकनीक के साथ सस्ती दर पर ऐसी वस्तुओं की आपूर्ति करने में सक्षम है, जिनके उत्पादन में अधिक पूँजी की आवश्यकता पडती है तो यह कुछ समय के लिए वाछनीय हो सकता है और इस पर व्यय की जाने वाली पूँजी का उपयोग अन्य क्षेत्रों में करके विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है, किन्तु बहुराष्ट्रीय निगमों पर लम्बे समय तक पूर्ण निर्भरता को वाछनीय नहीं कहा जा सकता।

बहुराष्ट्रीय निगम भारत में काफी लम्बे समय से कार्य कर रहे हैं, लेकिन उनका परिचालन कई शर्तों के अधीन था। पहले उन्हें इक्विटी में प्रमुख भाग प्राप्त नहीं था। प्रौद्योगिकी अन्तरण पर रायल्टी अधिकार शुल्क अथवा एकमुश्त भुगतानों द्वारा रोक लगाई जाती थी। इसके परिणामस्वरूप

जब तक देशी फर्मों के पास बहुमत और प्रबन्धकीय नियत्रण न हो तब तक बहुराष्ट्रीय निगम देशीय फर्मों को प्रौद्योगिकी हस्तान्तरित करने में अनिच्छुक होते थे। बहुराष्ट्रीय निगमो की भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश की गति एव प्रकृति गभीर चर्चा का विषय बन गई है। इसके समर्थकों का मत है कि इस नई प्रक्रिया से हमारी विकासमान अर्थव्यवस्था को प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण किया गया है, जबकि आलोचकों का मत है कि यह उन्नत देशो की विकासमान अर्थव्यवस्थाओ में विभिन्न प्रकार से घुसने की एक चाल है, जिसके द्वारा वे इनके सगठित उत्पादन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियत्रण प्राप्त करना चाहते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम लाभ अधिकतम करने के एक मात्र उद्देश्य से कार्य करते रहे हैं और वे लाभ, रायल्टी, भुगतान, कमीशन और तकनीकी परामर्श शुल्क को साधन चूसने के एक उपकरण के रूप मे इस्तेमाल करते रहे हैं। बहुराष्ट्रीय निगमो के विकास को एक प्रकार के नव साम्राज्यवाद की सज्ञा दी जाती है। अत भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुराष्ट्रीय निगमो के प्रभाव का परीक्षण करना समीचीन होगा।

5. आयात–निर्यात नीति को सरलीकृत करने के लिए :

उदारीकरण एव विश्वव्यापीकरण की इसी श्रृखला में भारत सरकार ने आठवीं पचवर्षीय योजना 1992-97 के लिए नई आयात-निर्यात नीति की घोषणा की है। इस नीति का वृहद् उद्देश्य व्यापार में न्यूनतम प्रतिबन्ध, अधिक स्वतन्त्रता एव न्यूनतम प्रशासनिक नियत्रण सुनिश्चित करना है। 1 अप्रैल 1993 को पुन सशोधित आयात-निर्यात नीति को और अधिक उदार बनाते हुए इसमें कृषि क्षेत्र की निर्यातोन्मुखी इकाइयों को प्रोत्साहित करने की योजना बनाई गई साथ ही साथ आयात-निर्यात की निषिद्ध सूचियो में भारी कटौती की गई है।

कुल मिलाकर आयातनीति में तीन वस्तुओ के आयात पर पूरा प्रतिबन्ध लगाया गया है। 71 वस्तुओं के आयात को सीमित किया गया है और 7 वस्तुओ के आयात को सरकारी सस्थाओ द्वारा ही आयात की अनुमति दी गई है।[9] रूपये की परिवर्तनीयता के कारण किसी भी वस्तु का आयात करने के लिए अब बाजार भाव पर विदेशी मुद्रा खरीदनी होगी। इसी प्रकार 62 वस्तुओं के निर्यात पर विभिन्न सीमाए और नियत्रण लगाए गए हैं तथा 10 वस्तुओं का निर्यात सरकारी एजेन्सियों के द्वारा ही किया जा सकेगा। नई नीति में पूँजीगत माल के आयात पर अब कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अब पुराने पूँजीगत माल के आयात की भी अनुमति होगी, जिनमें से कुछ मामलों में लाइसेंस लेना अब भी आवश्यक होगा।

---

9 वार्षिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण भारतीय अर्थव्यवस्था, वर्ष 1994-95, पृष्ठ सख्या - 104

1992-97 की आयात-निर्यात नीति में सशोधन सरकार ने 31 मार्च 1993 को आयात-निर्यात नीति (1992-97) मे महत्वपूर्ण सशोधनों की घोषणा की। 31 मार्च 1992 को अगले पॉच वर्षो 1992-97 के लिए घोषित आयात-निर्यात नीति (EXIM POLICY) को और अधिक उदार बनाते हुए इसमें कृषि क्षेत्र मे निर्यातोन्मुखी इकाइयॉ लगाने पर और छूट देने तथा सेवा क्षेत्र के लिए एक नई योजना प्रारम्भ करने की घोषणा की गई। इस नीति में किये गये सशोधन 1 अप्रैल 1993 से लागू हो गए। सरकार ने पुन 30 मार्च 1994 को आयात-निर्यात नीति (1992-97) में कुछ महत्वपूर्ण सशोधनो की घोषणा की। इन सशोधनो को 31 मार्च 1994 से लागू कर दिया गया है। आयात-निर्यात नीति में किये गये महत्वपूर्ण सशोधनों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है –

1 निर्यात क्षेत्र का विस्तार निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने निषेधात्मक सूची में शामिल 334 वस्तुओ मे से 144 वस्तुओं को निर्यात योग्य वस्तुओं की सूची में सम्मिलित कर लिया है। अब इनके निर्यात के लिए लाइसेस की आवश्यकता नहीं होगी।

2 कृषि एव सम्बन्धित क्षेत्रों की निर्यातोन्मुख इकाइयों को शुल्क रहित आयात का लाभ सशोधित आयात-निर्यात नीति के अनुसार अब कृषि, मत्सय, पशुपालन, मुर्गी पालन, बागवानी, रेशम उद्योग तथा फूलों का व्यापार करने वाली इकाइयों को भी निर्यातोन्मुखी इकाइयॉ कही जाती है। निर्यात ससाधन क्षेत्र योजना के अन्तर्गत शुल्क रहित आयात की सुविधा प्राप्त होगी। इस क्षेत्रो की निर्यातोन्मुखी इकाइयॉ को अपने उत्पादों का 50 प्रतिशत तक निर्यात करने पर वही सुविधाए तथा रियायतें मिलेंगी जो अन्य औद्योगिक इकाइयों को शत प्रतिशत अथवा 75 प्रतिशत तक निर्यात करने पर मिलती है। ऐसी इकाइयॉं अब अपने शेष 50 प्रतिशत उत्पादों को घरेलू बाजार में बेच सकेंगी, जबकि गैर कृषि क्षेत्र के लिए यह 25 प्रतिशत तक ही है।[10]

3 **पूॅजीगत माल की परिभाषा का विस्तार** कृषि एव सम्बन्धित क्षेत्रों को लाभान्वित करने के लिए नई सशोधित नीति के अन्तर्गत पूॅजीगत सामान की परिभाषा को भी बदल दिया गया है। इसके फलस्वरूप अब कृषि क्षेत्र में कार्यरत इकाइयॉ भी निर्यात सम्बर्द्धन पूॅजीगत लाभ योजना (Export Promotion Goods Scheme) का लाभ उठाकर उपकरणो को रियायती दर पर आयात करने की सुविधा का लाभ उठा सकती हैं।

4. **सेवा क्षेत्र के लिए पूॅजीगत सामान निर्यात प्रोत्साहन योजना** सशोधित आयात-निर्यात नीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता सेवा क्षेत्र का लाभ उठाने के लिए एक नई योजना लागू करना है। इस योजना को सेवा क्षेत्र के लिए पूॅजीगत माल निर्यात सम्बर्द्धन योजना का नाम दिया गया है।

---

10 वार्षिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण, भारतीय अर्थव्यवस्था, वर्ष 1994-95, पृष्ठ सख्या - 105

4 **ई पी सी जी योजना** निर्यात के विभिन्न क्षेत्रो के लिए लागू निर्यात सम्बर्द्धन पूँजीगत माल योजना (Export Promotion Capital Goods Seheme) के अन्तर्गत 15 प्रतिशत की रियायती आयात शुल्क दर को सशोधित आयात-निर्यात नीति में खुला रखा गया है तथा 25 प्रतिशत आयात शुल्क वाला दूसरा झरोखा अब समाप्त कर दिया गया है।

5 **बैंक गारण्टी में उदारता** ई पी सी जी योजना के अन्तर्गत एक आयातकर्ता को उपलब्ध की जाने वाली बैंक गारण्टी की आवश्यकताओं को सशोधित नीति के तहत उदार बना दिया गया है तथा बैंक गारण्टी प्राप्त करने की प्रक्रिया को भी सुगम बनाया गया है। 30 मार्च 1994 को घोषित आयात-निर्यात नीति के सशोधन मे विशेष आयात लाइसेस के अन्तर्गत आयातो की सूची में विस्तार, सुपर स्टार ट्रेडिग हाउस की नई श्रेणी का प्रारम्भ, रियायती सीमा शुल्क चुकाकर स्वर्ण व चॉदी के आयात की अनुमति।

बहुराष्ट्रीय निगमों के गुण :

बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा विकासशील देशो के औद्योगीकरण में सहायता पहुँचायी गयी है। जहॉ विकासशील देश पूँजी व तकनीक देने में असमर्थ थे, वहॉ इन बहुराष्ट्रीय निगमो ने भारी मात्रा मे पूँजी ही नहीं लगायी है, बल्कि तकनीक भी प्रदान की है, जिससे कि उन देशों में औद्योगिक उत्पादन की नींव ही नहीं रखी है, बल्कि उसके विकास में भी भारी योगदान दिया है। इन बहुराष्ट्रीय निगमो ने ऐसे उद्योगों की भी स्थापना इन विकासशील देशों मे की है, जिनमें भारी मात्रा में पूँजी व आधुनिक तकनीक की आवश्यकता होती है जैसे, पेट्रोलियम, रसायन, खनिज आदि। भारत में बरमाह शैल व कालरैक्स पेट्रोलियम के क्षेत्र में इन्हीं निगमों की देन थी।

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमो ने साधनों के बारे मे पता लगाकर उनके विदोहन का कार्य प्रारम्भ किया, जिसे भारत उन परिस्थितियो में नहीं कर सकता था। बहुराष्ट्रीय निगमो ने जब यह पाया कि भारत मे श्रम सस्ता है तो उन्होने उनका लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादन तकनीक मे अनेक बार महत्वपूर्ण परिवर्तन किये, जिससे कि उत्पादन आधुनिक व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतियोगी बन गया जो देश के हित नहीं रहा।

इन निगमों ने शोध एव विकास पर पर्याप्त मात्रा में व्यय किया तथा मुख्य कार्यालय के शोध एव विकास का लाभ शाखा कार्यालय व सहायक कम्पनियों को भी दिया है, जिससे अल्पविकसित देशों के औद्योगीकरण में सहायता मिली है।

बहुराष्ट्रीय निगमो ने विपणन कार्य भी कुशलता से कर निर्यात को बढावा दिया है। इसके लिए बाजार शोध विज्ञापन, विपणन सुविधाओ का प्रसारण, भण्डार प्रबन्ध, पैकेजिग आदि का भी विकास किया है, जिससे कि वस्तु उपभोक्ता तक उचित प्रकार में पहुँच सके। इनके द्वारा बृहत स्तर पर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं जिससे देश मे रोजगार की सुविधाए बढी हैं।

विकसित देशो मे जन्में इन बहुराष्ट्रीय निगमो के कार्यक्षेत्र विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। इनके क्रियाकलाप मे वे सेवाए शामिल हैं, जिनका सम्बन्ध पूँजीगत तकनीक अन्तरण, उत्पादन के वितरण आदि की जानकारी के लिए शोध और उनके विकास से है। दूसरे स्तर पर वस्तु और उत्पादन आते हैं। इनसे सम्बन्धित कार्यकलाप मुख्य रूप से खनिज और पेट्रोलियम जैसे क्षेत्रों से सम्बन्धित है। इसके अलावा ये निगम 'बेबी फूड' और कृषि उत्पादन सहित खाद्य -सामग्री के क्षेत्र मे भी कार्य करते हैं इतना ही नहीं इनका दखल अल्पविकसित देशों को विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात के क्षेत्र में भी है। इन सेवाओ और उत्पादों को उपलब्ध कराने में यह उत्पाद और क्रेता दोनो रूपों मे कार्य करते हैं। भारत मे बहुराष्ट्रीय निगम औषधि उद्योग, विद्युत मशीनरी, रसायन, एल्यूमिनियम धातु और उत्पाद, भारी इजीनियरिंग सामान, खाद्य पदार्थ आदि उद्योगो मे कार्यरत हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमों की उपादेयता एव लाभ निम्नवत हैं –

1. शोध एवं विकास :

तकनीकी प्रगति के लिए तकनीकी विषयक शोध एव विकास पर होने वाले व्यय का प्रश्न भी जुडा हुआ है। इस व्यय का एक बडा भाग बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उनके अपने देश के बाहर किया जाता है, यद्यपि यह व्यय भारत सहित अन्य विकासशील देशो में बहुत कम है, फिर भी इस सीमित व्यय से कुछ लाभ उठाये जा सकते हैं। सामान्यत इस व्यय मे वृद्धि की जा सकती है और की भी जानी चाहिए, क्योकि अल्पविकसित देशों में लोगो का जीवन-स्तर विकसित देशो की तुलना मे बहुत निम्न स्तर का है। बहुराष्ट्रीय निगमो के प्रति नीति-निर्धारण के समय ऐसी व्यवस्था की जाय कि यह निगम शोध एव तकनीकी विकास पर पर्याप्त धनराशि व्यय करें, जिससे देश मे तकनीकी प्रगति हो और देश मे आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने में सहायता प्राप्त हो सके।

2. विदेशी पूँजी और तकनीक की आपूर्ति ·

किसी भी व्यवसाय को प्रारम्भ करने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। औद्योगीकरण को जन्म देने के लिए भारत जैसे देश में पूँजी की पर्याप्त मात्रा में कमी थी, जिससे हमारे लिए यह

आवश्यक हो गया है कि विदेशी सहयोग के माध्यम से पर्याप्त मात्रा मे विदेशी पूँजी प्राप्त करे, क्योकि जिस प्रकार शरीर को जीवित करने के लिए रक्त की सचार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी व्यवसाय को पुर्नजीवित करने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है।

खाडी युद्ध से उपजे प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन तथा घरेलू स्तर पर राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण में विदेशी मुद्रा प्रारक्षित भण्डार 1990-91 के अन्त में 1 1 बिलियन अमरीकी डालर के स्तर पर पहुँच गया। इस गम्भीर स्थिति से निपटने के लिए सरकार ने विदेशों मे भारतीय साख को बचाने के उद्देश्य से तात्कालिक उपाय के रूप मे भारतीय स्टेट बैंक को 20 टन सोना इस शर्त पर उधार दिया कि वह इसे विदेशों मे बेचकर विदेशी मुद्रा अर्जित करे तथा 6 माह के बाद जब देश में विदेशी मुद्रा प्रारक्षित भण्डारों की स्थिति ठीक हो जाए तो इस सोने को पुन खरीद कर ले।

विश्व के पिछडे तथा विकासशील राष्ट्रो की आर्थिक विषमता को दूर करने में विदेशी पूॅजी की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। भारत को विदेशी पूॅजी निम्नलिखित रूप से प्राप्त होती है। (अ) प्रत्यक्ष निवेश बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निवेश (ब) अप्रत्यक्ष निवेश- विदेशियो द्वारा भारतीय कम्पनियों के हिस्से अथवा डिबेचर (ऋण-पत्र) खरीदना, (स) विदेशी पूॅजी जिसे विदेशी सहायता अथवा वाह्य सहायता भी कहते है। यह पूॅजी विश्व बैंक (आई बी आर डी) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम एफ) तथा अन्य सयुक्त राष्ट्र एजेन्सियों के अनुदानो तथा ऋणो के रूप में प्राप्त होती हैं। अर्थव्यवस्था मे खुलापन आने के फलस्वरूप विदेशी निवेश अब 250 से 400 करोड डालर प्रतिवर्ष आने लगा है। भारत में 1994 के दौरान मात्र 95 करोड डालर का निवेश हुआ जबकि 1995 में यह राशि बढकर 2 12 अरब डालर पहुँच गयी। इस प्रकार 1991-95 तक कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मात्र 4 अरब डालर का हुआ है।

भारत में पूॅजी निवेश के दौरान अमेरिका की सक्रिय भूमिका रही है। अमेरिका ने उदारीकरण के पहले तीन वर्षों में कुल विदेशी निवेश का लगभग एक तिहाई 545 62 करोड रूपये लगाये थे। 1994 की पहली छमाही में केवल 573 39 करोड रूपये का निवेश किया जबकि 1991 में 185 85 करोड रूपये 1992 में 1231 50 करोड रूपये तथा 1993 में 3461 88 करोड रूपये का निवेश किया गया। इसी प्रकार जापान में 1991 में 52 71 करोड रूपये का प्रस्ताव मिले जो 1992 में बढकर 610 23 करोड रूपये हो गये, परन्तु 1993 में कम होकर 257 43 करोड़ रूपये तथा 1994 में इसमें और कमी हुई। वर्ष की पहली छमाही में सिर्फ 18 90 करोड रूपये के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए। जिन देशों की ओर से निवेश प्रस्ताव में निरन्तर वृद्धि हुई है वे हैं- ब्रिटेन, जर्मनी, सयुक्त अरब अमीरात, फ्रान्स,

सिगापुर और कनाडा।

भारत मे विदेशी पूँजी निवेश अप्रैल 1997 मे 14 01 करोड डालर मई 1997 मे 19 97 करोड डालर, जुलाई 1997 मे 27 42 करोड डालर, अगस्त 1997 में 14 94 करोड डालर था। विदेशी पूँजी निवेश के तेजी से भारत में बढने के फलस्वरूप कई समस्याए भी पैदा होती है। जैसे विदेशी निवेशक उन्हीं क्षेत्रो में पूँजी निवेश लगाने को प्रोत्साहित कर रहे हैं, जिसमे अधिक लाभ की गुजाइश है। उदाहरण स्वरूप कोका कोला, पेप्सी आदि। औद्योगिक नीति 1991 के अन्तर्गत जहॉ एक ओर घरेलू विनियमन व्यवस्था मे सुधार किए गये, वहीं दूसरी ओर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के भारत में प्रवाह को बढाने के लिए विदेशी निवेश से सम्बन्धित अनेक विनियमो में भी सुधार किए गए है। ये सुधार निम्नलिखित है -

1 उच्च प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों मे विदेशी इक्विटी की अधिकतम सीमा को 40 प्रतिशत से बढाकर 51 प्रतिशत कर दिया गया है।

2 गैर प्राथमिकता प्राप्त उद्योगो में विदेशी निवेश सम्बन्धी नीति को उदार बनाया गया है। इस कार्य के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त विदेशी निवेश सम्बर्द्धन बोर्ड (एफ आई पी बी) का गठन किया गया है। यह बोर्ड बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के विदेशी निवेश सम्बन्धी मामलो को शीघ्रता पूर्वक निपटाने का कार्य करता है।

3 उच्च प्रौद्योगिकी तथा भारी निवेश प्राथमिकता वाले उद्योगो की विनिर्दिष्ट सूची के लिए फर्मों को कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्तो के अन्तर्गत विदेशी प्रौद्योगिकी करार करने की स्वत अनुमति प्राप्त हो गई है। इसके लिए दी जाने वाली रायल्टी की सीमा घरेलू बिक्री का 5 प्रतिशत तथा निर्यात बिक्री का 8 प्रतिशत रखी गई है।

अधिकाधिक विदेशी पूँजी निवेश को भारत में आकर्षित करने के लिए सरकार ने विदेशी सस्थागत निवेशको पेंशन फण्ड्स, म्यूचुअल फण्ड्स, निवेश न्यास, एसेट मैनेजमेंण्ट कम्पनियों, नोमनी कम्पनियॉ, निगमित व सस्थागत पोर्ट फोलियों प्रबन्धकों आदि को भारतीय पूँजी बाजार में प्रत्यक्ष निवेश करने की छूट प्रदान कर दी है। इन निवेशकों को दी गई कर राहतों में लाभाश तथा ब्याज आय पर 20 प्रतिशत तथा दीर्घावधि पूँजी आय पर 10 प्रतिशत कर दर निर्धारित करना शामिल है। ये सस्थागत निवेशकर्ता अब सभी प्रकार की प्रतिभूतियो में निवेश कर सकते हैं, परन्तु ऐसा करने से इन्हें भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड (एस ई बी आई) के तहत पजीकरण कराना होता है एव फेरा अधिनियम के

तहत भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करनी होती है। विदेशी सस्थागत निवेशको द्वारा द्वितीयक बाजारो में किए गए निवेशो के बीच कोई लॉक-इन-पीरियड भी नहीं है किन्तु कोई एक सस्थागत निवेशक किसी एक कम्पनी के 5 प्रतिशत से अधिक शेयर क्रय नहीं कर सकता तथा कम्पनी की कुल विदेशी इक्विटी 51 प्रतिशत से अधिक भी नहीं हो सकती।

बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से तकनीक का अन्तरण भारत सहित विभिन्न देशों मे हुआ। इतना ही नहीं, यह बहुराष्ट्रीय निगम नई तकनीक के विकास मे समर्थ हो सकते हैं और रहे भी है। इसका कारण यह है कि इनके पास विशाल मात्रा में कौशल और ससाधन उपलब्ध है। इनके प्रयोग से श्रम प्रधान तकनीक का विकास किया जा सकता है। सरकार ने करारोपण में सुधार हेतु डॉ० राजा चेलैया की अध्यक्षता मे गठित समिति की सिफारिशो को स्वीकार करते हुए वर्ष 1993-94 के बजट मे सीमा शुल्को तथा उत्पाद शुल्कों मे व्यापक राहत प्रदान करने की घोषणा की। अप्रत्याशित कमी से न केवल विदेशो से मशीनरी और नवीन प्रौद्योगिकी देश मे आएगी, बल्कि भारत लौटने वाले प्रवासी भारतीय अब अपने साथ अधिक सामान ला सकेंगे। इससे घरेलू उद्योगों को घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे प्रतियोगिता के अधिक अवसर प्राप्त होगे। घरेलू उद्योगों को आयातित वस्तुओ की टक्कर में समान स्तर प्रदान करने के उद्देश्य से भारतीय उद्योगों को उत्पाद शुल्क में भी भारी रियायतें प्रदान की गई हैं। ये रियायते उदारीकरण के अन्य कार्यक्रमों के पूरक रूप हैं।

3. औद्योगिक उत्पादन का व्यापक आधार :

भारत मे औद्योगिक उत्पादन के लिए आवश्यक व्यापक आधार निर्मित हो चुका है तकनीकी एव प्रबन्ध कुशलता में भी यह सक्षम है। सारे देश मे जनसख्या तीव्र गति से बढ रही है जिसके लिए यह आवश्यक हो गया है कि उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उत्पादन बृहत पैमाने पर किया जाय। बहुराष्ट्रीय निगमो के माध्यम से उत्पादन बृहत पैमाने पर करके उपभोक्ताओं की माग को पूरा किया जा सकता है। देश में प्राकृतिक ससाधनो की प्रचुरता है और इन सबसे ऊपर तैयार माल की खपत के लिए बहुत बडा घरेलू बाजार है। ऐसी परिस्थितियों मे निजी क्षेत्र के उत्पादक यदि कम कीमत पर उच्च कोटि की वस्तुओ का उत्पादन करने लगते हैं और वे वस्तुए विदेशी वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा मे बाजार में टिक भी जाती हैं तो घरेलू खपत के साथ-साथ निर्यात मे भी वृद्धि होगी।

श्रम प्रधान तकनीक के अलावा, उत्पादन के कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जिनका विकास पूँजी प्रधान तकनीक के बिना नहीं हो सकता जैसे पेट्रोलियम, रसायन, उर्वरक, खनिज आदि इन क्षेत्रों में तकनीक का अन्तरण लाभप्रद हो सकता है। ऐसी तकनीक का उत्पादन चाहे, स्थानीय हो या आयात

पर निर्भर, इसके लिए बहुत अधिक साधन और समय की आवश्यकता होती है। समय की बचत करने के लिए बहुराष्ट्रीय निगमो का सहारा लिया जा सकता है, विशेषतया कच्चे तेल जैसी आवश्यक वस्तु के उत्पादन की सभावनाओं की वृद्धि के लिए।

भारत मे यदि बहुराष्ट्रीय निगम पूँजी-प्रधान तकनीक के साथ सस्ती दर पर ऐसी वस्तुओं की आपूर्ति करने मे सक्षम हैं, जिनके उत्पादन मे अधिक पूँजी की आवश्यकता पडती है तो यह कुछ समय के लिए वाछनीय हो सकता है और इस पर व्यय की जाने वाली पूँजी का उपयोग अन्य क्षेत्रों में करके विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है।

4 विपणन सम्बन्धी सुविधा :

बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा वस्तुए एक देश से दूसरे देश, विशेषत अल्पविकसित देशों से विकसित देशो को वस्तुओ का आदान-प्रदान होता है, जिससे दोनों देशो की सस्कृति एव सभ्यता का विकास होता है। विपणन एक ऐसी क्रिया है जिसमे विभिन्न प्रकार के क्रियाकलाप सम्मिलित है, जिन्हे बहुराष्ट्रीय निगम अल्पविकसित देशों में अपेक्षाकृत अधिक कुशलता से कर सकते हैं। इन क्रियाकलापों मे बाजार सम्बन्धी शोध, विज्ञापन, विपणन, सूचनाओ का प्रसार, गोदाम, यातायात, पैंकिग की डिजाइन तैयार करना, वस्तुओं को उपभोक्ताओ तक पहुँचाना आदि सम्मिलित है। यह सभी कार्य अल्पविकसित देशों के लिए बहुराष्ट्रीय निगम बहुत अधिक कुशलता से करते हैं किन्तु अल्पविकसित देशों को इसकी भारी कीमत चुकानी पडती है।

5. सेवा क्षेत्र में उपलब्धियॉं :

'सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता' (General Agreement on Trade in Service) नाम से गैट समझौते व डकल प्रस्ताव में एक प्रावधान यह है कि सदस्य देशों को सेवाओं के व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त करना होगा। इसके अनुसार बीमा, बैंक, शिक्षा, पर्यटन, सचार, स्वास्थ्य, यातायात, टेलीकम्यूनिकेशन, इजीनियरिंग, जहाजरानी, वायुसेवा, परामर्श, विज्ञापन, मीडिया, डाटा प्रोसेंसिग, आदि सेवा क्षेत्रों को प्रतिबन्ध मुक्त करना होगा और इन क्षेत्रों में विदेशी कम्पनियों को घरेलू कम्पनी का दर्जा देना होगा। इन कम्पनियों के साथ 'सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र' (M F N A) की तरह व्यवहार करना होगा। बैंकिग, बीमा, जनसचार, शिक्षा, पर्यटन, स्वास्थ्य, टेलीकम्यूनिकेशन, इजीनियरिंग आदि क्षेत्र की अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का भारत में प्रवेश होगा। इससे इन क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा बढेगी जिसका लाभ आम उपभोक्ताओं को मिलेगा।

सेवा क्षेत्र सम्बन्धी गैट समझौते के इन प्रावधानो से यह आशका व्यक्त की जा रही है कि इससे देश मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का न केवल बहुतायत मे प्रवेश होगा बल्कि अपने विशाल ससाधनो के चलते वे भारतीय कम्पनियो के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह भी लगा देने मे सक्षम होगी। विकसित देशो की बैंकिग एव बीमा कम्पनियॉ भारतीय कम्पनियो अथवा सस्थाओं से हर मामले मे आगे हैं। विदेशी बैंक अपने ग्राहको को मौजूदा समय में भी अधिक सेवा व ब्याज प्रदान करते है। इस ताकत के बूते ने भारत के राष्ट्रीयकृत बैंको मे जमा राशि को बडी सरलता से अपनी ओर खींच लेगे। इस तरह हमारी ही घरेलू बचत हमारे अपने विकास कार्यों के लिए उपलब्ध न हो सकेगी। ऐसी स्थिति में हमारी सरकार को देश के विभिन्न विकास कार्यों हेतु विदेशी कम्पनियों व सस्थाओ से ऋण लेना पडेगा, जिसके बदले वे स्पष्ट रूप से हमारी नीतियों को प्रभावित करने का काम करेगी। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक से अनाप-शनाप ऋण लेकर हम अपनी हालत पतली कर चुके हैं। भारतीय कम्पनियो की अपेक्षा बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपने ग्राहको को सतुष्टि पूर्ण वार्तालाप करने, बैठने, ठहरने और उनकी समस्याओ को सुनने तथा उन्हे सुगमता पूर्वक हल करके ग्राहको का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं, जिससे प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न होती है।

6. भारतीय उद्योगों को प्रतियोगी बनाने की भावना :

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के आगमन, उदारीकरण एव आर्थिक सुधारों की नीतियों में सरकार ने इस बात के स्पष्ट सकेत दे दिए हैं कि भारतीय उद्योग को भविष्य मे सरकारी सरक्षण के बिना ही कार्य करना होगा। विगत 40 वर्षों से भारतीय उद्योगो को सरक्षण पर जीने की आदतें हो गई हैं। सरक्षणवादी नीतियो का लाभ उठाकर भारतीय उद्योगों ने न तो गुणवत्ता में सुधार किया और न ही लागत को कम करने का प्रयास किया, परन्तु अब सारे विश्व मे जिस प्रकार से तैयार माल की कीमतें घटी हैं, उससे भारत भी अछूता नहीं रह सकता। भारतीय उद्योगो को तैयार माल की गुणवत्ता व कीमत दोनो ही मामलो मे प्रतियोगी बनना होगा। सरकार ने प्रत्येक स्तर पर यह स्पष्ट कर दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे पैर जमाए बगैर भारत के विकास मे और अधिक तेजी नहीं लाई जा सकती है और इसके लिए यह जरूरी हो गया है कि भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था का स्वरूप प्रतिस्पर्धात्मक हो। बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के आने से घरेलू कम्पनियॉ भी अपने उत्पाद में प्रतियोगिता के वजह से उच्च किस्म की वस्तुए निर्मित करने की कोशिश करते हैं। प्रतियोगिता का होना ही व्यवसाय में बने रहने का कारण ही गुणवत्ता में सुधार है। इस प्रकार से यह भारतीय उद्योगो को प्रतियोगी बनाने की भावना उत्पन्न कर गुणवत्ता में सुधार के प्रति मार्ग-प्रशस्त करती है। इस कारण से ग्राहको को अच्छे किस्म की वस्तुए कम मूल्य पर मिल पाती हैं। जिन वस्तुओं को हम उत्पादित नहीं कर

सकते हैं या उसका निर्माण नहीं कर सकते है, उसे बहुराष्ट्रीय निगमो के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा औद्योगिक परिवर्तन तेजी से होता है, जिससे बडे पैमाने पर उत्पादन सभव हो पाता है। इस प्रकार हम आयात प्रतिस्थापन और निर्यात प्रोत्साहन नीति अपनाने में सफल हो सकते हैं। उच्च तकनीक का उपयोग करके लागत मे कमी लाने के साथ-साथ वस्तुओ की उच्च गुणवत्ता बनाये रखा जा सकता है।

7. मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध :

जब व्यापार दो देशों के मध्य होता है तो उसमे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव एव सहयोग स्थापित होता है, जिससे आधुनिकतम टेक्नोलाजी, वैज्ञानिकीकरण, भुगतान सतुलन, विनिमय दर, रूपये की पूर्ण परिवर्तनीय, श्रमशक्ति का उपयोग, मुद्रास्फीति नियत्रण, पूॅजी सहयोग, विदेशी प्रौद्योगिकी तथा इसके साथ-साथ आन्तरिक एव वाह्य सम्बन्ध मधुर बनते हैं। विकासशील देशो मे बहुराष्ट्रीय निगमो की भूमिका को प्रभावशाली बनाने मे कतिपय घटको का महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव मे बहुराष्ट्रीय निगम यह अनुभव करते हैं कि उनकी विश्वव्यापी गतिविधियो का प्रसार करने में वर्तमान परिवेश प्रोत्साहक हैं। अपनी अर्थव्यवस्थाओ पर वर्चस्व रखने वाले चीन और रूस जैसे देश भी सवृद्धि और विकास सम्बन्धी अभिवृत्तियो में परिवर्तन के कारण बहुराष्ट्रीय निगमों में रूचि दर्शा रहे हैं।

8. रोजगार परक :

भारत एक विकासशील देश है और यह विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसख्या वाला राष्ट्र है। यहॉ श्रम की प्रचुरता है, फिर भी कुशल श्रमिकों की सख्या अपेक्षाकृत कम है। बडे पैमाने पर बेरोजगारी यहॉ देखी जा सकती है, सस्ते श्रम की उपलब्धि आज भी भारत में बनी हुई है। अत यदि बहुराष्ट्रीय निगम इस सस्ते श्रम का उपयोग कर अधिकतम लाभ कमाने की दृष्टि से भी भारतीय श्रमिको को रोजगार प्रदान कर सकते हैं तो उससे उनके आय मे वृद्धि तो होगी ही साथ ही प्रति व्यक्ति आय और रोजगार के अवसरो मे भी वृद्धि होगी। यदि बहुराष्ट्रीय निगम श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग कर उत्पादन करता है तो रोजगार की दृष्टि से इसे वाछित माना जा सकता है।

बहुराष्ट्रीय कपनियो ने अपने देशों और विदेशो में लगभग 73 मिलियन लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार प्रदान किया है, जिनमें सम्पूर्ण विश्व के गैर-कृषि कार्यकलापों के लगभग 10 प्रतिशत रोजगार निहित है।यदि केवल विकसित देशों की गणना की जाय तो इसका परिणाम लगभग 20 प्रतिशत होता है। विश्व का लगभग एक-तिहाई उत्पाद बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। भारत में भी

इस प्रकार की अनेक कम्पनियॉ है जैसे पाण्ड्स, वारेन टी, सीबा, कोलगेट-पामोलिव, हिन्दुस्तान लीवर, ग्लैक्सो, गुडलक नैरोलेक पेण्ट्स, पेप्सी कोला इत्यादि।

सर्वे के अनुसार बहुराष्ट्रीय निगमों को रोजगार के अवसर सृजित करने में सफलता प्राप्त हुई है। इनमे 1990 से 1995 की अवधि के दौरान 3 84 प्रतिशत रोजगार वृद्धि हुई। इसके साथ ही अप्रत्यक्ष रोजगार मे लगभग 9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। अतर्वर्ती वस्तु उद्योग (3 01 प्रतिशत) उपभोक्ता अस्थाई उद्योग (8 20 प्रतिशत) और सेवा उद्योग (3 21 प्रतिशत) मे कुल रोजगार मे उच्च सवृद्धि दर दर्शाई गई। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओ के उद्योग मे 0 8 प्रतिशत की दर से कम रोजगार वृद्धि हुई, किन्तु बढते हुए मध्यम वर्ग की क्रय शक्ति मे वृद्धि होने के साथ ही इसमें सुधार होने की आशा है।

सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो के रोजगार में 1990-1995 की अवधि मे 0 89 प्रतिशत की कमी आई। निजी क्षेत्र के रोजगार में सभी उद्योगो की तुलना मे 2 89 प्रतिशत की दर से औसत से अत्यधिक उच्च सवृद्धि हुई।[11]

वर्तमान मे विकासशील देश असहाय स्थिति मे नहीं है। पिछले कुछ समय में इन देशो ने बहुराष्ट्रीय निगमो से समझौता करने मे पर्याप्त विशेषज्ञता हासिल कर ली है। वास्तव मे बहुराष्ट्रीय निगमो और पोषक देशों के बीच मौजूद भ्रान्तियॉ और मतभेद अब धीरे-धीरे प्रारम्भिक सहयोग स्थापित कर रहे हैं।

तालिका 4.3

रोजगार में वृद्धि

वर्ष	कुल रोजगार मिलियन मे	कुल रोजगार में प्रतिशत वार्षिक वृद्धि	अतिरिक्त रोजगार सृजन मिलियन मे
1977-78	239 80	-	-
1987-88	290 90	2 00	51 10
1989-90	292 89	-	2 00
1990-91	298 73	1 99	5 84
1991-92	301 73	1 00	3 00
1992-93	308 31	2 18	6.58

11 योजना सूचना और प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अक 8, नवम्बर 1996 पृष्ठ सख्या- 15

1993-94	313 33	1 63	5 02
1994-95	320 51	2 29	7 18

SOURCE *Eighth five year Plan Vol 2And Economic Survey 1995-96 P S 50*

अन्य लाभ :

1 बहुराष्ट्रीय निगमे आर्थिक रूप से बहुत शक्तिशाली होते हैं।

2 इनके पास व्यापार करने का अनुभव प्राप्त होता।

3 अपने पूँजी निवेश के समय ये कम्पनियॉ बहुत जोखिम उठाती है, क्योकि जहॉ ये निवेश करती हैं वहॉ बिजली, परिवहन, श्रमिको तथा विपणन की समस्याओं से गुजरना पडता है।

4 बहुराष्ट्रीय निगमे देश-विदेश में नये-नये सस्थानों की स्थापना करते हैं तथा अपने उत्कृष्ट प्रबन्धन तथा शिक्षण का पूरा-पूरा लाभ उठाने में सफल होते हैं।

5 बहुराष्ट्रीय निगमें अपने उत्कृष्ट प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण अपनी अन्य कम्पनियों में करते हैं तथा खोज और अनुसधान पर जो खर्च किया जाता है उससे नये-नये उत्पादों का आविष्कार होता है, इससे लोगों का जीवन स्तर सुधारने मे सहायता मिलती है।

6 बहुराष्ट्रीय निगमो का सर्वत्र स्वागत किया जाता है, क्योंकि ये निगम पूँजी निर्माण तथा रोजगार में वृद्धि करते है।

7 बहुराष्ट्रीय निगमों के आगमन से हर क्षेत्र मे विकास सम्भव हो पाता है चाहे वह पूँजी, तकनीकी, अनुसधान, क्षेत्रीय विकास व रोजगार का क्षेत्र हो सकता है।

8 बहुराष्ट्रीय निगमो के द्वारा दो या अधिक देशो के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होता है। उसमे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव एव सहयोग स्थापित होता है, जिससे आधुनिकतम टेक्लोनाजी, वैज्ञानिकीकरण, भुगतान सतुलन, विनिमय दर, रूपये की पूर्ण परिवर्ततीयता, श्रम शक्ति का उपयोग, मुद्रास्फीति नियत्रण, पूँजी सहयोग तथा इसके साथ-साथ आन्तारिक एव वाहय सम्बन्ध मधुर बनता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ एक समूह के देशों द्वारा उत्पदित कच्चे माल को, दूसरे समूह के देशो की श्रमशक्ति एव सयत्र सुबिधाओं की सहायता से रूपान्तरित करके, वस्तुओ का विनिर्याण करके और इन वस्तुओं को बाजार में बेचकर उत्पादन के अतर्राष्ट्रीयकरण में योगदान करती हैं। निस्न्तर सम्प्रेषण, त्वरित परिवहन, कम्प्यूटर, आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीकें आदि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ससाधनो के विदोहन में सहायता करती रही हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों ने नये उद्योगों को प्रौद्योगिकी प्रबन्धकीय कौशल तथा पूँजी प्रदान करके अन्य कई मामलों में उनके व्यवसाय सचालन हेतु परिवहन सहित समूची सामाजिक-आधारिक सुविधा

सृजित करके नवोन्मेषी और उत्प्रेरक भूमिका निभाई है। इन निगमो के विश्वव्यापी विपणन सगठन होते है जो विकासशील देशो के निर्यातो मे सुविधा प्रदान करते है और इस प्रकार एक परम्परागत क्रम उत्पादक क्षेत्र को उच्च उत्पादक निर्यात क्षेत्र में रूपान्तरित करने की प्रक्रिया में सहायता पहुँचाते हैं।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश विपणन वित्तीय एव तकनीकी सेवाओं से सम्बन्धित कौशल लाता है। सयुक्त उद्यमो के माध्यम से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश स्थानीय प्रबधको को प्रशिक्षित करने मे सहायता करता है और व्युत्पादगत प्रभावो के माध्यम से रोजगार के अवसरो में वृद्धि करता है।

वर्तमान मे विकासशील देश असहाय स्थिति मे नहीं है। पिछले कुछ समय मे इन देशो ने बहुराष्ट्रीय निगमों से समझौता करने में पर्याप्त विशेषज्ञता हासिल कर ली है। वास्तव मे बहुराष्ट्रीय निगमो और पोषक देशो के बीच मौजूद भ्रान्तिया और मतभेद अब धीरे-धीरे प्रारम्भिक सहयोग स्थापित कर रहे हैं। यहीं कारण है कि नवोन्मेषी सविदात्मक किस्म की श्रृखलाओं ने लागतो और लाभो के अधिक वितरण का मार्ग प्रशस्त किया है।

पहले हमारा व्यापार अपने देश के ही अन्तर्गत सम्पन्न होता था, किन्तु धीरे-धीरे हमारा सम्बन्ध जिन दूसरे देशों से मित्रतापूर्ण बनता गया यह द्विपक्षीय व्यापार का रूप धारण करने लगा। इस प्रकार हमे गैट, विश्व व्यापार सगठन (डब्लू टी ओ) मे सदस्यता बनाये रखने के लिए और विदेशो मे अपने निर्यात को बढाने तथा आवश्यक वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए बहुपक्षीय व्यापार की आवश्यकता महसूस हुई।[12] इसलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को अपनाना हमारी मजबूरी या सहयोग कहिए, किन्तु आज इसकी आवश्यकता महत्वपूर्ण है। बिना इसके विदेशो में अपना बाजार स्थापित नहीं कर सकते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमो के दोष ·

1 अमेरिका आधारित बहुत से निगम कई देशों में अपना पूर्ण स्वामित्व स्थापित कर चुके हैं। उदाहरण स्वरूप सिगापुर, मैक्सिको, ब्राजील तथा ताइवान। इन देशों में आयकर दरें कम होने के कारण अमेरिकी निगमो को अत्यधिक लाभ मिल रहा है।

2 भारत जैसे देश में साठ के दशक में बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ 25 से 40 प्रतिशत का भागीदार बन सकती थीं। उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे, जिससे वे अत्यधिक लाभान्वित हो सकती थीं।

3 बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपने सभी कर्मचारियों को वेतन के रूप मे अच्छी राशि प्रदान करती हैं,

---

12 सिघई, डॉ जी सी अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र 1992, पृष्ठ सख्या- 398

जिससे समाज में न केवल असमानता व्याप्त होती है, बल्कि असतोष भी फैलता है।

4 बहुराष्ट्रीय निगमें अपनी कम्पनियॉ बडे-बडे शहरो मे स्थापित करते हैं, जहॉ पर हर प्रकार की सुविधाए उपलब्ध रहती हैं, जिससे क्षेत्रीय असमानता मे वृद्धि होती है।

5 बहुराष्ट्रीय निगमे आम राजनीति तथा अपना मतलब साधने हेतु विधायकों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घूस भी देती हैं जिससे भ्रष्टाचार में वृद्धि होती है। ये निगमें विशेष वर्ग के लोगो को लुभावने देते है तथा नौकरी प्राप्त करने वाले लोग आमतौर पर स्थानीय विधायकों के सम्बन्धी होते हैं।

6 बहुराष्ट्रीय निगमें एकाधिकार और केन्द्रीकरण की स्थापना करने मे सफल हो जाते हैं, जिससे लाभ का अत्याधिक हिस्सा उन्हीं के हॉथों मे चला जाता है।

7 बहुराष्ट्रीय निगमे अपनी वस्तुओं की माग बढाने या एकाधिकार स्थापित करने के लिए व्यवसाय प्रारम्भ करने के समय अपनी वस्तुओ को लागत से कम मूल्य पर भी बेंच देती हैं, जिससेघरेलू वस्तुओं की बाजार मे माग कम हो जाती है तथा वे विदेशी वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा से व्यवसाय से बाहर हो जाती है, जिसके कारण घरेलू उद्योग नष्ट होने की स्थिति में आ जाते हैं। फिर यही बहुराष्ट्रीय निगमे कुछ वर्षों के पश्चात् अत्यधिक लाभ कमाने मे सफल हो जाते है।

बहुराष्ट्रीय निगम आकर्षणात्मक विज्ञापनो के माध्यम से प्रदर्शन उपभोग और फालतू खर्च को बढावा देते है। गरीब देशों की उत्पादन शैली गरीब वर्गों की प्रतिकूल स्थिति के लिए अत्यधिक असहज बन जाती है। इन निगमों द्वारा उच्च मध्यम एव समृद्ध वर्गों की आवश्यकताओ की सृष्टि की जा रही है। इस प्रकार के प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग का केन्द्र भारतीय अर्थव्यवस्था के 18 करोड उपभोक्ता हैं।[13] इस दृष्टि से एक नयी उपभोक्ता सस्कृति पनप रही है, जिसमे कोला, जैम आइसक्रीम, तैयार खाद्यो और चिर स्थायी उपभोग वस्तुओं के उत्पादन पर बल दिया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मजदूरी-वस्तु क्षेत्र की सर्वथा उपेक्षा की जा रही है। ऐसे उत्पादनो द्वारा जन कल्याण के लाभ की अपेक्षा उच्च वर्गों की तुच्छ आवश्यकताओ की ही सतुष्टि की जा रही है। बहुराष्ट्रीय निगमों का आलू चिप्स, बेकरी उत्पादन, तैयार खाद्य पदार्थों आदि में प्रवेश लघुस्तरीय उद्योगो में कार्यरत श्रमिकों के विस्थापन का कारण बन गया है क्योंकि ये छोटी इकाइयाँ बहुराष्ट्रीय निगमों के विरूद्ध प्रतियोगिता में नहीं टिक सकतीं और सिवाय बन्द करने के इनके पास कोई उपाय नहीं रह जाता। अत उत्पादन एव

---

13 योजना सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय (भारत सरकार), अक 8, नवम्बर 1996, पृष्ठ सख्या-16

रोजगार दोनो की दृष्टि से बहुराष्ट्रीय निगमो के नरम क्षेत्रों मे अप्रतिबन्धित प्रवेश के परिणाम भयानक ही है।

बहुराष्ट्रीय निगम यह चाहते है कि विश्व उन पर और उनके उत्पादों पर निर्भर रहे। उनके कार्यकलापो से यदि पोषक देश दुर्बल बनते हैं तो इससे उन्हे कोई सरोकार नहीं है। प्राय यह देखा गया है कि लोगों और देशो को बीमार और निष्क्रिय बनाये रखने की स्थिति उनके लिए अत्यधिक लाभजनक है। लाभों में अभिवृद्धि करना ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रमुख उद्देश्य है। भारत एव तीसरे विश्व के अन्य देशों मे बिक्रय किए जाने वाले रसायनो एव ड्रगों में से 80 प्रतिशत स्वय उनके अपने देश मे ही प्रतिबन्धित है,फिर भी प्रतिबन्धित 145 पेस्टिसाइड्स मे से 103 (अथवा 71 प्रतिशत) के उत्पादन में वृद्धि हुई है।[14]

भारत मे बहुराष्ट्रीय निगम कुछ सीमित क्षेत्रो (सुगन्धि, सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुए एव साबुन, औषधियो एव मोटर गाडियो एव अन्य उपभोक्ता वस्तुओं, जिसमे लाभ की सम्भावना अधिक रहती है में ही प्रवेश करना चाहते हैं और यदि इनमे प्रवेश की इजाजत न दी जाए तो ये आना नहीं चाहते। यही कारण है कि पश्चिम के उद्योगपति भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र के साथ सहयोग करने के लिए विशेष रूप से अनिच्छुक रहते हैं भारत में 1997 से उदारीकारण की नीति लागू होने से ये निगम सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रवेश (महाराष्ट्र का एनरान विद्युत परियोजना) तो कर रहे हैं, लेकिन उनका मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं का हित न होकर लाभ को अधिकतम करना ही है। यही कारण है कि देश के इन निगमो के क्रियाकलाप हमेशा सदिग्ध बने रहते हैं। इसी प्रकार विदेशी तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता का स्थानीय पहल पर बुरा प्रभाव पडता है। यह बात उन क्षेत्रो मे विशेष रूप से लागू होती है जिनमे देशी सामर्थ्य पूर्णतया विकसित है। इसकी स्वाभाविक परिणाम तकनीक का अनावश्यक दोहराव है।

कभी-कभी प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण श्रृखला से जुडा होता है। किसी देश को उसी देश से मध्यवर्ती एव पूँजीगत वस्तुए खरीदनी पडती है, जिससे उनसे जानकारी खरीदी थी। ऐसी स्थिति में सामान्य कीमत से अधिक मूल्य लेकर मूल निगम पहले से ही दोहनशील स्थिति का पूरा फायदा उठाते हैं, जिससे पोषक देश की सहायक कम्पनी को विशेषीकृत विनिर्माण प्रक्रिया प्रयुक्त करने के लिए बहुधा अतिशय मूल्य चुकाना पडता है। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी की जटिल प्रकृति के कारण इसके आगे के कार्यान्वयन एव भविष्य में इसे अपनाने एव इसकी विकास सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के लिए पोषक देश इनके पैतृक देशों पर निर्भर हो जाते हैं। इसका अनुसधान एव विकास

---

14 योजना सूचना एव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अक 8, नवम्बर 1996, पृष्ठ सख्या-16

विकसित देशों से ही प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार स्थानीय वैज्ञानिक एव तकनीशियन विकसित देशो मे पहुॅच जाते है। जिसके परिणामस्वरूप भारत जैसे विकासशील देशो से प्रतिभाओ का पलायन होता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की विभिन्न अनुषगिया (सहायक कम्पनियो) आपस मे गहराई से जुडी होती है। इस प्रकार वे विश्वव्यापी लाभ में अभिवृद्धि करने हेतु व्यापार मे आसानी से जोड-तोड कर सकती है। वे यह कार्य अतरण मूल्याकन (कम बीजाकन और अधि बीजाकन) के द्वारा करती हैं। अतरण मूल्याकन के परिणामस्वरूप भुगतान सतुलन की समस्या उत्पन्न होती है। निर्यातों का जितनी कम मात्रा मे मूल्याकन किया जाता है उतनी ही विदेशी मुद्रा भडार में उनकी कमी होती है। दूसरी तरफ आयातों को कृतिम रूप से मॅहगा बनाने पर वे बडे पैमाने पर विदेशी मुद्रा भडार को रिक्त कर देते हैं। इसके अतिरिक्त जिन देशो मे कर का बोझ कम होता है, वहॉ बहुराष्ट्रीय निगम अपनी अनुषगियो के लाभों मे वृद्धि दर्शा देते हैं और जहॉ पर कर का बोझ अधिक होता है वहॉ अपने लाभों को सीमित करके दर्शाते हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपने विनियोग की प्रारम्भिक अवस्था में लाभ बाहर कम भेजती हैं। वे लाभ का बहुत बडा भाग अपने पास रखकर अपना तीव्र विस्तार करती हैं। ऐसी स्थिति मे अतर्राष्ट्रीयकरण का प्रभाव सकारात्मक होता है। एक समय ऐसा आता है कि विदेशी कम्पनियॉ पर्याप्त निवेश कर चुकी होती हैं अब वे अपने धन का निवेश भारत में निवेश न करके बाहर भेजना प्रारम्भ कर देती है। तब नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगता है और देश मे अवनति का दौर चालू हो जाता है। इस प्रक्रिया का प्रत्यक्ष प्रमाण 60 से 80 के दशक में दक्षिणी अमेरिका (मैक्सिको) रहा है।[15]

भारत मे भी एसो और कालटेक्स ऐसी ही कम्पनियॉ हैं। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ यदि किसी नवीन वस्तु का उत्पाद या निर्माण करती है और वह वस्तु अभी किसी भी देश मे उपलब्ध नहीं है तो उस वस्तु की कीमत इतनी अधिक वसूली जाती है जो कि लागत का कई गुना अधिक होता है। उदाहरणस्वरूप अभी हाल मे 'फाइजर जैसी बहुराष्ट्रीय विशाल कमपनी ने 'विएगरा' नामक औषधि की खोज की। ऐसी दवा जिसे अमरीकी सरकार स्वीकृत प्राप्त है और केवल अमरीका मे ही 400 रूपये प्रति गोली बताया गया। वैसे भारत की कई दवा कपनियो ने इस बात का दावा किया है कि उन्होने 'विएगरा' जैसी या उससे अच्छी दवाई तैयार कर ली है, परन्तु मानव युगलों के ऊपर सामाजिक कुठाओं के कारण इस पर अधिकारिक व्यापक प्रयोग न हो सकने की दशा में इसको

---

15 योजना सूचना एंव प्रसारण मत्रालय (भारत सरकार), अक 8 नवम्बर 1996, पृष्ठ सख्या-16

व्यापारिक विक्रय की सतुष्टि देना सम्भव नहीं है। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपने इच्छानुसार वस्तु की मूल्य वसूल करती हैं, जिसका एक मात्र उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है और अपने देश को अत्यधिक लाभ का हिस्सा भेजने के उद्देश्य से कार्य करते हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा विज्ञापन के रूप मे राष्ट्र प्रेम के सदेश का दुरूपयोग :

उदारीकरण के बाद जब से भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व से एकीकृत करने के लिए आर्थिक सुधारो की प्रक्रिया शुरू की गयी, बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के लिए यहा के विशाल उपभोक्ता बाजार में आकर्षक काफी बढ गया। बाजार के अधिकाधिक हिस्से पर अपना कब्जा जमाने के लिए कम्पनियों में एक आक्रामक होड छिड गयी और विज्ञापन जो पहले मात्र उत्पादों की विशेषताओं को बताने का एक माध्यम था, अब कम्पनियों की विपणन नीति का प्रमुख उपक्रम बन गया। भारतीय बाजार पर अपनी पकड बनाने के लक्ष्य की पूर्ति के लिए कम्पनियॉ भारतीय उपभोक्ताओ को लुभाने में कोई कसर नहीं छोड रही। विज्ञापनों की इस नयी दुनिया का मूलमत्र यह है कि उपभोक्ताओं को लुभाने के लिए मानव सभ्यता के श्रेष्ठतम तत्वों का बाजार के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

इनमे सबसे पहले राष्ट्र प्रेम को ही लिया जा सकता है। भारत की आजादी की पचासवीं साल गिरह के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अचानक उमडा भारत-प्रेम इस बात का सबसे बडा प्रभाव है। स्वतन्त्रता की जयन्ती के अवसर पर देश भक्ति के रग में रगे विज्ञापनों की बाढ सी आ गयी और देशी कम्पनियों ने भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अनुसरण किया। इस तरह उपभोक्ता सामग्री को राष्ट्रभक्ति के साथ जोड कर देखने की नयी परम्परा की शुरूआत हुई। अभी हाल ही मे परमाणु परीक्षण के बाद बधाई सदेश के विज्ञापन देने वालों में केवल भारतीय ही नहीं, बल्कि कुछ विदेशी कम्पनियॉ भी शामिल थी। इतना ही नहीं पिछले साल अगस्त माह जो स्वतत्रता दिवस के रूम मे जाना जाता है और तिरगे जो राष्ट्रीय प्रतीक के रूप मे अकित हैं, सारे होर्डिंग और पोस्टरो पर विज्ञापन के रूप मे इसका इस्तेमाल किया गया।

कुछ महीने पहले समाचार पत्रों में एक बीडी का विज्ञापन आया था, जिसे लेकर काफी हगामा हुआ। इस विज्ञापन में राष्ट्रीय झडे और गॉधी जी के चित्र का इस्तेमाल किया गया था। मच्छर भगाने वाला उपकरण बनाने वाली एक प्रसिद्ध कम्पनी ने राष्ट्रगान को भी नही बख्शा। कुछ दिनों पहले दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर समाचार के पहले राष्ट्रगान की धुन बजायी जाती है और उसके बाद उस उपकरण का विज्ञापन आता था। आजादी की पचीसवीं सालगिरह के अवसर पर पेप्सी को

विज्ञापन के माध्यम से पूरी तरह 'आफिशियल ड्रिंक' के रूप मे स्थापित कर दिया गया। इस तरह के लोगो मे राष्ट्र गौरव की कृत्रिम भावना उकसा कर अपना माल बेचने वाले ऐसे विज्ञापनो की लम्बी फेहरिश्त है।

सैमसग टेलीविजन सेट बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने बिल्कुल अलग ढग से भारतीय उपभोक्ताओं की दुखती रग को छेडा है। इस विज्ञापन मे यह कहा जाता है कि उनकी कम्पनी का कुल टर्न ओवर बगलादेश के जी डी पी के बराबर और पाकिस्तान के आधा है। यहा यह बात गौरतलब है कि कोई कम्पनी अपने उत्पाद की खूबिया गिनाने की बजाए अपनी आर्थिक हैसियत की तुलना भारत के दो पडोसी देशों से करके आखिर क्या जताना चाहती है? इस तरह के विज्ञापनों का मूल सदेश यही होता है कि 'यदि तुम अमुक ब्राड का सामान इस्तेमाल करते हो, तभी तुम देशभक्त हो अन्यथा नहीं।' जहाँ देशप्रेम की बात हो वहाँ आम आदमी बहुत आसानी से भावुक हो उठता है और जहाँ भावनात्मक मुद्दा हो वहाँ व्यक्ति तर्क करना पसन्द नहीं करता और उपभोक्ताओं की इसी कमजोरी का फायदा उठाते हुए तमाम देशी विदेशी कम्पनियॉ उपभोक्ताओं का भावनात्मक शोषण कर रही है। एक भारतीय कम्पनी द्वारा निर्मित शराब के एक विज्ञापन में कुछ विदेशी भारतीय शराब के उस खास ब्राण्ड के बारे मे पूछते हैं और जबाब मे एक हिन्दुस्तानी हॉथो मे ग्लास उठाकर ये देश है वीर जवानो का' गाता हुआ झूम उठता है। देश शब्द राष्ट्रीय भावना का ज्वार तो उठाता ही है, साथ ही इससे एक प्रकार की सामूहिकता का बोध होता है और विज्ञापन के माध्यम से सदेश यह जाता है कि देश के जवानों का सामूहिक रूप से इस शराब का सेवन करना चाहिए। विज्ञापनो में व्यावसायिक हितों की पूर्ति के लिए कैवल राष्ट्रीय प्रतीकों का नहीं, बल्कि लोगों की धार्मिक भावनाओ से जुडे प्रतीकों का भी इस्तेमाल बढता जा रहा है। उदाहरण के लिए मिनरल वाटर शुद्ध गगाजल से बना है, इसलिए यह सेहत के लिए सबसे अच्छा है। इसी तरह एक और कम्पनी यह दावा करती है कि उसका साबुन इसलिए ज्यादा अच्छा है, क्योकि वह गगाजल से बना है। इस तरह गगाजल के प्रति आम आदमी के मन मे जो आस्था है, उसे साबुन बनाने वाली कम्पनी मजे से भुना रही है। जबकि यह सब जानते है कि यदि यह मान भी लिया जाए कि उनका साबुन गगाजल से बना है, तो इससे साबुन की गुणवत्ता पर कोई असर नहीं पडता है। कई बार टी वी पर कुछ ऐसे भी विज्ञापन आते है, जिनमें भारतीय सस्कृति और परम्परा की श्रेष्ठता का एहसास दिलाते हुए उपभोक्ता को वस्तु खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जींस बनाने वाली एक अमरीकी कम्पनी के विज्ञापन मे विदेशी कम्पनी का जींस पहने भारतीय नवजवान एक गोरी चमडी वाले को फटकारती है कि 'बुजुर्गों का आदर करना सीखो।' इस तरह एक विदेशी को फटकारने से आम भारतीय को जो आत्मसतुष्टि मिलती है, उससे उपजी श्रेष्ठता की भावना को भुलाकर अमरीकी कम्पनी भारतीय उपभोक्ता को अपना उत्पाद खरीदने

के लिए प्रेरित करती है।

उपभोक्ता को उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का एहसास कराना भी इन कम्पनियो के बाजार निर्माण की प्रक्रिया का ही एक हिस्सा है। यही वजह है कि आज के विज्ञापनो मे भी काफी खुलापन आया है। कल तक कडोम और सैनिटरी नैपकिन जैसी वस्तुओं के विज्ञापन बेहद नपे तुले शब्दो के साथ शालीन अदाज मे देखने को मिलते थे, लेकिन आज ऐसी वस्तुओ का विज्ञापन भी साबुन व शैम्पू जैसी सौन्दर्य प्रसाधन व रोजमर्रा काम आने वाली उपभोक्ता-सामग्रियो की तरह किया जाता है।

इस तरह बहुराष्ट्रीय और राष्ट्रीय कम्पनियॉ उपभोक्ताओं की कमजोर नसो को ढूँढना और पकडना बाखूबी जानती है। बाजार में छा जाने की लालसा रखने वाली ये विदेशी कम्पनियॉ कोई भी तरीका अपनाने से बाज नहीं आतीं। आजकल ये कम्पनियॉ च्यूँगम और चिप्स के साथ टैटू (शरीर पर चिपकाया जाने वाले स्टीकर) मुफ्त देने का पैकेज चला रही है। पानी गीला करके चिपकाये जाने वाले ये टैटू त्वचा के लिए भले ही नुकसानदेह हों, लेकिन बच्चों के बीच ये टैटू इतने लोकप्रिय हैं कि बच्चे अब सिर्फ वही च्यूँगम और चिप्स खरीदते है, जिसके साथ ये स्टीकर मुफ्त मिलते हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि न तो देशभक्ति की बात करने मे कोई बुराई है और न ही सक्षम व स्वस्थ ढग से विज्ञापन प्रस्तुत करने मे। महत्वपूर्ण है तो यह कि बच्चों,किशोरो व युवाओ की मानसिकता पर ये विज्ञापन प्रतिकूल रूप से प्रभाव डाल रहे हैं और उनकी उम्रगत कोमल भावनाओं के साथ खिलवाड कर रहे हैं। विज्ञापन एक पूरी की पूरी पीढी के चिन्तन का प्रमुख स्रोत बन रहे हैं और इस प्रवृत्ति के दुष्परिणाम अभी भले ही न दिखायी दे रहे हों, लेकिन भविष्य के भारतीय नागरिक का निर्माण इन्हीं प्रवृत्तियों से हो रहा है। बहुराष्ट्रीय निगमो की सबसे प्रमुख दोष यह है कि ये उपभोक्ता हितों के लिए हानिकारक हैं, क्योंकि एक ओर तो मूल्य अधिक लेते हैं व दूसरी ओर वस्तु के गुणों में वे गुण नहीं होते हैं, जो ये विज्ञापन मे देते हैं। इनके द्वारा वस्तु विभेद भी किया जाता है। यह निगम अपनी तकनीक के देने के बदले मे जो फीस, रॉयल्टी, मुआवजा व व्यय लेते है, वे काफी अधिक होते हैं। साथ ही इन रकमो को भारत से बाहर भेजने से विदेशी मुद्रा कोष पर बुरा प्रभाव पडता है। यह निगम विभिन्न देशो मे फैले रहते हैं। अत इनका लेन-देन भी विभिन्न देशों में फैला रहता है। ये विभिन्न तरीकों से दुर्लभ मुद्रा को लाभप्रद स्थानो पर एकत्रित करते जाते है, जिससे कभी-कभी इन देशों में मुद्रा सकट उत्पन्न हो जाता है।

यह निगम अपनी तकनीक अपनाते हैं, यह उस देश की आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखते हैं, जिस देश में यह उद्योग स्थापित करते हैं। इससे वे देश स्वय अपनी तकनीक का विकास नहीं कर पाते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओ को बढावा देते हैं। ये किसी खास क्षेत्र मे ही

उद्योग के बाद, उद्योग स्थापित करते चले जाते हैं जिससे उस क्षेत्र में तो विकास हो जाता है, जबकि शेष क्षेत्र वैसे ही बने रहते हैं। इस प्रकार उन देशों मे क्षेत्रीय असमानता बढती है। ये निगम देश के दीर्घकालीन औद्योगिक विकास के हित के विरूद्ध हैं। इन निगमों के आगे देशी उद्योगपति ऐसा ही उद्योग स्थापित करने का साहस नहीं कर पाते हैं, क्योकि वे इनसे प्रतियोगिता करने मे डरते हैं। ये निगम व्यवसाय मे नैतिकता का कम ध्यान रखते हैं। यह अन्तरण मूल्य नीति अपनाते हैं, कपटपूर्ण व्यवहार करते हैं, मेजवान देशो मे कार्य करने के लिए घूस देते हैं तथा उनकी राजनीति मे हस्तक्षेप करते हैं।

प्रभाव :

बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ सरकार की रोजगार वहन क्षमता, मुद्रा आपूर्ति को हर जगह विनियमित करने, कर आधार का अपक्षरण रोंकने और इस प्रकार अपने अधिकाश नागरिकों की आवश्यक सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की सरकारी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। जहॉ एक ओर बहुराष्ट्रीय निगमो के बहुत से गुण हैं, वहीं दूसरी ओर इनके अवगुण भी है। इन निगमो से लाभ उठाने के लिए इनके गुणो एव अवगुणों के बीच सन्तुलन स्थापित करना होगा। बहुराष्ट्रीय निगम विश्व की न्यूनतम 60 प्रतिशत जनसख्या के तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रो पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं

1. उत्पादकों एव उपभोक्ताओं के प्रति कम निष्ठावान :

चूँकि बहुराष्ट्रीय निगम बहुत से देशों में फैले हुए हैं, इसलिए इनकी निष्ठा उत्पादकों तथा उपभोक्ताओ के प्रति सदिग्ध होती है। इसके अलावा इनका स्वरूप अल्पाधिकारी का होता है। अत यह अपनी शक्ति का प्रयोग करके सभावित या वास्तविक प्रतियोगिता को समाप्त करते हैं। अपनी इच्छाओं को उत्पादकों एव उपभोक्ताओं पर लादने की अनेक तरकीबों का यह प्रयोग करते हैं। यह शेयर बाजार में हेरा-फेरी करते हैं और धोखे भरे विज्ञापन से वस्तु-विभेद करते हैं। अमरीका के बहुराष्ट्रीय निगमों के एक अध्ययन से इस प्रकार के निष्कर्ष निकाले गए हैं कि इनके कारण उपभोक्ताओं को ऊँची कीमत देनी पडती है, किसानों की आय घटती है और वस्तुओं के गुणों में गिरावट आती है, जबकि इनके परिणामस्वरूप निगमों के लाभ में भारी वृद्धि आती है।

2. कीमत निर्धारण प्रक्रिया की बुराइयां :

बहुराष्ट्रीय निगमों ने बहुधा, कीमत निर्धारण में अनेक ऐसी पद्धतियों को अपनाया है, जिससे वे अपना लाभ अधिकतम कर सकें। जैसे-विभिन्न फर्मों के बीच बाजार का बॅटवारा, बाजार में हेरा-फेरी,

वस्तु विभेद आदि। इन निगमों द्वारा अपनी वस्तुओ व सेवाओं का मूल्य इस प्रकार निर्धारित किया जाता है कि निगम द्वारा नियन्त्रित सभी फर्मों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। बहुराष्ट्रीय निगमों पर दोषारोपण के लिए ऐसा कहा जाता है कि यह निगम ऐसे देशो मे जहॉ करो की दर नीची है। वहॉ अपने से सम्बन्धित कम्पनियो को ऊँची कीमतो पर माल बेचते हैं और ऊँचे कर वाले देशों मे स्थित सम्बन्धित कम्पनियो से नीची कीमतों पर माल खरीदते हैं। इस नीति द्वारा वे टैक्स से बचते हैं और दोनो प्रकार की कम्पनियों के सामूहिक लाभो को बढाते हैं। कभी-कभी तो यह निगम नीची कर दर वाले देशो मे नकली या दिखावटी व्यापारी कम्पनियों की स्थापना करते हैं और अपने सम्पूर्ण लाभ को अधिकतम करने के लिए नकली फर्मों के माध्यम से लेन-देन में हेरा-फेरी करते हैं। इसके अलावा, मूल निगम सम्बन्धित कम्पनियो के लाभ का एक बडा भाग रॉयल्टी, तकनीकी फीस, प्रबन्ध सेवा शुल्क आदि के रूप मे चूस लेते हैं। इनसे सम्बद्ध कम्पनियो का लाभ घट जाता है। इस तरह जिन देशों मे ऐसी कम्पनियॉ कार्य करती हैं, उन्हे भारी कीमत चुकानी पडती है।

3. मुद्रा के सम्बन्ध में हेरा–फेरी :

बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा वित्त प्राप्त करने और अपने हित में उसका प्रयोग करने में, अन्य वर्गों पर इसके कुपरिणाम की परवाह किए बिना हेरा-फेरी की जाती है। वह कम हानिकारक नहीं है, चूँकि बहुराष्ट्रीय निगम विभिन्न देशों मे फैले हाते हैं, इसलिए इसका लेन-देन विभिन्न देशों की मुद्राओं में होता है। यह निगम दुर्लभ मुद्राओ को लाभप्रद स्थान पर सम्बद्ध कम्पनियो को निर्देश देते हैं कि ऋण एकत्रित करे और पुराने ऋणों का भुगतान समय से पहले करें। सक्षेप में, उनकी नीति दुर्लभ मुद्रा के रूप मे सम्पत्ति अर्जित करने और सुलभ मुद्रा के रूप में ऋण एकत्रित करने की होती है। इस प्रकार यह मुद्रा सकट की स्थिति को और अधिक गम्भीर बनाते हैं, यद्यपि यह गतिविधियॉ इन निगमों की विशेष क्रिया के बाहर होती है फिर भी यह ऐसा अपने लाभ को बढाने के लिए करते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमो के इस व्यवहार से अल्पविकसित देशो को हानि होती है, क्योकि इन देशो की मुद्राए और भी निर्बल होती जाती है। बहुराष्ट्रीय निगम विकास के ऐसे मॉडल और विश्व में ऐसी वितरण प्रणाली को बढावा दे रहे हैं, जो अमीरों और गरीबो के बीच की गहरी खाई की असमानताओं में और अधिक वृद्धि कर रही है। कुशलता की सकुचित, यह परिभाषा और विकास 'करो अथवा मरो' के दर्शन का आश्रय लेकर बहुराष्ट्रीय निगम ससाधनों का दुरूपयोग और गलत आवटन कर रहे हैं।

आर्थिक सुधार और उदारीकरण के सहारे काग्रेस की पूर्व नरसिहाराव सरकार ने जिस तरह अपना पॉच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया वह भले ही शुरू में ठीक लगा हो और उस दौरान स्वदेशी

विचार मच सरीखे इक्के-दुक्के सगठनो के प्रबल विरोध का जनमानस पर कोई दबाव भी नहीं बन सका हो किन्तु अब जैसे-जैसे इसके दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं उससे यह बात इस कदर साफ हो गयी है कि काग्रेस को भी अपने दृष्टिकोण मे बदलाव लाने को विवश होना पड रहा है। काग्रेस ससदीय दल की कार्यकारिणी की बैठक में मोर्चा सरकार को आर्थिक मोर्चे पर विफल होने के लिए कोसा जाना इतना महत्व नहीं रखता जितना कि आर्थिक सुधार व उदारीकरण की नीति पर नजरिया बदल लेना और बीमाउड्उयन जैसे अहम् क्षेत्रो में विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश पर ऐतराज कर देना महत्व रखता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के उन्मुक्त प्रवेश पर हालाकि कई विपक्षी दलो ने वर्ष 1991 मे भी विरोध किया था किन्तु उनकायह विरोध सीधा-सपाट, न होकर दोहरे दृष्टिकोण वाला प्रतीत हुआ और यही वजह थी कि तत्कालीन नरसिहाराव सरकार और उनके वित्त मत्री डा मनमोहन सिह ने ठीक वैसे ही 'उदारता की नीति'को आगे बढाने में कोई हिचक भी नहीं दिखायी।

जैसा कि देश के पहले प्रधानमत्री स्व जवाहरलाल नेहरू ने महात्मा गॉधी के कुटीर एव ग्रामोद्योग की अवधारणा को तहस-नहस कर दिया था। महात्मा गॉधी को विचारधारा को अपनाया गया होता तो नि सदेह आज भारत के गॉव इस तरह के पिछडे न होते और न ही लोगों का ऐसा पलायन ही होता कि शहर समस्याग्रस्त हो जाते यही नहीं बेरोजगारी की समस्या जिस तरह सुरक्षा जैसा मुँह फैलाये खडी है व स्थिति भी कदाचित न आती और ग्रामोत्थान से भारतीय अर्थव्यवस्था को ऐसे बडे-बडे बीमार कारखाने देखने को न मिलते।

जे वी रामकृष्ण के नेतृत्व में गठित विनिवेश आयोग' की हाल की रिपोर्ट यह बात स्पष्ट तौर पर कहती है कि 'आर्थिक सुधार' शुरू होने के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का घाटा बढकर दुगुना हो गया है। इस घाटे की रकम अब 4910 करोड रूपये पहुॅच चुकी है। इस रिपोर्ट के मुताविक वर्ष 1991 के दौरान घाटा उगलने वाली इकाइयो की सख्या 96 थी जो वर्ष 1995-96 मे बढकर 103 हो गयी। यही नहीं इनमें 47 इकाइयो की दशा तो इस कदर खराब हो गयी कि उन्हें 'अधिग्रहण' वाली श्रेणी में रखने के लिए बाध्य होना पड रहा है और अकेले उनका घाटा 980 करोड रूपये पहुॅच गया है।[16]

रिपोर्ट में एक उल्लेखनीय बात यह भी कही गयी है कि सार्वजनिक उपक्रमों की इस दुर्दशा के कारण कुछ समय पहले चलाये गये 'विनिवेर्श कार्यक्रम'को भी जबर्दस्त आघात लगा है और बम्बई शेयर बाजार मे इनके मूल्य जनवरी 95 से दिसम्बर 96 के दौरान 53 05 प्रतिशत की गिरावट आई।

---

16 दैनिक जागरण, 30 जनवरी 1997, पृष्ठ सख्या-06

यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि पूर्व वित्त मत्री डा मनमोहन सिह की लाख कोशिशो के बाद भी विनिवेश अभियान को अपेक्षित गति सिर्फ इस कारण नहीं मिल सकी, क्योकि सरकार में बैठे अधिकारी ही इस कार्यक्रम को सफल होता नहीं देखना चाहते थे।

आर्थिक सुधार व उदारता की नीति अपनाये जाने की सोंच निश्चित रूप से सही होती यदि इसकी सही सीमाए तय कर ली गयी होती और पश्चिमी चकाचौंध से प्रभावित हुए बगैर स्वदेशी उद्योगों के हितों को सर्वोपरि रखा जाता। प्रतिस्पर्धात्मक माहौल बनाना अलग बात है, लेकिन आकाश का धरती से मुकाबला करवाने की सोचना नि सदेह मूर्खता की बात है। यह अजीब बात है कि देश की कम्पनियों में लागत, गुणवत्ता व प्रौद्योगिकी की कसौटी के लिए उन कम्पनियो को चुना जिनके सामने अतर्राष्ट्रीय ख्याति की कम्पनियों जो ठहरने के लिए दस बार सोंचना पडता है। प्रतिस्पर्धा करानी ही थी तो निजी क्षेत्र में क्या कमी थी, क्या बुराई थी और फिर आजादी से पहले और इसके बाद जो उद्योग समूह आगे बढे हैं क्या वे एकाधिकारी प्रवृत्ति के सहारे आगे बढे हैं? यदि नहीं तो यह निश्चितरूप से जोखिम भरा नीति फैसला था।

आज औद्योगिक क्षेत्र की विकास दर घटकर 9 3 प्रतिशत से भी नीचे आ गई है और यदि हालात ऐसे रहे तो आने वाले समय में यह और नीचे जायेगी, क्योकि बेवजह की प्रतिस्पर्धा से जिन भारतीय कम्पनियों ने अनाप-शनाप उत्पादन कर डाला था और बाजार में बिक्री केवल जहाँ की तहाँ है, बल्कि धन की तगी से उसमें मे भी कमी आयी है तो ऐसी स्थिति में उत्पादन पर अकुश लगाया जाना लाजिमी है। यही नहीं उदारता के नाम पर जिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बेखटके देश में जडे जमाने की इजाजत दी गयी, उससे स्थिति और बिगडेगी ही।

सुधार व उदारीकरण की नीति को चीन ने भारत से पहले अपनाया था, लेकिन उसने इसमें पर्याप्त सतर्कता बरती और बिना किसी दबाव के अपने देश के हितों को सर्वोपरि रखा, जिसका यह स्पष्ट प्रमाण है कि चीन अपनी शर्तों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सयुक्त उद्यम लगाने की अनुमति देता है, और ये विदेशी कम्पनियाँ उसे स्वीकार भी करती है, लेकिन भारत में इनका पूरा प्रयास रहता है कि भारत सरकार पर इस कदर दबाव डाला जाये कि वह मजूर ही हो जायें। आर्थिक सुधार की नीति विश्व के तमाम विकासशील देशों ने अपनायी, किन्तु वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से लाभ ही उठा रहे है, उनके राष्ट्रीय हितों को क्षति पहुँचाने में ये विदेशी कम्पनियाँ कामयाब नहीं हो पा रही है।

काग्रेस जो वर्तमान मोर्चा सरकार की सबसे बडी समर्थक पार्टी है, उसके द्वारा यकायक आर्थिक उदारीकरण की नीति में यह कहकर बदलाव के सकेत देना कि 'सब कुछ परिवर्तनशील है'

उचित नहीं है। नीतिया व कार्यक्रमो का उचित-अनुचित होना उसके क्रियान्वयन पर ज्यादा निर्भर करता है। बीमा, उड्डयन क्षेत्र मे नि सदेह बेहतर सेवाओं की जरूरत है और इसके लिए प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि देश की निजी कम्पनियो को आगे आने के लिए आमत्रित किया जाना चाहिए। उड्डयन क्षेत्र मे जब सरकार विदेशी एअरलाइन्स कम्पनियो को अशपूँजी की भागीदारी से रोक सकती है तो बीमा और सुधार के अन्य क्षेत्रो में भी इस तरह के कदम उठाये जा सकते है। देश इस विचारधारा पर अब इतना आगे बढ चुका है कि उस पर एकदम रोक लगाना तो सभव नहीं किन्तु, इन पर अकुश लगाना अभी सरकार के अख्तियार मे है। आवश्यकता तो इस बात की है कि सरकार इस मुद्दे की नये सिरे से समीक्षा करे और इन बिन्दुओ पर सोच-समझकर फैसले लिए जॉए जहॉ स्वदेशी उद्योगो पर आच होती है सामाजिक-आर्थिक उत्थान की अवधारणा की विफलता के बाद अब जरूरत इस बात की है कि निजी क्षेत्र पर विश्वास किया जाये और उसे इस हद का अनुबन्ध, सहयोग व अदान प्रदान की छूट दी जाये जिससे राष्ट्रीय हितो पर असर न पडे।

5

भारत में विदेशी सहयोग एवं उसके दुष्परिणाम

भारत में विदेशी सहयोग एवं उसके दुष्परिणाम

विदेशी सहयोग से आशय किसी उद्योग मे विदेशी सरकार, सस्था समुदाय द्वारा पूँजी के लगाये जाने से है। यह पूँजी विदेशी मुद्रा, विदेशी मशीनो व विदेशी तकनीकी ज्ञान के आधार पर लगायी जा सकती है जिसका स्वरूप पूँजी मे हिस्सा बॅटाना, विदेशी सहयोग व विदेशी मुद्रा मे ऋण आदि हो सकता है, लेकिन कुछ विदेशी सस्थाए या सरकारे ऋणो के साथ-साथ कुछ अनुदान भी देती है जिसको वे वापस नहीं लेती है। यह अनुदान विदेशी सहायता कहलाता है। यह सहायता वर्गीकृत व अवर्गीकृत दोनो प्रकार की होती है। वर्गीकृत सहायता किसी विशेष परियोजना के लिए होती है उसको उसी परियोजना पर व्यय करना पडता है, जबकि अवर्गीकृत सहायता किसी भी परियोजना के लिए काम मे लायी जा सकती है।

आजकल विदेशी पूँजी' के स्थान पर 'विदेशी सहायता'शब्द अधिक प्रचलित है। अत इसका अर्थ भी अधिक व्यापक हो गया है। वर्तमान मे विदेशी सहायता शब्द मे विदेशी ऋण (Foreign Loans) विदेशी अनुदान (Foreign Grants) विदेश निवेश (Foreign Invesment) आदि शामिल किये जाते हैं। प्रत्येक विकासशील देश को आर्थिक नियोजन करने के लिए, अपने आन्तरिक साधन सीमित होने के कारण विदेशी सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। भारत ने भी इसी मार्ग को अपनाया है जिसके अन्तर्गत विदेशी ऋण,सहायता, निवेश आदि प्राप्त किये हैं। वर्ष 1996-97 के अन्त मे भारत पर 3,34,914 करोड रूपये का ऋण था।[1]

भारत के आर्थिक विकास मे विदेशी सहायता की उल्लेखनीय भूमिका रही है। औद्योगिक विकास मे अग्रणी इग्लैण्ड को छोडकर विश्व के प्रत्येक देश को अपने आर्थिक विकास के लिए किसी न किसी रूप मे विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पडा है। भारत जैसे विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए विशेषतया विकास की आरम्भिक अवस्था में विदेशी सहायता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विदेशी सहायता का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इससे सहायता पाने वाले देशो के आन्तरिक ससाधनो मे वृद्धि हो जाती है। विकासशील देशो में आन्तरिक ससाधनों की उपलब्धता की मात्रा अत्यल्प होती है। कारण, कि ऐसे देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत नीची तथा उपभोग प्रवृत्ति बहुत ऊँची होती है। विदेशी सहायता प्राप्त देशो मे बहुत सी परियोजनाओ का निर्माण सम्भव हो जाता है। जो विदेशी सहायता के अभाव मे सम्भव न होता। कुछ विकास कार्यक्रम अत्युत्तम परिणाम देते हैं,

---

1 आर्थिक समीक्षा भारत सरकार - 1996-97, पृष्ठ सख्या- 106

बशर्ते कि कार्यक्रम का प्रभावी ढग से क्रियान्वयन किया जाय। विदेशी सहायता से आतरिक ससाधनो मे वृद्धि के साथ ही उन बडी परियोजनाओ की स्थापना सम्भव हो जाती है, जिनके लिए भारी मात्रा मे आयात-सामग्री की आवश्यकता पडती है। इससे बहुत से लाभप्रद निवेशों के लिए अवसर बढ जाते हैं।

आर्थिक विकास के आरम्भिक चरणों में कुछ पूँजीगत वस्तुओं और तकनीकी जानकारी की आवश्यकता पडती है, जिसकी प्रतिपूर्ति विदेशी सहायता से ही सम्भव है। विकासशील देशों की आवश्यकताए इतनी बडी एव तात्कालिक होती है कि वे अपनी पूँजीगत और तकनीकी जानकारी स्वय उत्पन्न करने के लिए अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति मे विदेशी सहायता पर निर्भरता अनिवार्य हो जाती है, किन्तु पूँजीगत वस्तुओं और तकनीकी का आयात सदैव नहीं किया जा सकता और सदैव इसके आयात पर निर्भरता भी वाछनीय नहीं है। ऐसी स्थिति में इन वस्तुओ का आयात करने वाले देश के लिए यह आवश्यक है कि शीघ्रति शीघ्र इन वस्तुओ को उत्पन्न करने के लिए अपने को सक्षम बनाए। इस सम्बन्ध मे यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसी पूँजीगत वस्तुएँ और तकनीक उत्पन्न की जानी चाहिए। जो अर्थव्यवस्था की ससाधन-निधि के अनुरूप हो। भारत में वर्तमान समय मे बीच की तकनीक के विकास पर बल दिया जा रहा है, क्योंकि यह देश की साधन-निधि के अनुरूप है। अल्पविकसित देशो के समक्ष एक कठिनाई यह भी होती है कि विदेशी सहायता का विकल्प वे किस प्रकार खोजें। इसका एकमात्र विकल्प निर्यात उपार्जन में वृद्धि है। निर्यात उपार्जन मे वृद्धि से सम्बन्धित कठिनाई यह है कि विकासशील देशों मे प्राय प्राथमिक उद्योगों की सख्या अधिक रहती है और इनके द्वारा उत्पादित माल की माग अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में कम ही रहती है। इस कारण इन देशो को विवश होकर विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पडता है। इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया शुरू करने और उसे बनाये रखने के लिए विदेशी सहायता बहुत आवश्यक हो जाती है। इसलिए इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आज विकसित कहे जाने वाले अमरीका, कनाडा, फ्रास आदि देश भी आर्थिक विकास के आरम्भिक चरणो मे विदेशी सहायता पर निर्भर रहे थे। विदेशी सहायता जहॉ एक ओर विकास का मार्ग प्रशस्त करती है, वहीं दूसरी ओर कुछ उलझनें भी उत्पन्न कर सकती हैं। अत देश में विदेशी पूँजी के प्रवेश की अनुमति बहुत सावधानी बरतने के बाद ही दी जानी चाहिए। विदेशी पूँजी का प्रभुत्व हो जाने पर राजनीतिक उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं, विशेषतया जब विदेशी सहायता प्राप्त करने वाला देश सकट कालीन स्थिति मे हो। ऋणदाता देश ऐसी शर्तें भी लगा सकता हे, जिससे देश पर ऋण-भुगतान का भार बढ जाए। इसलिए प्रापक देश ऋण की मात्रा, उसकी शर्तों और उसके स्वरूप तथा स्रोतों पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जहाँ तक सम्भव हो विदेशी सहायता पर निर्भरता कम की जानी चाहिए और अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता की

ओर बढाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

भारत को मिली विदेशी सहायता ऋणों और अनुदानो के रूप मे ही है। सातवीं पचवर्षीय योजना मे भारत द्वारा प्रयुक्त विदेशी सहायता का एक बडा भाग लगभग 90 प्रतिशत ऋणों के रूप मे है, जबकि अनुदानो का हिस्सा सम्पूर्ण विदेशी सहायता में अत्यल्प लगभग 10 प्रतिशत रहा है। समय के साथ-साथ विदेशी सहायता की मात्रा मे भी वृद्धि होती रही है। विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओ को सम्पन्न करने हेतु विदेशी सहायता प्राप्त की गई है। विदेशी सहायता के आकार के विभिन्न पक्ष जैसे इसकी कुल मात्रा अधिकृत और प्रयुक्त मात्रा में ऋण और अनुदान का हिस्सा निबद्ध और अनिबद्ध सहायता, विदेशी मुद्रा या रूपये मे प्रतिदेय आदि इसकी समस्या के कई पहलुओ पर प्रकाश डालते है। उदाहरणार्थ, विदेशी सहायता की मात्रा से यह पता चलता है कि देश विकास के लिए विदेशो पर कितना निर्भर है।

अधिकृत और प्रयुक्त सहायता की मात्रा से यह बोध होता है कि वायदे की किलनी धनराशि प्राप्त हो चुकी है और इससे विदेशी सहायता खपाने की देश की क्षमता का भी बोध होता है। ऋण के भाग से पता चलता है कि ब्याज मिलाकर पुनर्भुगतान की जाने वाली राशि कितनी है। अनुदान इस समस्या से मुक्त होता है। निबद्ध और अनिबद्ध सहायता से पता चलता है कि इनके उपयोग मे कितना लचीलापन है। अनिबद्ध ऋणों का प्रयोग किसी भी परियोजना मे किया जा सकता है अथवा उसका उपयोग किसी भी देश से माल खरीदने में किया जा सकता है। निबद्ध सहायता की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। निबद्ध सहायता का उपयोग ऋण समझौते के कार्यान्वयन से जुडा हुआ है। जिन ऋणों का भुगतान विदेशी मुद्रा मे किया जाना होता है, उनके लिए निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित करने की आवश्यकता होती है। रूपये के रूप मे भुगतान होने वाले ऋणों के सम्बन्ध मे समस्या केवल इतनी ही होती है कि ऋणदाता को आवश्यक मात्रा में रूपये दिये जाए और वह राशि ऋणदाता देश मे ही व्यय करता है। इससे मुद्रा स्फीति की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। साराशत यह कहा जा सकता है कि जिस देश मे प्रयुक्त ऋण लगभग अधिकृत ऋण के बराबर होता है, उस देश की विदेशी सहायता को खपाने की क्षमता भी अधिक होती है और वही देश सहायता का उचित उपयोग भी कर सकता है। इसी प्रकार कुल विदेशी सहायता में जब ऋण का अश अधिक होता है तो ऋण के भुगतान की समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि इससे ऋण का बोझ बढता है। विदेशी सहायता में अनिबद्ध ऋण का अश जितना अधिक होता है, प्रापक देश सहायता का उपयोग देश की जरूरतो के अनुसार उतना ही अधिक कर सकता है। भारत को प्राप्त कुल विदेशी सहायता का लगभग 40 प्रतिशत भाग ही अनिबद्ध

है, शेष 60 प्रतिशत सहायता निबद्ध है अर्थात इसका प्रयोग किसी विशेष परियोजना या देश के साथ बॅधा हुआ है। यही कारण है कि सहायता का प्रयोग भारत अपनी इच्छानुसार किसी भी परियोजना या कार्यक्रम या किसी भी देश से सामान खरीदने के लिए नहीं कर सका और भारत को ऋणदाता देश से ही अपेक्षाकृत महॅगा सामान खरीदने के लिए विवश होना पडा। परिणाम स्वरूप विदेशी सहायता के शुद्ध लाभ मे कमी आई।

भारत ने विदेशी सहायता विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं के सम्पादनार्थ प्राप्त की है। भारत अपनी आवश्यकतानुसार परियोजनाए तैयार कर ऋणदाता देशों से तद्नुसार सहायता की माग करता रहा है। विदेशी सहायता का प्रयोग जिस उद्देश्य के लिए होता है, वह उस क्षेत्र की ओर सकेत करता है जिसे दुर्लभ विदेशी मुद्रा के बदले प्रयोग में प्राथमिकता प्रदान की गई है विदेशी सहायता के आर्थिक विकास में योगदान को अधिकतम करने के लिए आवश्यक है कि इसका प्रयोग आधारिक सरचना एव पूॅजीगत क्षेत्र की सवृद्धि के उद्देश्य से किया जाए या फिर इसका उपयोग अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाने के उद्देश्य से किया जाए।

विकासशील देश प्राकृतिक साधन और श्रमशक्ति से सम्पन्न होते हुए भी पूॅजी और आधुनिक प्रौद्योगिकी के अभाव में तेजी से आर्थिक विकास नहीं कर पाते हैं। आय का स्तर निम्न होने के कारण बचत की मात्रा कम होती है और पूॅजी का निर्माण नहीं हो पाता है वैज्ञानिक अनुसधान के क्षेत्र मे भी इनकी प्रगति उल्लेखनीय नहीं होती है। इस तरह पूॅजी और बौद्धिक सम्पदा के अभाव में इन देशो का अपेक्षित विकास सम्भव नहीं हो पाता है। बचत और निवेश के अन्तर को पाटने के लिए तथा आधुनिक तकनीक प्राप्त करने के लिए इन देशों को विकसित देशों से सहायता लेनी पड़ती है। आज से कुछ दशक पूर्व विदेशी निवेशको को आर्थिक साम्राज्यवाद का सम्वाहक माना जाता था तथा विकासशील देशों को यह आशका सता रही थी कि उनकी अर्थव्यवस्था में बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की बढती भागीदारी से उनकी आर्थिक सम्प्रभुता खतरे मे पड सकती है किन्तु अब सम्पूर्ण विश्व का राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य बदल चुका है। सोवियत सघ तथा पूर्वी यूरोप के देशो में साम्यवाद का पतन हो चुका है। सयुक्त राज्य अमरीका अब एकमात्र महाशक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका है और दूसरी महाशक्ति के रूप में सोवियत सघ की मान्यता समाप्त हो जाने के कारण विश्व एक ध्रुवीय हो गया है। आज चीन और भूतपूर्व साम्यवादी देश अमरीका, जापान तथा पश्चिमी यूरोप के समृद्ध देशो के आगे आर्थिक सहायता के लिए हाथ पसार रहे हैं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का स्वागत कर रहे हैं इतना ही नहीं ये देश विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व व्यापार सगठन की सदस्यता प्राप्त

करके विश्व अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा मे शामिल होने के लिए भी उतावले हो रहे हैं। इन देशो ने यह अनुभव किया कि विदेशी पूँजी एव प्रौद्योगिकी के बिना आर्थिक विकास मे तेजी लाना सम्भव नहीं है। इन देशो ने यह भी अनुभव किया कि विदेशी ऋण के माध्यम से विकास को आगे बढाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि ऋणो की शर्तें कठोर होती हैं और समय पर ऋणों की अदायगी करना आसान नहीं है, ऐसी स्थिति मे ऋणों के फदे में फॅसने की अपेक्षा विदेशी निवेशको को आमन्त्रित करना अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि विदेशी निवेश अदायगी के दायित्व से मुक्त होता है फिर भी ऋणों पर ब्याज तथा निवेशों पर लाभाश के रूप मे देश से बाहर जाने वाले सम्भावित धन के बीच तुलना का प्रश्न शेष रह जाता है।

विदेशी निवेश की संकल्पना

जब एक देश के निवेशक दूसरे देश के कारोबार में पूँजी लगाते हैं। तो इसे विदेशी पूँजी निवेश कहा जाता है। विदेशी निवेश निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं -

1. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश:

भौतिक सम्पदा जैसे-कारखाने, भूमि, पूँजीगत वस्तुए तथा आधारिक सरचना वाले क्षेत्रो मे जब विदेशी निवेशक अपना धन लगाते हैं तो इसे प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश कहा जाता है। प्रत्यक्ष निवेश बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा किये जाते हैं। ये कम्पनियॉ निर्माणी उद्योग, उत्खनन तथा सेवा क्षेत्र के उद्योगो में विशेष रूचि लेते हैं, जिन देशो की बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ विदेशों मे पूँजी लगाने के लिए विख्यात है उनमे सयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, फ्रास, स्वीडन, स्विट्जरलैंण्ड तथा जापान प्रमुख है। सिगापुर, हागकाग, इण्डोनेशिया, मलेशिया, दक्षिण कोरिया, फिलीपीन्स और थाईलैण्ड जैसे विकासशील देश भी प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश के मामले मे कुछ हद तक अपनी भूमिका निभा रहे हैं। प्रत्यक्ष निवेश के अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा विदेशो मे नए कारखाने या प्रतिष्ठान स्थापित किये जा सकते अथवा उनके द्वारा वर्तमान कम्पनियो का सविलयन किया जा सकता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ विदेशों मे उत्पादन करके उत्पादित वस्तु उन्हीं देशो मे बेंच सकती है या विदेशों में उत्पादित वस्तुए वे अपने देश या किसी तीसरे देश के बाजार में बेंच सकती है या अपने देश अथवा किसी तीसरे देश मे उत्पादित वस्तुओ को बेचने के लिए विदेशों मे सहायक कम्पनी स्थापित कर सकती हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ दूसरी देशों के कम्पनियो के साथ मिलकर सयुक्त उपक्रम स्थापित कर सकती है या पूर्णत अपने स्वामित्व में दूसरे देशों में सहायक कम्पनियों की स्थापना कर

सकती है। इस तरह के सभी निवेश विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेश कहलाते हैं।

2 संविभाग निवेश :

वित्तीय विपत्रो मे अन्तर्राष्ट्रीय निवेश को सविभाग निवेश कहते हैं। जब एक देश के निवेशक दूसरे देश की कम्पनियो के अशों, ऋण-पत्रो, बाण्डों तथा अन्य प्रतिभूतियों में धन लगाते है तो ऐसे निवेश को सविभाग निवेश कहा जाता है। भारत को 1996-97 (अप्रैल -दिसम्बर) में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ डी आई) के माध्यम से 1710 मिलियन डालर नकदी अतर्वाह के रूप में प्राप्त हुआ। इसमे सरकारी स्रोत से 1181 मिलियन डालर, भारतीय रिजर्व बैंक स्रोत से 83 मिलियन डालर और अनिवासी स्रोत से 448 मिलियन डालर प्राप्त हुए।[2] इसी अवधि मे सविभाग निवेश से 2343 मिलियन डालर प्राप्त हुआ इसमे जी डी आर से 812 मिलियन डालर, विदेशी सस्थागत निवेशकों से 1511 मिलियन डालर तथा अन्य निधियों से 20 मिलियन डालर प्राप्त हुए। इस तरह विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की तुलना में सविभाग निवेश की रकम अधिक थी।

विदेशी सहयोग की आवश्यकता :

आज विश्व के जो भी राष्ट्र विकसित है, उन सबको किसी न किसी रूप में विदेशी सहयोग प्रदान किया गया है। कोई भी देश बिना विदेशी सहयोग के अपने प्राकृतिक एव मानवीय साधनो का पूर्ण उपयोग नहीं कर सकता है अर्थात विदेशी सहायता का प्रत्येक देश के औद्योगिक आर्थिक एव विकास मे महत्वपूर्ण योगदान है। 17 वीं और 18 वीं शताब्दी मे इग्लैण्ड ने हालैण्ड से और 19वीं शताब्दी में अमेरिका ने यूरोप से पूँजी प्राप्त की। रूस के आर्थिक विकास में अमेरिका ने सहायता दी तथा द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अमेरिका और इग्लैण्ड की पूँजी के आधार पर पूर्वी यूरोप के देशो ने अपना आर्थिक पुनरूत्थान किया। विदेशी सहयोग के महत्व को स्पष्ट करते हुए आर वी रमन लिखते हैं 'वर्तमान औद्योगिक अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में कोई भी राष्ट्र पूर्णत आत्मनिर्भरता की दशा मे नहीं रह सकता, अन्यथा उसे वे लाभ परित्याग करने होंगे जो अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक व्यवस्था दे सकती है और वह प्रगति की दौड में पीछे रह जायेगा।"

मेरी डी. ब्राइट्स लिखते हैं - "विनियोजन के किसी कार्यक्रम में अश-पूँजी या ऋण के रूप मे विदेशी भागिता इतनी महत्वपूर्ण है कि औद्योगीकरण का विकास करने के इच्छुक राष्ट्रों के लिए उसे

---

2 मासिक पत्रिका : प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर 1998 पृष्ठ सख्या-264

लगभग अनिवार्य समझना चाहिए।"[3]

भारत जैसे अल्पविकसित देश में जहॉ पूॅजी निर्माण की गति मन्द है तकनीकी ज्ञान का अभाव है और अन्य अनेक समस्याए व्याप्त है, नियोजन के मार्ग पर अग्रसर होने के कारण विदेशी पूॅजी एव तकनीकी सहायता का सहयोग अपरिहार्य बन गया। मुख्य बात यह है कि आज के प्रगतिशील युग मे कोई भी देश बिना अन्य देशो की जानकारी प्राप्त किये विकास की दौड में पीछे रह जायेगा। भारत अभी एक विकासशील देश है। यहॉ प्राकृतिक साधनों का विदोहन नहीं हो पाया है। पूॅजी का अभाव है, आन्तरिक बचते कम हैं। तकनीकी ज्ञान भी अधिक उच्च प्रकार का नहीं है व्यावसायिक जोखिम सहने की क्षमता कम है। पूॅजीगत मशीनों का अभाव है, ऐसी स्थिति में यह उचित है कि विदेशी पूॅजी एव सहायता प्राप्त की जाय।

उद्देश्य :

विदेशी पूॅजी अल्पविकसित देशों के विकास में निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति में अधोलिखित योगदान करते हैं -

1. घरेलू बचतों को अनुपूरित करना:

अल्पविकसित देशों मे बचत एव विनियोग दर धीमी होती है जिससे न केवल पूॅजी स्टाक अत्यन्त कम होता है, बल्कि पूॅजी निर्माण की चालू दर भी कम होती है। औसतन रूप से इन अर्थव्यवस्थाओं में कुल विनियोग राष्ट्रीय आय का केवल 2 से 6 प्रतिशत तक होता है जबकि उन्नत देशों में वह 15 से 20 प्रतिशत तक होता है। नई परियोजनाओं में पूॅजी निवेश की तो कोई बात ही नहीं, बचत की इतनी दर तो 2 से 2 4 प्रतिशत की दर से बढती हुई जनसख्या के लिए भी व्यवस्था नहीं कर सकती। वास्तविक बचत की वर्तमान दर से वे पूॅजी के मूल्य ह्रास को भी पूरा नहीं कर सकते और न विद्यमान पूॅजी-उपकरण को प्रतिस्थापित कर सकते हैं, लेकिन विदेशी पूॅजी का आयात, पूॅजी उपकरण तथा कच्चा माल को प्रवाहित करके घरेलू बचतो की कमी को पूरा करने मे सहायक होता है। जिससे बचतों की सीमान्त दर और घरेलू पूॅजी निर्माण की दर बढ जाती है।

2. प्राकृतिक साधनों का विदोहन :

भारत मे आर्थिक विकास के लिए बहुतायात में प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध हैं। प्राकृतिक

---

3 *मिश्र, जगदीश नारायण भारतीय अर्थव्यवस्था (12वॉ सस्करण) 1996, पृष्ठ सख्या-928*

ससाधनो की दृष्टि से भारत एक सम्पन्न देश है लेकिन अल्प पूँजी के कारण इन ससाधनों का पूर्ण रूप से उचित विदोहन नहीं हो पाता है। विदेशी पूँजी के माध्यम से इन ससाधनो का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है और इसी के माध्यम से क्षेत्रीय असतुलन को भी दूर किया जा सकता है।

3. तकनीकी ज्ञान की कमी को दूर करना ·

हमारे देश में तकनीकी ज्ञान व कौशल की कमी है और इसकी कमी उत्पादन की ऊँची औसत लागत तथा श्रम की निम्न उत्पादकता से झलकती है। विदेशी पूँजी के साथ तकनीकी एव कौशल का भी आयात होता है। अत यह पिछडापन या कमी विदेशी सहयोग से दूर की जा सकती है।

4. आधारभूत तथा मूल उद्योग स्थापित करने के लिए .

अल्प-विकसित देश इस स्थिति मे नहीं होते कि आधारभूत तथा मूल उद्योग अपने आप शुरू करे। विदेशी सहयोग के माध्यम से ही वे इस्पात, मशीनी औजारों, भारी विद्युत सम्बन्धी तथा रासायनिक आदि सयन्त्रो को स्थापित कर सकते हैं। इसके अलावा एक उद्योग मे विदेशी पूँजी का प्रयोग अन्य उद्योग में लगाते घटाकर देशी उद्यम को प्रोत्साहन दे सकता है। जिससे अन्य सम्बद्ध उद्योगों का श्रृखला विस्तार हो सकता है। इस प्रकार विदेशी पूँजी अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण में सहायक होती है।

5. व्यावसायिक जोखिम में कमी :

आधारभूत एव पूँजीगत उद्योगों की स्थापना में प्रारम्भिक अवस्था में जोखिम अधिक होता है और स्थापना व्यय भी अधिक होते हैं जिसके कारण देश के साहसी नये व्यवसायों मे पूँजी लगाने में पिछडते हैं, किन्तु विदेशी पूँजी की दशा मे व्यापारिक जोखिम प्राय विदेशियों द्वारा उठाया जाता है और बाद में धीरे-धीरे स्वामित्व देशवासियो को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार विदेशी सहायता द्वारा औद्योगिक विकास मे होने वाले प्रारम्भिक जोखिमो को कम किया जा सकता है।

6. भुगतान–संतुलन के निवारण में सहायता .

नियोजन एव औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे विदेशों से पूँजीगत आयात अधिक होने के कारण भुगतान-असतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके जनसख्या भार के कारण खाद्यान्न का भी आयात करना पडता है जिससे स्थिति और गम्भीर हो जाती है। विदेशी पूँजी के माध्यम से एक अल्पविकसित देश अपनी आयात आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है और साथ ही

भुगतान शेष की कठिनाइयो से छुटकारा पा सकता है।

7. बेरोजगारी में कमी :

विदेशी सहायता से नये-नये उद्योगो का जन्म होता है और पूर्व स्थापित उद्योगों का विस्तार होता है जिससे रोजगार के अवसरों का सृजन होता है और जिनमे हजारो व्यक्तियो को रोजगार मिलता है। इससे बेरोजगारी में कमी होती है। इसलिए *प्रोफेसर सी एन वकील* ने एक बार कहा था कि- "विदेशी पूँजी केवल पूँजीगत साधनों की प्राप्ति में ही सहायता नहीं करती है, बल्कि यह देश के विकास के लिए मानवीय साधनों के स्वविकास में भी सहायता करती है"।

8. मुद्रा प्रसार पर नियंत्रण :

बृहत् सार्वजनिक विनियोग कार्यक्रम प्रारम्भ होने के फलस्वरूप घरेलू वस्तुओं की माग तथा पूर्ति के असतुलन के अस्तिव के कारण विकासशील देश में स्फीतिकारी दबावों का प्रकट होना अनिवार्य है। इन सार्वजनिक विनियोग कार्यक्रमो के प्रभाव से वस्तुओं तथा सेवाओ के लिए माग उनकी पूर्ति की अपेक्षा अधिक बढती है। इससे स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होते हैं जो उन सरचनात्मक कठोरताओ के कारण अधिक प्रबल हो जाते हैं। यदि खाद्यान्नों तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का विदेशी पूँजी की सहायता से उत्पादन होता है तो स्फीतिकारी दबाव कम हो जाते हैं। अत यह कहा जाता है कि विदेशी सहायता मुद्रा-प्रसार नियत्रण का कार्य करती है।

9. आर्थिक नियोजन :

भारत में आर्थिक नियोजन पिछले 46 वर्षों से चल रहा है यद्यपि देश में नियोजन हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं, लेकिन फिर भी आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए विदेशी पूँजी एव सहायता लेना उचित एव आवश्यक होती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए विदेशी सहायता अनिवार्य है। यह औद्योगीकरण मे, आर्थिक पूँजी की कमी के निर्माण में और अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करने में सहायक होती है। विदेशी सहायता केवल मुद्रा एव मशीन तक ही नहीं सीमित है, बल्कि विदेशी प्राविधिक ज्ञान भी लाती है। यह विभिन्न अविकसित क्षेत्रो में पहुँचकर क्षेत्रीय विकास करती है और ससाधनों का विदोहन करती है। विदेशी सहायता भुगतान सतुलन को ठीक कर मुद्रा प्रसार की भयावह स्थिति से बचाती है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक सरचना में भी अपनी भूमिका निभाती है। अत अर्थव्यवस्था को तीव्र गति देने के लिए विदेशी सहयोग

बहुत आवश्यक है।

विदेशी निवेश नीति :

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नीति नहीं थी, लेकिन रेलों की स्थापना, विद्युत ग्रहों का निर्माण, चाय व कहवा के बगीचों की स्थापना, जूट एवं कोयला उद्योग की स्थापना एवं विकास, आदि में विदेशी पूँजी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 6 अप्रैल 1949 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में भारत की पहली औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसमें कहा गया कि देश की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत विदेशी एवं देशी उपक्रमों के बीच भेदभाव नहीं किया जायेगा।[4] विदेशी निवेशकों द्वारा लगायी गयी पूँजी पर प्राप्त होने वाले लाभों को अपने देश में भेजने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं दी जाएगी। जो विदेशी उपक्रम इस समय देश में चल रहे हैं उन पर सरकार कोई भी ऐसा प्रतिबन्ध नहीं लगायेगी जो भारतीय उपक्रम पर नहीं लगाया गया है। सरकार की इच्छा विदेशी उपक्रमों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने की नहीं है, लेकिन यदि किसी कारण से किसी भी विदेशी उपक्रम का राष्ट्रीयकरण किया गया तो विदेशी उद्योगपतियों को उचित एवं न्यायपूर्ण क्षतिपूर्ति की जायेगी। विदेशी पूँजी पर नियन्त्रण रखा जायेगा। इस नियन्त्रण का उद्देश्य उसका इस प्रकार उपयोग करना होगा कि देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। विदेशी उपक्रमों का नियन्त्रण भारतीय हाथों में होना चाहिए। धीरे-धीरे विदेशी विशेषज्ञों के द्वारा भारतीय कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण देने के लिए व्यवस्था की जायेगी।

सन् 1949 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू के द्वारा दिया गया वक्तव्य 1956 की औद्योगिक नीति में पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है, जिसमें उन्होंने कहा था कि कि सरकार देशी व विदेशी प्रतिष्ठानों में कोई मतभेद नहीं बरतेगी। उन्हें लाभ व पूँजी ले जानेकी छूट होगी, लेकिन यदि राष्ट्रीयकरण किया जायेगा तो उन्हें न्यायपूर्ण मुआवजा दिया जायेगा, लेकिन 1991 में घोषित औद्योगिक नीति में विदेशी विनियोग या पूँजी को बढ़ावा देने की बात कही गयी है। उद्योगों में विदेशी पूँजी 51 प्रतिशत तक हो सकती है। यदि विदेशी तकनीक आयात की जाती है तो उसकी भी अनुमति सरकार दे देगी। विदेशी कम्पनियों को लाभ विदेशों में भेजने की अनुमति भी सीमित दायरे में दीगयी है। वर्ष 1992-93 के दौरान प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा पोर्टफोलियो निवेश एवं अनिवासी भारतीयों द्वारा निवेश को आकर्षित करने के लिए प्रयास किये गये हैं।

---

4. *मामोरिया डॉ. चतुर्भुज एवं जैन डॉ० एस.सी. : भारतीय अर्थशास्त्र, (पन्द्रहवाँ संस्करण) 1997, पृष्ठ संख्या-148*

भारत सरकार द्वारा 1991 के मध्य मे उदारीकरण निजीकरण एव अन्य आर्थिक सुधारो की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की गई, वह निरन्तर जारी है और समय के साथ-साथ उसमे कई आयाम जोडे गए है। विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (एफ ई आर ए) के स्थान पर विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियमन (एफ ई एम ए) इसका एक उदाहरण है। चालू खाते में रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता अगस्त 1994 मे लागू कर दी गई जिसके कारण विदेशी व्यापार में सलग्न उद्यमियो के लिए विदेशी मुद्रा का सकट दूर हो गया। पूँजी खाते मे रूपये की परिवर्तनीयता के सम्बन्ध में तारापोर समिति द्वारा सुझाव प्रस्तुत किए जा चुके हैं और इन्हे लागू करने पर विचार किया जा रहा है। यह उल्लेखनीय है कि चालू खाते मे रूपये की परिवर्तनीयता का तात्पर्य विदेशी व्यापार के सम्बन्ध मे रूपये को विदेशी मुद्रा मे बदलने की स्वतन्त्रता से है जबकि पूँजी खाते मे रूपये की परिवर्तनीयता का अभिप्राय अन्य देशो के साथ वित्तीय लेन-देनो के सिलसिले मे रूपये को विदेशी मुद्रा मे बदलने की स्वतन्त्रता से है। विदेशी निवेशकों के लिए कई ऐसे द्वार जो पहले बन्द थे, अब खोल दिये गये हैं। कई उद्योगो मे वे 50 प्रतिशत से अधिक अश खरीद सकते हैं तथा पूर्णत अपने स्वामित्व में औद्योगिक एव व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की स्थापना कर सकते हैं विदेशी विनिमय नियमन कानून को सरल बनाया गया है तथा कई प्रकार के प्रतिबन्ध समाप्त कर दिये गये हैं। यही कारण है कि अब भारतीय अर्थव्यवस्था मे विदेशी पूँजी का निवेश तेजी से बढने लगा है और भारत के विस्तारित होते बाजार की ओर विदेशी निवेशक आकर्षित होने लगे हैं। फिर भी अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारत काफी पीछे चल रहा है। हाल ही के वर्षों में भारत सरकार द्वारा विनिमय नियत्रण के जकडन और कठोरता को कम करने के लिए जो कदम उठाए गये हैं वे सचमुच महत्वपूर्ण है उनमें निम्नाकित उल्लेखनीय है -

1 जुलाई 1996 में विदेशी निवेश सम्बर्द्धन बोर्ड का पुनर्गठन किया गया और भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए विदेशी निवेश सम्वर्द्धन काउन्सिल की स्थापना की गई।

2 फरवरी 1997 मे विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम 1973 के स्थान पर पूर्ण चालू खाता परिवर्तनीयता तथा पूँजी खाता के लेन-देनो को क्रमिक रूप से उदार बनाने के उद्देश्य से नया कानून बनाने का निश्चय किया गया। वर्ष 1997-98 के केन्द्रीय बजट में विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (एफ इ एम ए) शीर्षक का एक विधेयक लाने का प्रस्ताव किया गया जिसका प्रारूप तैयार करने का उत्तरदायित्व रिजर्व बैंक को सौंप दिया गया।

3 नवम्बर 1996 में अनिवासी भारतीय निवेशों के सम्बन्ध मे गठित कार्यदल की सिफारिशो के अनुसार रिजर्व बैंक ने ऐसे उपाय किये जिसमें प्राधिकृत व्यापारियों को लाभाश अथवा ब्याज

की राशि अनिवासी भारतीय निवेशको के अनिवासी विनियोग (Non- Resıdence Investment, N R I) खातो मे शीघ्रतापूर्वक जमा करने मे सुविधा हो।

4 जनवरी 1997 मे विदेशी निवेशको को स्वत अनुमोदन के मार्ग के अन्तर्गत निवेश के प्रस्तावों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुविधा प्रदान करने हेतु सरकार ने औद्योगिक नीति 1991 के अनुबन्ध 3 मे निम्नलिखित को सम्मिलित किए जाने की घोषणा की है -

क- खनन कार्यों से सम्बन्धित उद्योगो अथवा मदो की तीन श्रेणियो को 50 प्रतिशत तक विदेशी ईक्विटी के लिए खोल दिया गया।

ख- उद्योगो अथवा मदो की तेरह अतिरिक्त श्रेणियो को 51 प्रतिशत तक की विदेशी ईक्विटी के लिए खोल दिया गया।

ग- उद्योगो अथवा मदो की नौ श्रेणियो को 74 प्रतिशत तक की विदेशी ईक्विटी के लिए स्वतन्त्र कर दिया गया।

5 मार्च 1977 मे विदेशी सस्थागत निवेशको को भारत सरकार की दिनाकित प्रतिभूतियो में निवेश करने की अनुमति प्रदान की गई।

6 फरवरी 1998 मे रिजर्व बैक ने विदेशी मुद्रा के अधिकृत डीलरो को इस बात की अनुमति प्रदान कर दी कि वे विदेशी नागरिको द्वारा नियोजन परामर्श सेवा, विदेशो के पत्र-पत्रिकाओ मे विज्ञापन तथा विदेश या भारत मे विशिष्टीकृत प्रशिक्षण के लिए अग्रिम भुगतान कर सकते हैं।

7 भारतीय कम्पनी द्वारा पूर्णत अपने स्वामित्व मे अपना सयुक्त उपक्रम के रूप मे विदेशो मे चलाई जाने वाली प्रस्तावित परियोजनाओं की व्यवहार्यता के अध्ययन और सुझाव के लिए विदेशी स्थित परामर्श सेवा सगठन को अब भारतीय कम्पनी द्वारा एक लाख डालर तक भुगतान किया जा सकता है, विदेशी मुद्रा के अधिकृत डीलरो द्वारा ही इसकी अनुमति प्रदान की जा सकती है।

रिजर्व बैंक के अनुमोदन के बिना ही विदेशी मुद्रा के अधिकृत डीलर निम्नाकित प्रेषण की अनुमति प्रदान कर सकते हैं -

क- अपने निर्देशो के परिपालन अथवा क्रियान्वयन के लिए भारतीय न्यायालयों द्वारा अन्य देशों को भुगतान।

एलियोनी का प्रेषण।

किराया अथवा अधिकार शुल्क का प्रेषण।

घ- विदेशी राजनायिको अथवा मिशनो द्वारा भारतीय राज्य व्यापार निगम को बेची गई आयातितकार की कीमत का प्रेषण।

ङ- भारतीय फर्म अथवा कम्पनी द्वारा विदेश मे कार्यरत अपने भारतीय कर्मचारियों को कर की कटौती करने के बाद बोनस का प्रेषण

च- भारतीय फर्म अथवा कम्पनी द्वारा विदेश में कार्यरत अपने ऐसे कर्मचारियो को भविष्य निधि एव पेशन की राशि का प्रेषण जो स्थायी रूप से भारत के निवासी है।

छ- भारतीय फर्म अथवा कम्पनी द्वारा अपने अनिवासी सचालकों को कमीशन एव पारिश्रमिक का प्रेषण।

ज- सामान्य बीमा निगम या उसकी सहायक सस्था द्वारा भारतीय निर्यातकर्ता के पक्ष में स्वीकृत समुद्री बीमा से सम्बन्धित क्षतिपूर्ति की राशि का विदेशी क्रेताओं जिसने भारतीय निर्यातकर्ता से माल खरीदा है को प्रेषण।

9 रिजर्व बैंक ने विदेशी मुद्रा के अधिकृत डीलरों को यह अनुमति भी प्रदान कर दी है कि व्यापार अथवा भ्रमण के सिलसिले में विदेश जाने वाला कोई भी भारतीय यदि बीमार हो जाये तो उसे अतिरिक्त विदेशी मुद्रा की सुविधा प्रदान की जा सकती है।

10 स्वास्थ्य की जॉच के लिए विदेश जाने वाले भारतीयो को अब अधिकृत डीलर 150 डालर प्रतिदिन की दर से 7 दिनो तक के लिए विदेशी मुद्रा विमुक्त कर सकते हैं।

11 विदेशी पर्यटकों के लिए काम कर रहे यात्रा-अभिकर्ता द्वारा विदेशी प्रेषण पर प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया गया है। पर्यटन लागत के 10 प्रतिशत के बराबर ऐसा प्रेषण अब अधिकृत डीलर ही अनुमोदित कर सकते हैं।

12- भारतीय पत्र-पत्रिकाओ, न्यूज एजेसियों आदि द्वारा विदेशी समाचार सामग्री, फोटोग्राफ, कार्टून आदि की लागत के निमित्त विदेशों को किये जाने वाले प्रेषण के लिए अब रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति आवश्यक नहीं है। अधिकृत डीलर के स्तर से ही ऐसा प्रेषण किया जा सकता है। इस तरह विदेशी विनिमय नियत्रण कानून को काफी हद तक प्रतिबन्धों से मुक्त करके लचीला, आसान और पारदर्शी बना दिया गया है। इसके फलस्वरूप विदेशी वित्त के स्वतन्त्र प्रवाह के मार्ग की रूकावटें काफी हद तक छूट हो गई है। विदेशी निवेशकों का विश्वास दृढ हुआ है और विदेशी व्यापार एव वित्त सम्बन्धी व्यवहार निरन्तर गतिमान हो रहे हैं।

ारत में विदेशी पूँजी को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी प्रयत्नः

भारत सरकार ने विदेशी पूँजी को भारत में प्रोत्साहित करने के लिए अग्र प्रयत्न किये हैं

जिनका विवरण इस प्रकार है -

1. भारतीय विनियोग केन्द्र की स्थापना ·

भारत मे विदेशी पूँजी को प्रोत्साहित करने के लिए दिल्ली मे एक विनियोग केन्द्र-भारतीय विनियोग केन्द्र के नाम से फरवरी 1961 मे स्थापित किया गया है जिसका कार्य विनियोग से सम्बन्धित पहलुओ का प्रचार एव प्रसार करना है।

2. कर सम्बन्धी छूट .

विदेशी एव देशी विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने आय-कर अधिनियम के अन्तर्गत अनेक छूटें देने की व्यवस्था की है जिसमें उपक्रमों के लिए अवकाश विकास, छूट, वैज्ञानिक अनुसधान, विदेशी तकनीक विशेषज्ञो को कर छूट आदि शामिल है।

3. दुहरे करारोपण की छूट :

करदाता को एक ही आय पर दो देशो मे कर न देना पडे इस उद्देश्य से भारत सरकार ने कई देशों से दुहरे करारोपण की छूट देने के लिए समझौते कर रखे हैं। इन देशों मे जर्मनी, अमरीका, स्वीडन, फिनलैण्ड, डेनमार्क आदि प्रमुख है।

4. विदेशी सहायता के सम्बन्ध में गारण्टी :

भारत सरकार व अन्य विशिष्ट वित्तीय सस्थाओ ने विदेशी निजी वित्तीय सस्थाओं को गारण्टी देकर विदेशी पूँजी को भारत में आने के लिए प्रोत्साहित किया है। यही नहीं, भारत सरकार के आश्वासन पर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, आदि ने भी विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में गारण्टी देकर विदेशी पूँजी को भारत में लाने के लिए प्रोत्साहित किया है।

5 अवमूल्यन :

भारत ने 1966 मे अवमूल्यन किया था। उसके कई उद्देश्यों में एक उद्देश्य भारत मे विदेशी पूँजी को अधिक मात्रा में आमन्त्रित करना था, साथ ही विदेशियों को इसका प्रलोभन भी देना था कि अपने लाभों को भारत के बाहर न ले जाकर भारत में ही पुनर्विनियोजित कर दें।

भारत के आर्थिक विकास में विदेशी सहायता का योगदान :

भारत के आर्थिक विकास में विदेशी सहायता ने भारी उद्योगों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका

निभायी है तथा खाद्य सकट हल करने, सिचाई एव बिजली क्षमता का विस्तार करने रेलवे का विकास करने, तकनीकी विकास एव प्रशिक्षण सुविधा प्राप्त करने मे काफी सहयोग दिया है। यदि विदेशी सहयोग को उसके लक्ष्यों के अनुसार पुनर्वलोकित करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि विदेशी ऋण अधिकतर उत्पादक वस्तुओ के उत्पादन में सहायता पहुँचाने अथवा आर्थिक सरचना को सुदृढ बनाने हेतु लिये गये हैं। विश्व बैंक से मिला ऋण मुख्य रूप से रेलवे, कृषि, दामोदर घाटी निगम, इस्पात उत्पादन और कोयला खानो के विकास के लिए था। अन्तर्राष्ट्रीय विकास सघ से मिले ऋण मुख्य रूप से रेलवे, सडको व सिचाई विकास के लिए थे। अमेरिका ने गेहूँ के ऋण के रूप मे सहायता के अतिरिक्त रेलवे, बिजली, कागज, एल्युमिनियम, उर्वरक, रेयन आदि की सहायता दी है। रूस से जो सहायता प्राप्त है, वह इस्पात सयन्त्रो एव तेल परिशोधनशालाओं के लिए है। जहाँ तक इस्पात सयन्त्रो का प्रश्न है, दुर्गापुर इस्पात-सयन्त्र के लिए इग्लैण्ड से और राउरकेला इस्पात सयत्र के लिए जर्मनी से और भिलाई तथा बोकारो के लिए रूस से सहायता मिली है। विदेशी सहयोग से भारत के आर्थिक विकास का सही-सही अनुमान लगाना कठिन है लेकिन यह कहा जा सकता है कि भारत के आर्थिक विकास में विदेशी सहयोग ने अपनी भूमिका निभायी है जो सक्षेप में इस प्रकार है

1 विदेशी सहयोग के माध्यम से विनियोग-स्तर में वृद्धि हुई है। प्रथम योजना के आरम्भ में वार्षिक विनियोग दर राष्ट्रीय आय का 5 प्रतिशत थी, किन्तु 1983-84 मे 25 प्रतिशत हो गई। विदेशी सहयोग का उपयोग खाद्य - सामग्रियो की कीमत में स्थायित्व लाने और कच्चे माल का आयात करने मे किया गया। कुल प्राप्त सहायता का लगभग आधा वस्तुओ के आयात के लिए प्रयोग में लाया गया, विशेषकर अनाज के रूप में। सहयोग का एक भाग कच्चे माल एव अतिरिक्त पुर्जों के आयात के लिए जिनकी देश में कमी थी, प्रयोग किया गया जिससे देश के उत्पादन मे वृद्धि हुई।

2 विदेशी सहयोग का प्रयोग सिचाई, शक्ति एव सडको के निर्माण मे किया गया। सिचाई एव शक्ति के ऊपर बहुत बडी मात्रा मे विदेशी सहायता का लगभग 4 प्रतिशत इस क्षेत्र पर व्यय किया गया है। जिसके फलस्वरूप विद्युत उत्पादन की क्षमता में कई गुनी वृद्धि हुई है।

3 भारत में कुल प्राप्त सहयोग 14 प्रतिशत यातायात पर व्यय किया गया है जिसमें से 12 प्रतिशत रेलवे परिवहन के विकास एव पुनर्वास पर है। इसके कारण आरम्भिक वर्षों में रेलवे परिवहन को पुन स्थापित करने तथा रेल के डिब्बों में वृद्धि करने और इजनों की मरम्मत

आदि में योगदान मिला है।[5]

4 आधारभूत एव मूल उद्योग जो कि आर्थिक विकास के लिए अति आवश्यक था, उसमे महत्वपूर्ण राष्ट्रो का सहयोग प्राप्त किया गया। 80 प्रतिशत से कुछ अधिक ही भाग इस्पात उद्योग की क्षमता एव निर्माण पर व्यय किया गया। जिससे इस्पात के उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। इस्पात सयन्त्रो में मुख्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र में राउरकेला, भिलाई और दुर्गापुर क्रमश पश्चिमी जर्मनी, सोवियत रूस एव इग्लैण्ड के सहयोग से स्थापित किये गये। इसके अतिरिक्त एशिया की बडी इस्पात-परियोजना बोकारो इस्पात सयन्त्र के लिए रूस से सहयोग प्राप्त है।

5 भारत की तकनीकी जानकारी व प्रबन्धकीय क्षमता को दूर करने में विदेशी सहयोग ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। विभिन्न विकसित देशों से तकनीकी व्यक्तियों को बुलाया गया और दूसरे देशों में प्रशिक्षण के लिए भारतीयों को भेजा गया। इसके अतिरिक्त इसने हमारे देश में बहुत सी प्रशिक्षण सस्थाओं की स्थापना मे योगदान दिया है। विदेशी विनिमय की आवश्यकता को पूरा करने में विदेशी सहयोग का प्रयोग किया गया है। विकासशील देशों में विदेशी विनिमय की समस्या जटिल होती है, क्योंकि आयात अधिक होते हैं। इस समस्या का समाधान विदेशी सहयोग के माध्यम से किया जा सकता है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त विदेशी सहयोग का भारत के सामाजिक जन-जीवन पर भी प्रभाव पडा है और सामाजिक विकास को सहायता मिली है। पी एल 480 आदि पश्चिमी देशों से मिलने वाली सहायता का झुकाव निजी क्षेत्र की ओर है। विदेशी सहयोग से मिश्रित अर्थव्यवस्था की घोषित आर्थिक नीति और सामाजिक वातावरण को स्थापित करने में सहायता मिली है।

लाभ-हानि का आकलन

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से प्राप्त होने वाले लाभों के कारण ही आज इन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विकासशील देशो के बीच प्रतिस्पर्धा चल रही है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से विकासशील देशों को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होने की आशा रहती है –

1 भौतिक पूँजी निर्माण मे सहायता मिलती है।

2 आधारिक सरचना वाले क्षेत्रों (सडक, रेल, बिजली इत्यादि) का विकास होता है, जिस पर

---

5 *मिश्र, जगदीश नारायण भरतीय अर्थव्यवस्था (10वाँ सस्करण) 1996, पृष्ठ सख्या-637*

अन्य सभी क्षेत्रों का विकास निर्भर करता है।

3 आधुनिक प्रौद्योगिकी का आगमन होता है।

4 मानव ससाधन और विशेषकर प्रबन्धकीय कुशलता का विकास होता है।

5 विदेशी व्यापार का विकास होता है।

6 उत्पादन, रोजगार तथा आय मे वृद्धि होती है।

7 बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के साथ प्रतिस्पर्धा के कारण देशी उद्यमियों की कार्यशैली और निपुणता मे सुधार होता है।

8 विदेशी ससाधन प्राप्त करने के लिए वाणिज्यिक ऋणो पर निर्भरता में कमी होती है।

विदेशी पूँजी निवेश मे कुछ दोष भी पाए जाते हैं, जिनमें निम्नाकित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं -

1 विदेशी कम्पनियों द्वारा उत्पादित वस्तुए उच्च आय वर्ग के लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप होती हैं और उपभोक्तावाद को भी बढावा मिलता है।

2 विदेशी कम्पनियों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली प्रौद्योगिकी पूँजी प्रधान होती हैं, न कि श्रम प्रधान फलत अतिरिक्त रोजगार के अवसरो का सृजन कम होता है।

3 विदेशी कम्पनियों द्वारा बहुत अधिक लाभ पर माल बेचे जाते हैं, अकुशल उत्पादन की दशा में भी अधिक लाभ कमाना सम्भव हो जाता है क्योकि इनके द्वारा जिन वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है उन वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं।

4 विदेशी कम्पनियॉ प्रतिबन्धात्मक व्यावसायिक व्यवहारों में भी सलिप्त रहती हैं, अपने देश के आयात कर्ताओं और निर्यात कर्ताओं के साथ मिलीभगत करके ये कम्पनियॉ उत्पादन में प्रयुक्त की जाने वाली आयातितवस्तुओं की लागत को कृत्रिम रूप से अधिक दिखाकर और निर्यात की कीमत को कम दिखाकर अपने वास्तविक लाभ को छिपा लेती हैं और कर वचना करने मे सफल हो जाती हैं।

5 देशी उद्यमो का विकास अवरूद्ध हो जाता है, क्योकि हर दृष्टि से शक्तिशाली विदेशी कम्पनियों के साथ प्रतिस्पर्धा करना देशी उद्यमियो के सामर्थ्य से बाहर होता है।

6 विदेशी कम्पनियो देशी उद्यमों के साथ सयुक्त उपक्रम चलाने में कम रूचि लेते हैं और पूर्णत अपने स्वामित्व में व्यावसायिक प्रतिष्ठानो की स्थापना करना चाहती हैं।

7 विदेशी कम्पनियों द्वारा स्थानीय पूँजी एव अन्य ससाधानों का दोहन किया जाता है, जिसका लाभ विदेशी कम्पनियों को ही प्राप्त होता है।

8 स्थानीय लोगों को प्रशिक्षण और रोजगार देने के प्रति विदेशी कम्पनियॉं उदासीन रहती हैं।

9 ये कम्पनियाँ अपने देश या तीसरे देशों मे निर्यात करने में रूचि नहीं लेती है और स्थानीय बाजार के लिए ही अधिकाश उत्पादन करती है

10 इन कम्पनियो की दिलचस्पी उपभोग सामग्रियों मे अधिक होती है पूँजीगत वस्तुओं और आधारिक सरचना वाले क्षेत्रो मे इनके द्वारा कम निवेश किया जाता है।

11 जिन देशों मे विदेशी कम्पनियाँ काम करती हैं, उन देशों की आर्थिक स्वतन्त्रता पर कुठाराघात होता है, क्योंकि ये बहुत शक्तिशाली होती हैं और इनके पास कई देशो के सकल राष्ट्रीय उत्पाद से भी अधिक सम्पदा होती है।

लेकिन विदेशी कम्पनियों पर अकुश लगाने के लिए तथा उनके व्यवहार में पारदर्शिता लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई नियम बनाए गये हैं और आचार सहिता का निर्माण किया गया है प्रत्येक देश की स्थिति अलग-अलग होती है। विदेशी कम्पनियो के गुण-दोषो के आधार पर अपनी राष्ट्रीय प्राथमिकताओ को ध्यान में रखते हुए विदेशी कम्पनियो के प्रवेश और निवेश के मामले मे प्रत्येक विकासशील देश को उपयुक्त निर्णय लेना चाहिए।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अंतर्वाह :

1994-95 में रिजर्व बैंक के स्रोत से तथा सरकारी स्रोत से कुल 872 मिलियन डालर का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में आगम हुआ था।

तालिका - 5.1

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अतर्वाह- देशवार

(मिलियन अमरीकी डालर)

देश	1994-95	1995-96	1996-97
मारीशस	196 70	507 30	846 40
अमरीका	202 80	194 60	241 60
जर्मनी	34 60	99 70	166 20
नीदरलैण्ड	44 70	49 80	123 70
जापान	94 90	60 90	96 70
सिगापुर	24.50	60 10	75 60
स्वीडन	18 00	2 10	61 10
कोरिया	12 00	23 90	57 90
यू के	143.50	70 90	54.20
अन्य	100 30	348 70	333 60
कुल	**872 00**	**1418.00**	**2057 00**

नोट *उपर्युक्त ऑकडे केवल नकदी अतर्वाह के द्योतक हैं। अनिवासी भारतीय प्रत्यक्ष निवेश जो रिजर्व बैक आफ इण्डिया के माध्यम से किया जाता है, उसे शामिल नहीं किया गया है क्योकि देशवार ब्यौरे उपलब्ध नहीं है।*[6]

तालिका - 5.2
विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अतर्वाह -उद्योगवार

(मिलियन अमरीकी डालर)

उद्योग	***1994-95***	***1995-96***	***1996-97***
इजीनियरी	131 6	251 9	730 2
रसायन एव सम्बद्ध उत्पाद	141 2	126 7	303 8
खाद्य एव दुग्ध उत्पाद	60 9	85 0	237 5
वित्त	97 7	270 0	217 0
इलेक्ट्रानिक्स एव विद्युत उपकरण	56 4	129 6	153 6
कम्प्यूटर	10 2	52 1	58 7
फार्मास्युटीकल्स	10 1	54 8	47 6
सेवाए	93 4	100 4	15 2
घरेलू उपकरण	108 3	0 5	15 1
अन्य	162 2	347 0	278 3
कुल	**872 0**	**1418 0**	**2057 0**

नोट *उपर्युक्त ऑकडे केवल नकदी अतर्वाह के द्योतक हैं, अनिवासी भारतीय प्रत्यक्ष निवेश जो रिजर्व बैक आफ इण्डिया के माध्यम से किया जाता है, उसे शामिल नहीं किया गया है क्योकि उद्योगवार व्यौरे उपलब्ध नहीं है।*[7]

जो वर्ष 1995-96 में बढकर 1418 मिलियन डालर हो गया। 1996-97 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मे तेजी से वृद्धि हुई इस वर्ष 2057 मिलियन डालर का आगम हुआ। सबसे अधिक मारीशस से 846 4 मिलियन डालर प्राप्त हुआ। इसके बाद क्रमश अमरीका से 241 6 मिलियन डालर नीदरलैण्ड से 123 7 मिलियन डालर तथा जापान से 96 7 मिलियन डालर प्राप्त हुआ।

---

6 मासिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 1998, पृष्ठ सख्या-264

7 मासिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण सितम्बर 1998, पृष्ठ सख्या-264

भारत मे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अन्य प्रमुख स्रोतो मे सिगापुर, स्वीडन, दक्षिण कोरिया तथा ब्रिटेन भी शामिल हैं।

तालिका - 5 3
श्रेणीवार विदेशी निवेश प्रवाह

(मिलियन अमरीकी डालर)

	1991 92	*1992 93*	*1993 94*	*1994 95*	*1995 96*	*1996-97*	*1997-98*
क- प्रत्यक्ष निवेश	129	315	586	1314	2133	2696	3197
अ- क भा रि बैं का का स्वाचालित	-	42	89	171	169	135	202
ब- एस आई ए /एफ आई पी बी माध्यम	66	222	280	701	1249	1922	2754
स- अनिवासी भारतीय 40 प्रतिशत और 100 प्रतिशत	63	51	217	44	2715	639	241
ख- पोर्टफोलियो निवेश	4	244	3567	3824	2748	3312	1601
अ- एफ आई आई	-	1	1665	1503	2009	1926	752
ब- यूरो इक्विटी	-	240	1520	2082	683	1366	645
स- अपटीय निधिया और अन्य	4	3	382	239	56	20	204
योग क एव ख	**133**	**559**	**4153**	**5138**	**4881**	**6008**	**4798**

स्रोत *आर्थिक समीक्षा भारत सरकार, 1997-1998, पृष्ठ सख्या-85*

तालिका से स्पष्ट है कि भारत में विदेशी निवेश की उर्ध्वगामी प्रवृत्ति जारी है जो वर्ष 1995-96 में 4881 मिलियन अमरीकी डालर से बढकर वर्ष 1996-97 में 6008 मिलियन अमरीकी डालर हो गया। वर्ष 1997-98 के दौरान अन्तर्प्रवाह 4798 मिलियन अमरीकी डालर था। यद्यपि हाल ही की अवधि मे पोर्टफोलियों प्रवाहो मे गिरावट होती रही है फिर भी प्रत्यक्ष और पोर्टफोलियो दोनो तरह के निवेश में निरन्तर वृद्धि होते रहने से विदेशी निवेश ऊँचा बना रहा।

पोर्टफोलियों प्रवाह (विदेशी सस्थागत निवेश, जी डी आर अपतटीय निधियॉ) वर्ष 1995-96 मे 2748 मिलियन अमरीकी डालर से वर्ष 1996-97 में 3312 मिलियन अमरीकी डालर हो गया। तथापि वर्ष 1997-98 में 1601 मिलियन अमरीकी डालर पर अपेक्षाकृत न्यून रहे।

तालिका 5 4
प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

वास्तविक अन्तर्प्रवाह बनाम अनुमोदन

जोड अनुमोदन	*1991*	*1992*	*1993*	*1994*	*1995*	*1996*	*1997*	*1991–97*
करोड रूपये	739	5257	11183	13590	37489	39453	53643	161359
मिलियन अमरीकी डालर	325	1781	3559	4332	11245	11142	14858	47242
वास्तविक अन्तर्प्रवाह करोड रूपए	351	675	1786	3009	6720	8431	11155	32127
मिलियन अमरीकी	155	233	574	958	2100	2383	3105	9508
डालर 47 रूपए अनुमोदन के प्रतिशत के रूप मे वास्तविक अन्तर्प्रवाह								
मि अमि डालर	7	13 1	16 1	22 1	18 7	21 4	20 9	20 1

* *नवम्बर, 1997 तक*

टिप्पणी *अनुमोदन और वास्तविक ऑकडो मे भारतीय रिजर्व बैक द्वारा अनुमोदित अनिवासी भारतीय प्रत्यक्ष निवेश शामिल है।*

स्रोत *आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 1997-98, पृष्ठ सख्या-85*

तालिका से स्पष्ट है कि जिस दर पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अनुमोदनों को वास्तविक अन्त प्रवाहों में रूपान्तरित किया गया है, उसमें सुधार हुआ है। अनुमोदन के अनुपात में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का वास्तविक अन्त प्रवाह 1995 और 1996 मे 18 7 प्रतिशत से बढकर 21 4 प्रतिशत हो गया और नवम्बर 1997 तक 20 9 प्रतिशत हो गया। इससे यह पता चलता है कि अनुमोदित योजनाओं के कार्यान्वयन के मार्ग में आने वाली अडचनो को हटाया जा रहा है। नीतिगत परिवेश में निरन्तर और सहज रूप से सुधार किए जाने के साथ-साथ अच्छी वृहत् आर्थिक नीतियों के रख-रखाव से निवेश के गतव्य स्थल के रूप में भारत के आकर्षण में वृद्धि हुई है।

तालिका 5 5
भारत मे कुल स्वीकृत पूँजी निवेश

(मिलियन अमरीकी डालर)

वर्ष	स्वीकृत	वास्तविक प्रवाह
1991	05 30	03 51
1992	38 90	06 75
1993	88 60	17 87
1994	141 90	29 82
1995	320 70	84 41
1996	361 50	84 41
1997	510 30	317 60

SOURCE . *NNS, 1996-97*

दिये गये ऑकडो से स्पष्ट है कि 1991 में 5 3 अरब रूपये मजूर हुए थे किन्तु वास्तविक प्रवाह उस समय 3 51 अरब रूपया ही हुआ, 1992 में 38 9 अरब रूपये मजूर हुए जबकि भारत में 6 75 अरब रूपये का उपयोग किया गया। 1993 में 88 6 अरब रूपये मजूर हुए हमारे देश मे उनका विनियोग 17 87 अरब रूपये ही हुआ। 1994 मे 141 9 अरब रूपये ही मजूर हुए, जबकि उनका विनियोग भारत मे 29 82 अरब रूपये ही किया। 1995 मे 320 7 अरब रूपये मँजूर हुए, भारत में उनका विनियोग 63 70 अरब रूपया ही किया गया। इस प्रकार इन ऑकडों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि जितने अरब रूपये के विदेशी पूँजी निवेश मजूर हुए हैं उनको बहुत ही विनियोग हो रहा है।

तालिका 5 6

भारत को द्विपक्षीय सहायता

(1 अप्रैल से 31 मई, 1998 तक प्राप्त देश। सस्थावार अनुदान)

देश	करोड रूपये में
इ इ सी अनुदान	10 03
यू यन एफ पी ए	9 47
नीदर लैण्ड्स	7 19
ब्रिटेन	6 70
अमेरिका	5 96
जर्मनी	4 81
स्वीडन	3 60
डेनमार्क	3 50
जापान	1 50
कनाडा	1 38
स्विटजरलैण्ड	1 37
यूनीसेफ	0 77

स्रोत *सहायता लेखा और लेखा परीक्षा प्रभाग, वित्त मत्रालय, 1997-98, पृष्ठ सष्या- 20*

तालिका से स्पष्ट है कि 31 मई 1998 तक यूरोपियन आर्थिक समुदाय का अनुदान अन्य देशों की अपेक्षा सर्वाधिक है और दूसरे स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सघ द्वारा प्रदान किया गया अनुदान है इसके अलावा भारत को द्विपक्षीय सहायता कई अन्य देशों द्वारा भी प्रदान किया गया है जो कि तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 5 7

भारत में विदेशी विनियोजको के नाम

(31 अगस्त, 1997)

देश	*बिलियन रूपये मे*
यूनाइटेड सोवियत अमेरिका	341 55
यूनाइटेड किगडम	82 10
मास्ट्रिष्ट	70 36
दक्षिण कोरिया	55 68
जापान	50 57
जर्मनी	49 78
कैमेन द्वीप	36 21
मलेशिया	33 40
आस्ट्रेलिया	31 92

स्रोत *उद्योग मत्रालय, 1997 (यू एन आई), पृष्ठ सख्या- 25*

तालिका से स्पष्ट है कि विकासशील देशो मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में सबसे अधिक योगदान सयुक्त राज्य अमेरिका का रहा। उसके बाद दूसरा स्थान यूनाइटेड किगडम का है, लेकिन यूनाइटेड किगडम का पॉच गुना सयुक्त राज्य अमेरिका विदेशी विनियोग के रूप मे योगदान है।

तालिका 5 8

विदेशी वाणिज्यिक उधार के अनुमोदनों की स्थिति

(मिलियन अमरीकी डालर)

क्षेत्र	***1996-97***	***1997-98***
विद्युत	1875	3014
दूरसचार	289	1493
नौवहन	146	210
नागर विमानन	46	373
पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस	783	230
रेलवे	144	179
वित्तीय सस्थाए	1502	795
पत्तन सडकें आदि	1	62
अन्य निर्यातकों सहित	3797	2358
जोड	**8583**	**8714**

स्रोत· *आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 1997-98, पृष्ठ सख्या- 87*

तालिका से स्पष्ट है कि वित्तीय वर्ष 1998-99 के लिए विदेशी वाणिज्यिक उधारों के आवटन हेतु ये प्रमुख क्षेत्र बने रहेगे। विदेशी वाणिज्यिक उधार देने वाली विकास वित्तीय सस्थाओ से भी अपने उप-उधारो के द्वारा माध्यम एव लघु इकाइयों की आवश्यकता को प्राथमिकता देने की अपेक्षा की जाती है। निवेश और आर्थिक गतिविधियों को समर्थन देने के लिए भारतीय उद्योग को आसानी से विदेशी निधियॉ उपलब्ध कराने तथा नीतियों एव कार्य विधियो में पारदर्शिता मे वृद्धि करने के प्रयोजन से विदेशी वाणिज्यिक उधार नीति मे भी परिवर्तन किये गये। नई नीति मे आधारभूत ढॉचा तथा बुनियादी क्षेत्रों एव निर्यात क्षेत्र की परियोजनाओं को ज्यादा प्राथमिकता दी गई है। तालिका मे अनुमोदनों का क्षेत्रवार विवरण दिया गया है।

तालिका 5 9

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की क्षेत्रवार स्वीकृतियॉ

(अगस्त 1991 से दिसम्बर 1997 तक)

क्षेत्र	*विदेशी प्रौद्योगिकी स्वीकृतियों की सख्या*	*विदेशी निवेश स्वीकृतियों की सख्या*	*स्वीकृत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (करोड रूपए)*	*कुल स्वीकृतियों में क्षेत्रीय हिस्सा (प्रतिशत)*
1- प्रमुख आधारभूत क्षेत्र*	614	977	86301	57 35
2- पूँजीगत माल और मशीनरी	2363	2362	14197	9 43
3- उपभोक्ता सामान	613	1438	21187	14 08
4- विविध उद्योग	1354	1315	14299	9 50
5- सेवाए	176	1228	14499	9 63
6- नीतिगत माल	4	0	0	0
जोड	**5124**	**7320**	**150483**	**100**

** प्रमुख और आधारभूत क्षेत्र मे फेरस और गैस फेरस धातुए विशेष धातुए ऊर्जा, सडके, पत्तन, तेल परिशोधन, दूर सचार, हवाई समुद्र परिवहन सीमेट और उर्वरक शामिल है।*

स्रोत *आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, 1997-98, पृष्ठ सख्या 101*

तालिका से स्पष्ट है कि अब तक स्वीकृत प्रत्यक्ष विदेशी निवेशो मे एक पृथक प्रमुख क्षेत्र की प्रवृत्ति दर्शाई गयी है। प्रमुख और आधारभूत क्षेत्र ने दिसम्बर, 1997 के अन्त तक 86301 करोड रूपये की राशि निर्मित कर पहली अगस्त, 1991 से अनुमोदित कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों का 57 4 प्रतिशत का योगदान किया है। कुल अनुमोदित विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों में उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र का भाग 14 1 प्रतिशत रहा है। जिसके पश्चात् सेवा क्षेत्र (9 6 प्रतिशत) और पूँजीगत माल क्षेत्र (9 4 प्रतिशत) का स्थान है।

तालिका 5 10
कुल विदेशी प्रौद्योगिकी करार और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अनुमोदन

वर्ष	*स्वीकृत एफ टी सी की सख्या*	*स्वीकृत एफ डी आई सख्या*	*करारो की स्वीकृत राशि (करोड रूपए)*	*वास्तविक अन्तर्वाह (करोड रूपए)*
1991	661	289	534	351
1992	828	692	3888	675
1993	691 *	785	8859	1787
1994	792	1062	14190	2982
1995	982	1355	32070	6370
1996	744	1559	36150	8440
1997	660	1665	54891	12036
जोड	**5358**	**7407**	**150579***	**32642**

** जी डी आर एफ सी सी बी के लिए 16186 करोड रूपये मे 51 प्रस्ताव शामिल है।*

SOURCE *Economic Survey Govt of India 1997-98 Page No 100*

विदेशी निवेश से सम्बद्ध प्रवृत्तिया निरन्तर पर्याप्त रूप से आशाजनक बनी रही, स्वीकृत विदेशी प्रौद्योगिकी सहयोग तथा तालिका में दिये गये प्रत्यक्ष विदेशी निवेशी प्रस्तावों में दिसम्बर 1997 तक क्रमश 5358 और 7407 तक की वृद्धि हुई और जिसमें 16,186 करोड रूपये की राशि निहित है। स्वीकृत विदेशी निवेश की कुल राशि जिसके सम्बन्ध में कार्यवाही की जा रही है 1,50,579 करोड रूपये है। वास्तविक अन्तर्प्रवाह 32642 करोड रूपये है।

तालिका 5.11
विदेशी सहायता की प्राप्ति एव ऋण अदायगी

प्राप्ति करोड रू में			**मूलधन का भुगतान करोड रू में**			**ब्याज का भुगतान करोड रू में**		
स्रोत	***93-94***	***94-95***	**स्रोत**	***93-94***	***94-95***	**स्रोत**	***93-94***	***94-95***
ऋण	2106	3250	ऋण	2388	2575	ऋण	1822	1972
अनुदान	254	194	गैर सरकारी ऋण	127	166	गैर सरकारी ऋण	234	261
गैर सरकारी ऋण	559	35						
कुल योग	**2919**	**3803**	**कुल योग**	**2515**	**2741**	**कुल योग**	**2056**	**2233**

स्रोत्र *नेशनल न्यूज सर्विस 1996-97*

तालिका से स्पष्ट है कि 1993-94 मे कुल प्राप्ति 2919 करोड रूपये रहा जबकि मूलधन का भुगतान 2515 करोड रूपये करने के साथ 2056 करोड रूपये ब्याज के रूप में भुगतान करना पडा। इसी प्रकार 1994-95 में कुल प्राप्ति 3803 करोड रूपये रहा जबकि मूलधन का भुगतान 2741 करोड रूपये करने के साथ-साथ 2233 करोड रूपये ब्याज का भूगतान करना पडा।

तालिका 5.12

इटली तथा ब्रिटेन द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

वर्ष	इटली द्वारा प्रत्यक्ष पूँजी निवेश (*मिलियन रु में*)	ब्रिटेन द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (*मिलियन रु में*)
1991	178	321 00
1992	894	1176 70
1993	1174	6227 30
1994	3909	12991.50
1995	4603	17258 60
1996	7389	15245 99
1997	893	28689.25
कुल	**27080**	**81910 34**

SOURCE *NNS, 1996-1997*

दिये गये ऑकडो से स्पष्ट है कि 1991 में इटली द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 178 मिलियन रुपये हुआ, 1992 मे 894 मिलियन रुपये हुआ, 1993 में 1174 मिलियन रुपये हुआ, 1994 में 3909 मिलियन रुपया हुआ, 1995 में 4603 मिलियन रुपये हुआ, 1996 में 9389 मिलियन रुपये हुआ, 1995 में 4603 मिलियन रुपये हुआ, 1996 में 7389 मिलियन रुपये हुआ और 1997 मे 8933 मिलियन रुपये हुआ इस प्रकार ऑकडो को देखने से स्पष्ट है कि विदेशी निवेश में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

दिये गये आँकडो से यह प्रतीत होता है कि ब्रिटेन द्वारा भारत में प्रत्यक्ष पूँजी निवेश शुरूआत में धीरे- धीरे और उसके बाद तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। इस प्रकार भारत में ब्रिटेन का स्वीकृत कुल प्रत्यक्ष पूँजी निवेश 81910 34 मिलियन रूपये है।

दुष्परिणाम:

आर्थिक विकास हेतु पूँजी की आवश्यकता होती है। अप्रयुक्त ससाधनों का पूर्ण सदुपयोग करने तथा देशी बचत को उन्मुख करने के लिए भी पूँजी की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विकासशील देश को गरीबी की दलदल से देश को निकालने के लिए जिस विशाल मात्रा मे पूँजी के प्राथमिक विनियोग की आवश्यकता है उसकी पूर्ति सिर्फ घरेलू ससाधनों से करना सभव नहीं है। उसे विदेशी सहायता से ही पूरा किया जा सकता है। विदेशी पूँजी, रियायती सहायता तथा गैर रियायती सहायता के रूप में या विदेशी निवेश के रूप में प्राप्त होती है। जहॉ अनुदान तथा कम ब्याज दर व लम्बी

भुगतान अवधि वाले ऋण रियायती सहायता के रूप मे प्राप्त होते है, वहीं विदेशी वाणिज्यिक ऋण, विदेशो से बाजार दरो पर ऋण तथा अप्रवासी भारतीयो से प्राप्त जमा राशियॉ और रियायती सहायता के रूप में प्राप्त होते हैं। इसके अलावा विभिन्न भारतीय कम्पनियॉ विदेशी कम्पनियों के साथ तकनीकी समझौते करती है या विदेशी पूॅजीपति भारतीय उद्यमों में अपना धन निवेश करते हैं।

विदेशी पूॅजी का मुद्दा लम्बे औपनिवेशक शासन को झेलने तथा विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे निवेश प्रवाह की जगह वाघ्य सहायता पर बल दिये जाने के कारण काफी सवेदनशील रहा है। यद्यपि समय-समय पर विदेशी पूॅजी की महत्ता और जरूरत को रेखाकित किया जाता रहा है। तथापि अभी तक इस दिशा में कोई विशेष पहल नहीं की गई। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्व स्तर पर वैश्वीकरण की तरफ बढती प्रवृत्ति और भारत में लगातार उत्पन्न होते आर्थिक सकटों से निपटने के लिए नई आर्थिक नीति के तहत आर्थिक उदारीकरण पर जोर दिया जाने लगा। 1991 की नई औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषता भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी पूॅजी के लिए खोलना था। भारत की वर्तमान 5 से 6 प्रतिशत की विकास की दर को 7 से 8 प्रतिशत से अधिक करने के लिए विदेशी पूॅजी जरूरी है। विदेशी पूॅजी की आवश्यकता न केवल बचत विनियोग अतराल को पूरा करने के लिए है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में टिके रहने और कार्य सस्कृति को उन्मुख बनाये रखने के लिए भी आवश्यक है, विशेषकर आधारभूत उद्योगो के लिए विदेशी पूॅजी की काफी आवश्यकता है जिसमें अगले दस वर्षों में 200 बिलियन डालर विदेशी विनियोग की जरूरत होगी।

विदेशी पूॅजी का प्रवाह :

विदेशी पूॅजी के प्रवाह में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह विनियोग या तो पूर्ण स्वामित्व में या तो सयुक्त उद्यम के रूप में होता है। उसके मुख्य सोत है 1 रिजर्व बैंक द्वारा स्वचलित स्वीकृति, 2 सरकारी स्वीकृति, जब कोई बहुराष्ट्रीय कम्पनी 51 प्रतिशत से अधिक स्वामित्व रखना चाहती है तो उसे औद्योगिक नीति मे शामिल 35 वरीयता वाले उद्योगों के बाहर के उद्योग में निवेश करना चाहती है तो उसे औद्योगिक स्वीकृति का सचिवालय (Secretariat of Industrial Approval SIA) या विदेशी विनियोग सम्बर्द्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board FIPB) से स्वीकृत लेनी पड़ती है।

पोर्टफोलियो विनियोग द्वितीय बाजार में किया जाता है। यह उत्पादक गतिविधियो में सीधा शामिल नहीं होता है। यह विनियोग निम्न रूपो में होता है -

1 ग्लोबल डिपोजिटरी प्राप्तियॉ (GDRs), 2 विदेशी सस्थागत विनियोग (FII$_S$) 3 ऑफशोर और अन्य कोष भारत में अनिवासी भारतीयो द्धारा निवेश वाह्‌य वित्त का प्रमुख स्रोत है। अनिवासियों के लिए विनियोग के कई स्रोत है जैसे

विभिन्न योजना में जमा करना[8] ·

1 Foreign Currency Non- Resident Banks Scheme

2 Non- Resident [External] RupeeAccount Scheme

3 Non Resident [Non Repatriable] Rupee Deposits Scheme

इन योजनाओ का उद्‌देश्य अनिवासी भारतीयो को भारत में पूॅजी निवेश हेतु उत्साहित करना है।

प्रत्यक्ष विनियोग योजना .

अनिवासी भारतीय प्रत्यक्ष इक्विटी के साथ निवेश कर सकते है। 1991 मे उदारीकरण की नीति को अपनाये जाने के साथ ही विदेशी पूॅजी को आकार्षित करने हेतु दो महत्वपूर्ण नीतियों पर बल दिया गया है। नई औद्योगिक नीति, 1991 मे उच्च वरीयता प्राप्त 35 उद्योगों में विदेशी कम्पनियों को बहुमत के साथ इक्विटी सहभागिता की छूट दी गई। इसके साथ ही फेरा कानून में सशोधन किया गया। इन नीतियों को अनेक दूसरे सुधारों जैसे प्रशुल्क सरचना को तार्किक बनाना, आयात मे छूट, चालू खाते मे रूपये की परिवर्तनीयता, वित्तीय क्षेत्र में सुधार, एकाधिकार प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार (एम आर टी पी) अधिनियम को सरल बनाना, औद्योगिक लाइसेंसिग पद्धति में सुधार, अनेक उद्योगों में 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग की स्वीकृति के लिए एक खिडकी की व्यवस्था, यूरो इश्यू निर्देशिका और विदेशी सस्थागत निवेश हेतु दिशा निर्देश आदि से मद्‌द प्रदान की गई।

विदेशी पूॅजी को आकार्षित करने के लिए भारत ने विदेशी कम्पनियों के साथ द्विपक्षीय विनियोग समझौते (बी आई टी) पर अमल करना शुरू किया है। अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रास और इटली के साथ ऐसे समझौते किये जा रहे हैं ताकि निवेशकों का विश्वास बढ सके। एनरान समझौते में इस आधार को समावेश किया गया था। इस समझौते को शुरू करने के पीछे यह तर्क दिया जा रहा है कि अतर्राष्ट्रीय स्तर पर विदेशी पूॅजी निवेश को सरक्षण देने का कोई स्वीकृत पैमाना नहीं है। बहुधा ऐसी शिकायतें की जाती हैं कि विदेशी उद्योग और सस्थागत निवेशकों की तुलना में भारतीय उद्योग और सस्थागत निवेशकों के साथ भेदभाव किया जाता है। विकसित देशों द्वारा गैट प्रशुल्क बाधाऍ जैसे-

---

8 मासिक पत्रिका प्रतियोगिता किरण, जनवरी 1998, पृष्ठ सख्या- 56

बाल मजदूर, मानवाधिकार, पर्यावरण की क्षति आदि विषयो को आधार बनाकर समय-समय पर बाधाएँ खडी की जाती हैं, जिससे भारतीय निर्यात प्रभावित होते हैं। एशिया टाईगर कहे जाने वाले एशियाई देशो को 70 के दशक मे अपने निर्यात को बढाने मे इस तरह के विपरीत परिस्थितियों का सामना नहीं करना पडा था, लेकिन भारत के लिए इस प्रकार की गैट प्रशुल्कीय बॉधाए भविष्य में इसे आगे बढने के लिए कठिन प्रतियोगिता के लिए विवश करेगी। इसी भारतीय उद्योगो के लिए देश में पूर्व से चली आ रही नीतियॉ और कार्यशैली भी क्षति पहुँचा रही है। इनमें उच्च ब्याज दर, जटिल कर सरचना, तकनीकी कार्य कुशलता के बेहतर क्रियान्वयन मे अक्षमता, लाल फीताशाही और लम्बी प्रशासनिक प्रक्रिया आदि बिन्दु शामिल हैं।

आर्थिक सुधारों के बाद से विदेशी पूँजी और भुगतान सतुलन का परिदृश्य

1 निर्यात दर मे 18 से 20 प्रतिशत की वृद्धि उत्साहवर्धक है।
2 आयात मे वृद्धि दर निर्यात से ज्यादा है, लेकिन इसकी दिशा सकारात्मक है।
3 भुगतान सतुलन परिदृश्य में अधिक लचीलापन आया है।
4 चालू खाते का घाटा नियत्रित है।
5 1993-94 और 1994-95 के दौरान इक्विटी से सम्बन्धित पूँजी प्रवाह काफी बढा है।
6 वास्तविक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ रहा है जो एक स्वस्थ वृद्धि की ओर सकेत करता है।
7 1993-94 में विदेशी मुद्रा कोष 10 मिलियन डालर था, जबकि 1994-95 में यह 8 मिलियन डालर रहा। वर्तमान मे इसकी स्थिति सतोष जनक कही जा सकती है।

तालिका 5 13

विदेशी सस्थागत पूँजी निवेश और विदेशी मुद्रा कोष

1997	*मिलियन डालर*	*बिलियन डालर*
जनवरी	89.3	19 85
फरवरी	88 8	19 70
मार्च	189 8	22 37
अप्रैल	148 5	22 68
मई	199 6	24 14
जून	362 9	25 40
जुलाई	274 2	26 02
अगस्त	149 8	26 43
सितम्बर	174 6	25 70
अक्टूबर	178 9	26.24
नवम्बर	148 7	24.38
दिसम्बर	172.1	24.50

स्रोत *नेशनल न्यूज सर्विस, 1997*

आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रम शुरू करने के बाद भारत सरकार ने विदेशी पूँजी निवेश को व्यापक महत्व देते हुए आवश्यक कदम उठाये,लेकिन राजनीतिक अनिश्चित्ता के कारण विदेशी निवेश की मनोवृत्ति बुरी तरह प्रभावित हुई। विश्व स्तर पर तेजी से फैलती नयी व्यवस्था के प्रति आशान्वित नहीं है। भारत में विदेशी निवेश सकल घरेलू उत्पाद के 15 प्रतिशत के बराबर है। साथ ही साथ स्वदेशी निवेश लगभग 26 प्रतिशत के बराबर होगा। इस वर्ष के आरम्भ में 8 93 करोड डालर का विदेशी सस्थागत पूँजी निवेश हुआ, जबकि 15 दिसम्बर 1997 तक सस्थागत पूँजी निवेश का स्तर गिरकर नकारात्मक 17 21 करोड डालर हो गया। इस वर्ष जून में सस्थागत विदेशी पूँजी निवेश 36 29 करोड डालर का था। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए विदेशी पूँजी एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया था, लेकिन जहाँ तक वर्ष 1997 का प्रश्न है तो इस दौरान विदेशी निवेशको ने निवेश गतिविधियो की तरफ मजबूती से कदम नहीं उठाया।

अन्तर्राष्ट्रीय कारोबार विशेषकर आयात-निर्यात के क्षेत्र में मुद्रा विनिमय दर महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साथ ही साथ अर्थव्यवस्था में सुधार का एक महत्वपूर्ण घटक भी है। वर्ष 1995 के अन्त में इस वर्ष से अगस्त तक यानी पूरे 20 महीने की अवधि के दौरान डालर के सापेक्ष रूपये की विनिमय दर लगभग एक जगह ही स्थिर रही। जनवरी माह से ही रूपये में लगभग 6 माह तक मामूली उतार-चढाव आता रहा, लेकिन इसके बाद स्थितियों ने प्रतिकूल रूख अपनाना शुरू किया जिसके चलते दिसम्बर 1997 तक रूपया 39.27 के स्तर पर पहुँच गया, जबकि जनवरी के अन्त में रूपये की विनिमय दर - 36 05 रूपये थी। रूपये में गिरावट को रोकने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने बार-बार हस्तक्षेप किया और उसमें स्थिरता बनाये रखने के लिए कई उपाय भी तैयार किये। रूपये के मूल्य में गिरावट से अर्थव्यवस्था के लिए बाधक कुछ और समस्याओं को साधने में भी सहायता मिलती है। इनमें सबसे प्रमुख है सरकार का राजकोषीय घाटा जो जगातार बढता जा रहा है। इस वर्ष अप्रैल और अक्टूबर के बीच की अवधि में हुआ प्रत्यक्ष कर सग्रह पिछले वर्ष के बराबर भी नहीं हो पाया और जिन लक्ष्यों के आधार पर चिदम्बरम् ने वर्ष 1997-98 के घाटे के लिए अपने आकलन तैयार किये थे। वह उनके मुकाबले काफी कम रहा।

औद्योगिक मदी रूपये के विनिमय दर मे व्यापाक उतार-चढाव, विश्व स्तर पर आयी माग में कमी से सबसे अधिक प्रभाव विदेश व्यापार पर ही पडा। वर्ष के आरम्भ में 390.2 करोड डालर का आयात हुआ, जबकि निर्यात के मामले में यह राशि 286 करोड़ डालर थी। अक्टूबर माह में आयात और निर्यात क्रमश 324 4 करोड डालर और 306 4 करोड डालर के स्तर तक पहुँच गये। इस वर्ष

आयात के क्षेत्र में गिरावट का सिलसिला बना रहा, जबकि निर्यात के मामले में उतार -चढाव की स्थिति देखी गयी।

हमारा अनुमान है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियों में छायी मदी का पूरा प्रभाव भारत के कारोबार पर पडा। वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था मे आयात-निर्यात महत्वपूर्ण योगदान करता है, लेकिन चालू वर्ष के आयात-निर्यात के मोर्चे पर असफलता ही हाथ लगी है। निर्यात अधिक होने से विदेशी मुद्रा आय में वृद्धि की सभावनाए बनती हैं, परन्तु वर्ष 1997 में तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद आयात के क्षेत्र में अपेक्षाकृत दर्ज नहीं की जा सकी है।

क्या विदेशी पूँजी घरेलू बचत का विकल्प है .

वास्तव मे घरेलू बचत के अभाव मे वृद्धियुक्त घरेलू पूँजी का निर्माण नगण्य होता है। विदेशी पूँजी घरेलू बचत का प्रतिपूरक हो सकती है। सतही रूप से इस वास्तविकता से इकार नहीं किया जा सकता कि लाभाश का अपने मातृ देश में भेज देना निवेशित देश कि बचत के लिए अपकारी होता है, लेकिन यह उतना ही सच है कोई भी विदेशी पूँजी को बिना किसी लागत के आकार्षित नही किया जा सकता है। विदेशी पूँजी से आशय सिर्फ मौद्रिक प्रवाह से नहीं है बल्कि इसमें तकनीक, गणना विधि नई खोज आदि भी शामिल होती है अर्थात विदेशी पूँजी में वित्तीय निवेश के साथ-साथ औद्योगिक निवेश भी आता है। भारत वर्तमान में कुल बचत के 2 प्रतिशत तक ही विदेशी बचत पर निर्भर है। इसे भविष्य मे 6 से 7 प्रतिशत कोषो के स्वतत्र प्रवाह तक होना जरूरी है। इस तरह घरेलू बचत में वृद्धि आमदनी में वृद्धि होने पर हो सकती है और इसके लिए विदेशी पूँजी का प्रवाह रोजगार वृद्धि, आय सृजन और आधारभूत उद्योगों को बढाने वाला होना चाहिए।

यद्यपि देश को आर्थिक स्थायित्व देने के लिए विदेशी पूँजी का आगमन जरूरी है, लेकिन अपनी जरूरतों विशेषकर आधारभूत उद्योगों के विकास की समस्या को पूरी तरह विदेशी निवेश के सहारे छोडना घातक हो सकता है। विदेशी पूँजी से तात्कालिक वृद्धि हो सकती है जबकि दीर्घकालीन वृद्धि के लिए अपनी स्थापित क्षमता, कार्य कुशलता को स्तरीय बनाना जरूरी होगा। भारत को बढते वित्तीय घाटा को रोकने के साथ-साथ बहुविकल्पीय व्यापार कार्य योजना को अपनाना होगा ताकि गैर प्रशुल्क बाधाओं को कम करने में सहायता मिल सके। विश्व के बदलते आर्थिक परिवेश में देशों के बीच निवेश को आकार्षित करने के लिए काफी प्रबल प्रतिस्पर्धा चल रही है। अत विदेशी पूँजी को आकार्षित करने के लिए आर्थिक सुधारों की गति को तेज करना होगा। चीन की तुलना में भारत में

विदेशी पूँजी का प्रवाह कम है। अत एनरान जैसे विवादो से बचते हुए उपयुक्त नीतियो को कार्यरूप देने की जरूरत है।

भारतीय सदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि एक सौ मिलियन मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओ के बावजूद देश कि 65 से अधिक जनसख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। उनका देश कृषि है और बहुत हद तक वे ग्रामीण उद्योगो पर निर्भर है। वे उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति करने मे सक्षम हैं, लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढते प्रभाव से यह व्यवस्था चरमरा रही है। यह प्रवृत्ति भविष्य के लिए घातक हो सकती है। अत सरकार के लिए जरूरी है कि वह एकसी नीतियों और कार्यक्रमों पर जोर दे जिससे देश के अर्थतन्त्र को मजबूत किया जा सके और आर्थिक परिवर्तन के लिए मजबूत आधार का निर्माण हो सके। तभी देश विश्व स्तर एक आर्थिक शक्ति बन सकता है। इसके अभाव मे आर्थिक शक्ति नहीं बन सकता है। इसके अभाव में आर्थिक परतन्त्रता और कर्जों के जाल में फसने का खतरा हमेशा बना रहेगा।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वजह से देश को होने वाला नफा नुकसान बहस के लिए वाकई एक गम्भीर मुद्दा है, लेकिन चौबीस कैरट की इस खरी बात को इतना खींचा जा चुका है कि यह मुद्दा सामने आते ही हम में से कईयों को उबासी आने लगती हैं। हालाकि विश्लेषकों ने समय-समय पर अपनी बात रखने में कोई कसर नहीं छोडी, लेकिन अब तक उनके पास ऑख खोलने वाले भारतीय उदाहरणों का टोटा था। अपने तर्कों की पुष्टि करने के लिए उनके पास सिवाय मैक्सिको की डूबती अर्थव्यवस्था जैसे कुछ एक बहुराष्ट्रीय और ईस्ट इण्डिया कम्पनी जैसे घिसे पिटे देसी उदाहरणों के अलावा और कुछ नहीं था, लेकिन भला हो सरकार के उदाहरणों के अलावा और कुछ नहीं था। लेकिन भला हो सरकार के उदारवादी रवैये का जिसके कारण देश में हो रहे अधाधुध विदेशी निवेश के दुष्परिणामों की अब झडी लग गई है। थम्स अप का मामला पुराना पड चुका है जिसके मालिक चौहान बधुओ को सिर्फ दुनिया जानती है, बहुराष्ट्रीय कम्पनी से प्रतिस्पर्धा के डर के कारण इसे कोका कोला के हाथों बेच दिया था, तब भी जानकारों ने 'मत बेचो चौहान' की गुहार लगाई थी, लेकिन बात पल्ले नहीं पडी थी। आज कोका कोला पिट चुका है और रमेश चौहान इस कम्पनी के सिर्फ चीफ बॉटलर हैं। टाटा ऑयल मिल्स की बात भी जाने दीजिए, 1993 में जिसका बहुराष्ट्रीय कम्पनी हिदुस्तान ने अधिग्रहण कर लिया था।

भारतीयों की याददाश्त बहुत कमजोर होती है, हमारे राजनीतिकों के बीच लोकप्रिय - इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए मैं और ताजा मिसालें आपके सामने पेश कर रहा हूँ, डी सी एम देयबू

सयुक्त उपक्रम मे दक्षिण कोरियाई कम्पनी देयबू ने अगस्त 1996 में अपनी हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से बढाकर 77 5 प्रतिशत तक कर ली।[9] डी सी एम की हिस्सेदारी 34 प्रतिशत से मात्र 10 प्रतिशत तक सिमट गई। अब इस उपक्रम से भारतीय कम्पनी डी सी एम का नाम भी औपचारिक रूप से हटाया जा चुका है। यह आरोप कि डी सी एम ने मुनाफे के लिए अपने 24 प्रतिशत शेयर देयबू को बेच दिये, गलत है। अगर डी सी एम समूह ऐसा न करता तो उसे उसी साल नवम्बर में आने वाले 700 करोड रुपये के राइट डब्लू में अपना हिस्सा पाने के लिए 200 करोड रूपये जुटाने पडते जो कि समूह के बूते से बाहर था। यदि डी सी एम अपने शेयर नहीं बेचता तो उसे दोहरी मार पडती। बिना किसी लाभ के उसकी हिस्सेदारी स्वत घट जाती, फिर मरता क्या न करता। अब देयबू इस उपक्रम पर अपने एकक्षत्र राज की बदौलत न केवल भारतीय बाजार का दोहन करके 75 प्रतिशत से भी ज्यादा मुनाफा अपने साथ ले जायेगी इस प्लेटफार्म का इस्तेमाल कर एशियाई देशों में निर्यात की सभावनाओ को हथिया लेगी। एशियन पेंटस एक और ताजा उदाहरण है। देश की बेहतरीन प्रबघन वाली यह कम्पनी जिस तरह सभावित अधिग्रहण के चक्रब्यूह में फॅसी है उसे देखकर कारपोरेट जगत में बेचैनी छा गयी है। इसके चार प्रमोटरो में से एक अतुल चोकसे ने अपने हिस्से के 9 1 प्रतिशत शेयर गुपचुप तरीके से बहुराष्ट्रीय कम्पनी आइ सी आइ को बेच इसे अधिक्रमण के कगार पर पहुँचा दिया। गौरतलब है कि कम्पनी अधिनियम कगार पर पहुॅचा दिया। गौरतलब है कि कम्पनी अधिनियम 1956 में भारतीय कम्पनियों को सभावित अधिग्रहण से बचाने के लिए कोई पुख्ता इतजाम नहीं है। इसके लिए भारी मात्रा में नगद की आवश्यकता पडती है जिसकी पूर्ति विदेशी बैकों के बिना सभव नहीं है, लेकिन भारतीय कम्पनियॉ उनसे ऋण नहीं ले सकती हैं। जबकि ऐसे ही मामलों में अनेक उन्नत देशों ने अपने उद्योगपतियों का मनोबल बढाने और देश की लाज रखने के लिए सकट के समय अपनी कम्पनियों का साथ दिया है। पिछले साल सब कोरियाई कम्पनी देयूब ने फ्रास की थामसन कम्पनी के अधिग्रहण का प्रयास किया तो ऐसा समझा जाता है कि वहॉ की सरकार ने इसे असफल करने के लिए परदे के पीछे से अहम् भूमिका निभाई क्योंकि थामसन ब्राण्ड एक तरह फ्रास की पहचान के साथ जुडा हुआ है। मारूति सुजूकी का चालू विवाद भी काबिले गौर है। भारत सरकार ने मारूति कार बनाने के लिए 1982 में इस जापानी कपनी की 26 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ सयुक्त उपक्रम शुरू किया था। कभी उगली पकड कर देश में आई यह कम्पनी आज 50 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ भारत सरकार के सिर पर चढ़ गई है और अपनी पसन्द के अध्यक्ष की नियुक्त पर अडी हुई है।

---

9 दैनिक समाचार जागरण, 8 नवम्बर 1997, पृष्ठ सख्या-6

पिछले एक दशक में जापान से अनावश्यक आयात के जरिये इसने देश कि अर्थव्यवस्था को कितनी चोट पहुँचाई है, यह तथ्य अब उजागर हो चुका है। बेशक विदेशी निवेश किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी टॉनिक है, लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था को यह टॉनिक इतने बेढगे तरीके से पिलाया गया है कि उसके साइड इफेक्ट से भारतीय उद्योग हलकान हुआ जा रहा है। ठीक है, हमने पेप्सी का स्वागत किया। शीतल पेय के क्षेत्र मे, लेकिन उसे क्या हक है बीका नेरी भुजिया का। क्या हक है हिन्दुस्तान लीवर को आटा बनाने का ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ ऐसे पारपरिक उत्पादो के बसे-बसाए बाजार में प्रवेश कर देश के लघु उद्योगो को चौपट कर रही है। ऐसे आलोचक जिनका मानना है कि विदेशी कम्पनियो को उनके माफिक छूट न देने से उनके मिजाज बिगड सकते है। उन्हे शायद इस खबर से भारी सदमा पहुँचेगा कि भारत मे तथा कथित सर्वाधिक उत्पीडन का शिकार मानी जाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी एनरान ने तमाम दुख झेलने के बावजूद भी एक अरब डालर की लागत वाली सात अन्य विद्युत परियोजनाए शुरू करने के जिए भारत सरकार से अनुमति मागी है।

एनरान का यह उत्साह उन राजनीतिको के लिए भी एक सबक है जो बात बेबात विदेशी कम्पनियो के आगे झुक जाते है। इस सम्बन्ध में उद्योग मत्री मुरासोली मारन ने तमाम दबावो के बावजूद सुजुकी की मनमानी पर अकुश लगाकर काबिले तारीफ काम किया है। इससे सरकार को 320 करोड रूपया का अतिरिक्त लाभ हुआ। वरना यही पैसा सुजुकी की जेब में जा रहा था। आज सुजुकी की 53 प्रतिशत विदेशी आय सिर्फ मारूति के जरिए होती है इसलिए यह शक पालना मूर्खता होगी कि सुजुकी वापस जा सकती है। अभी भी उपरोक्त सारे परिणाम एक बडे गोरख धन्धे की बानगी भर है।[10] यदि समझ मे आए तो अच्छा और न आए तो और भी अच्छा, क्योकि गहरी चोट की पक्की याददाश्त देश के भविष्य के लिए और भी फायदेमद साबित होगी।

आम चुनाव में प्रचार के दौरान कुछ राजनीतिक दलो के विदेशी कम्पनियों पर अकुश लगाये जाने की वकालत के बावजूद विदेशी निवेशकों के निवेश में बढोत्तरी हुई है। गत माह लगभग सम्पन्न हुए 12वीं लोकसभा के आम चुनाव मे 35 छोटे-बडे राजनैतिक दलों ने हिस्सा लिया। चुनावी भाषणों के दौरान देश में जारी आर्थिक सुधारो के प्रति इनमें से कुछ दलों का विचार वामपथी और कई के प्रति दक्षिणपथी थे। हालाकि आम चुनाव में किसी भी राजनैतिक दल अथवा गठबन्धन को केन्द्र में सरकार गठित करने के लिए स्पष्ट आदेश नहीं मिला हैं। जिसे देखते हुए अब नयी सरकार को चलाने के लिए वर्तमान में कोई न्यूनतम साझा कार्यक्रम का ही सहारा लेना पडेगा। सन् 2002 तक भारत में पूँजी

---

10 दैनिक समाचार · दैनिक जागरण, 8 नवम्बर 1997, पृष्ठ सख्या-6

बाजार की तस्वीर क्या होगी। पूँजी बाजार का विकास कुछ इस तरह की बुलदियो को छुएगा कि लोगो के दिमाग मे भूचाल आ जायेगा। ऐसा उछाल जिसकी कल्पना आज तक किसी ने नहीं की होगी। पूँजी बाजार में प्रतिदिन का कारोबार 40,000 करोड रूपये तक पहुँच जायेगा। ऐसा कैसे हो जायेगा इसे समझने के लिए हमें याददाश्त के भूले-बिसरे गलियारों में भटकना होगा। पिछले 6, साल में पूँजी बाजार का टर्न ओवर 10 गुना बढा है। 1991 मे 300 करोड से बढकर 1997 मे 3000 करोड रूपये हो गया।[11] आर्थिक सुधारों के चलते यह 10000 करोड रूपये हो जायेगा। यह अगले पाँच साल मे होना ही है। पूँजी बाजार के इर्द-गिर्द हर घटना एक खास डिजाइन के तहत मोड ले रही है। यद्यपि यह डिजाइन किसी ने तैयार नहीं की है। मेरे विचार से पूँजी बाजार हाल में क्रान्तिकारी दौर से गुजरा है जिसे अपने ढग से चार चरणो मे विभाजित किया जा सकता है।

पहला चरण 1978-84 पूँजी बाजार के अम्युदय का काल है। यह चरण 1978 में शुरू हुआ। यही वक्त था जब रिलायन्स ग्रुप ने अपने प्रथम पब्लिक इश्यू के साथ पूँजी बाजार में प्रवेश किया। हकीकत यह है कि इस प्रथम चरण मे हम विश्व के विकसित पूँजी बाजार से 50 से 60 साल पीछे थे। उस समय सब कुछ अटकलों पर आधारित था और मुठ्ठीभर दलाल जैसे हरकिशन दास बाजार को नियत्रित करते थे एल आई सी और यू टी आई ने पूँजी बाजार को गतिशीलता अवश्य प्रदान की और यह क्रम 1984 तक चलता रहा।

दूसरा चरण 1985-91 उस समय शुरू हुआ जब श्री राजीव गाँधी ने इस देश की बागडोर सभाली डी लाइसेंसिग के जरिये उन्हें उदारीकरण की पहली किरण बिखेरी। यह वास्तव में शेयर मार्केट में एक नयी सस्कृति का अम्युदय था। जब उद्योगों ने अपनी गतिविधियो को विस्तारित करने और पूँजी बाजार की परिधि में पॉव पसारने की बात सोची। अपनी परियोजनाओ के वित्त पोषण के लिए उन्हें शेयर बाजार की जरूरत महसूस हुई। इस तरह कम से कम 23 पब्लिक इश्यू बाजार मे उतरे। इससे पूर्व किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम जैसे - बैंक आदि पूँजी बाजार के मैदान उतरेगें। इस अवधि के लोगों को आश्चर्य करते हुए तमाम छोटे बडे उपक्रमों ने जैसे पूँजी बाजार के इतिहास में इस अवधि में सर्वाधिक कार्य हुआ।

तीसरे चरण में पूँजी बाजार ने 1992 में प्रवेश किया। इस चरण के शुरूआती दौर में देश की आर्थिक स्थिति डावाडोल और बडी दयनीय स्थिति थी। सरकार का खजाना खाली था। यहाँ तक कि सोना गिरवी रखना पडा। अर्थतन्त्र लगभग चरमरा चुका था। यह वही नाजुक दौर था जब डा0

---

11 दैनिक समाचार आज, 3 नवम्बर 1997, पृष्ठ सख्या-4

मनमोहन सिह ने अपने आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के सिद्धान्तो के साथ अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे आये। जब देश दिवालियापन के कगार पर खडा था तब उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। भारत भारी पूँजी निवेश का भूखा था, लेकिन दूर-दूर तक कहीं आशा की किरण नहीं दिखाई दे रही थी। उसी समय लगभग आधा दर्जन विदेशी कम्पनियों ने भारत की धरती पर कदम रखा। उस समय तक किसी ने मार्टिन क्यूरी या स्मिथ न्यू कोर्ट का नाम सुना भी नहीं था। उस समय इन कम्पनियो को पूँजी निवेश का भरपूर अवसर मिला और 3 करोड रूपये की राशि निवेशित की गई। इस अबोध में पूँजी बाजार मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पुरानी लिक्विडेटेड प्रणाली के स्थान पर कप्यूटर प्रणाली अस्तिव में आ गयी। चिल्ला-चिल्लाकर व्यापार की जगह 'बोल्ट' ने ले ली। जितने इश्यू बाजार मे आये उल्लेखनीय थे। बाजार का विस्तार दिन दूनी रात चौगुनी गति से होने लगा।

बाद मे पूँजी निवेश की माग और पेपर की आपूर्ति मे खायी पैदा हो गयी। यह वह वक्त था जब पान वाले और सब्जी बिक्रेता भी अपनी कमाई में बचत कर पैसा पूँजी बाजार में लगा रहे थें। निवेशक समुदाय तेजी से विस्तृत हो रहा था। चारों तरफ से परिवर्तन की आधी उठ रही थी, लेकिन एक व्यवधान जल्दी ही सामने आया। इसकी वजह यह थी कि निवेश के मौके भविष्य से जुडे थे और निवेशक अतीत से आये थे। यही फर्क था नतीजा यह हुआ कि इक्विटी मार्केट अपना आकर्षण खोने लगा। इससे निवेश में भारी कमी आयी और लिक्विडिटी का अभाव पैदा हो गया। कम्पनियॉ फण्ड के लिए अन्य स्रोतों की ओर से मुडने लगीं। एक अजीब सी स्थिति पैदा हो गयी। बडी परियोजनाओं का वित्त पोषण करने में विदेशी कम्पनियॉ भी कोताही बरतने लगीं। जी डी आर विकल्प के रूप में सर्वोत्तम रास्ता था। ऋण वित्त पोषण की एक नयी अवधारणा ने जन्म लिया।

1997 में पूँजी बाजार में परिवर्तन एक खास डिजाइन के तहत हो रहे है। दो साल पहले हर आदमी डिपाजिट्री की अवधारणा के बारे में नाक-भौं सिकोडता नजर आता था। आज यह एक वास्तविकता बन चुकी है। एफ आई एव आई आई एम एफ के लिए डी मैटोरियलाइजेशन का मतलब हो गया। इसका बाजार पर व्यापक प्रभाव पडेगा क्योंकि बाजार पर इनका 60-65 प्रतिशत वर्चस्व है। जो 35 प्रतिशत फुटकर निवेशक है उन्हे भी उसी रास्ते पर चलना होगा, क्योंकि यह उनकी मजबूरी होगी। बहुत जल्दी ही पूरा देश छोटे निवेशकों से भर जायेगा और पेपरलेस मार्केट की शक्ल आख्तियार कर लेगा।

भारत नै पिछले सालों में जो कुछ खोया उसे अल्प समय में प्राप्त भी कर लिया। 1978 से 2002 यानी 25 साल में हम इतना कुछ कर पायेंगे जितना विकसित अर्थव्यस्था वाले देशों में 75 साल

में भी नहीं हुआ होगा। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत की आगे बढने की रफ्तार सात आठ गुना ज्यादा है।

भारतीय आर्थिक बाजार का नियोजन काल बीस साल तक चला है यानी 1978 से 1997 तक। अगले पॉच वर्ष काफी महत्वपूर्ण होगे क्योंकि तब हमारी डिजाइनिग हमारी प्लानिग रग लायेगी। हमे अपनी मेहनत का पुरस्कार मिलेगा। यदि ऐसे समय मे भारतीय विदेशी धन की अहमियत को नहीं समझेगें उनकी जटिलताओ और विसगतियो को नहीं भायेगे तो एक तरह की आर्थिक दासता का माहौल पैदा होगा। यह भारत के हित में वह फूॅक-फूॅक कर आगे पॉव बढाये।

दावोस में विश्व आर्थिक मच (विश्व ब्यापार सगठन) के हुए एक और सम्मेलन में प्रधानमत्री एच डी देवगौडा ने जिस तरह से एक बार फिर विदेशी कम्पनियो को भारत में निवेश के लिए प्रेरित किया और उन्हे नये सब्ज बाग दिखाये उसका आने वाले वक्त पर कितना असर होगा इस पर अभी से कुछ कह पाना तो बेमानी होगी,किन्तु यह बात पूरे विश्वास व प्रमाण के साथ कही जा सकती है कि भारत मे मोर्चा सरकार के प्रदारूढ होने के बाद व्यवस्था या माहौल में ऐसा कोई बडा परिवर्तन नहीं हुआ है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को नया सदेश दिया जाये कि वे भारत आयें और उन्हे निवेश करने मे प्रक्रिया सम्बन्धी जो समस्याए झेलनी पडी थीं या अन्य दिक्कतों का सामना अतीत में करना पडा था वे सब समाप्त कर दी गयी है। कामचोरी, भ्रष्टाचार, व विलम्ब का कमोबेश माहौल आज भी वैसा ही है जैसा पूर्व नरसिहराव सरकार के जमाने में थे। हालाकि सयुक्त मोर्चा सरकार ने निर्णय लेने के स्तर पर कार्य, सस्कृति बनाने के मोर्चें पर और विदेशी निवेशकों की तमाम व्यावहारिक समस्याओ के समाधान के लिए तमाम ऐसे महत्वपूर्ण निर्णय लिए जिससे उनकी आलोचना इस हद तक हुई कि सरकार की आर्थिक सप्रभुता को बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के हवाले करने या उसे गिरवीं रखने के प्रयास करने जैसे गभीर आरोप लगाये गये और सरकार को विवादों के कटघरे में खडा भी होना पडा। यही नहीं कई आलोचकों ने तो यहाँ कह डाला कि राव सरकार के वित्तमत्री रहे डॉ० मनमोहन सिह ने दस दिशा में जो उपलब्धि हासिल की थी उन्हे वर्तमान वित्तमत्री पी चिदम्बरम् ने मटिया मेट कर दिया। नि सदेह आलोचना में न तो इतनी सच्चाई है और न ही इतनी दम है कि उसे सहज मान लिया जाए किन्तु इस वास्तविकता से भी मुकर जाना सभव नहीं कि भारत में किसी भी योजना को असली जामा पहनाने में जिस तरह की दिक्कतें पहले थी और जैसी माहौल में सडाध थी उसमें बृद्वि ही हुई है जिसका सबसे प्रमाण यह है कि सालाना 10 अरब डालर के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लक्ष्य के विपरीत पिछले छ वर्षो के दौरान मात्र 1.9 अरब डालर का वास्तविक निवेश हो पाया।

सरकारी ऑकडे यह बताते है कि उदारीकरण की शुरूआत वाले वर्ष 1991 में जहॉ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 0 3 अरब डालर था वह 1995-96 में बढकर 10 6 अरब डालर हो गया किन्तु वास्तविकता यह है कि यह राशि मात्र 1 9 डालर तक ही बढ पायी। सरकारी दावे व वास्तविक निवेश मे इतना बडा अन्तर इस कारण है कि विदेशी निवेशी सम्बर्द्धन बोर्ड के पास जो निवेश सम्बन्धी आवेदन पत्र आते हैं और निवेशक जिस तरह से अपनी योजना को प्रेषित करते है उसकी मोटे तौर पर गिनती कर ली जाती है लेकिन क्रियान्वयन के स्तर पर अनेक निवेशक कम्पनियॉ पॉव खींच लेती है और चीन, ताइवान, कोरिया जैसे मुल्को में चली जाती है। सही मायने मे यही सबसे बडी समस्या है और दुर्भाग्य से इसी समस्या के निदान के सम्बन्ध में न तो नरसिहा राव सरकार ने सोचा और न ही वर्तमान सरकार इसे गभीरता से ले रही है। वर्तमान सरकार न इसे गभीरता से ले रही है। वर्तमान सरकार ने हालाकि इस तरफ तमाम कदम उठाये,लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा कोई कदम उस लक्ष्य तक नहीं पहुच सका जहॉ निवेश सम्बन्धी प्रस्ताव की मजूरी व देश में धन आने के बीच के लम्बे व अनिश्चित अतराल को कम किया जा सकें। आज भी जो विदेशी कपनियॉँ भारत में निवेश करने की इच्छुक है उन्हे अपनी परियोजना को असली जामा पहनाने के लिए महीने साल का इन्तजार करना पडता है।

वर्ष 1994-95 के ऑकडे तो रोचक कहानी कहते है। निश्चित रूप से यह वर्ष अर्थव्यस्था के लिए एक अच्छा साल कहा जा सकता है। जिसमें सकल घरेलू उत्पाद बढकर 6 3 प्रतिशत हो गया। मानसून अनुकूल रहने से कृषि उपज 4 6 प्रतिशत व औद्योगिक उत्पादन 8 6 प्रतिशत की दर से बढ़ा, लेकिन वास्तविक विदेशी निवेश 1 2 अरब डालर हुआ जो पूर्व वर्ष की तुलना में तीन गुना जरूर ज्यादा था, लेकिन स्वीकृत राशि का यह मात्र 43 प्रतिशत ही रहा। यही नहीं इस माहौल को वर्ष 1995 के आते-आते एक झटका एनरान् परियोजना की बावत उपजे विवाद से लगा। उस विवाद में दोषी कौन था कौन नहीं यह इतना महत्वपूर्ण नहीं कि तमाम् महत्वपूर्ण पहलुओं को परियोजना की स्वीकृति के समय नजर अदाज किया गया। पुर्नसमीक्षा के बाद एनरान् विवाद तो ठडा कर लिया गया किन्तु उस कमजोरी पर लगाम लगाये जाने की हिमाकत नहीं की गयी जिससे को जेंट्रिक्स, केंटकी, फाईड चिकेन, मैक डोनाल्ड, पेप्सी परियोजनाओं के विवाद आकाश चढकर बोले और इन सबका दुष्प्रभाव यह पडा कि जो निवेशक भारत आने की तैयारी कर रहे थे, उन्हे दूसरे देशों में सभावनाए तलाशने को विवश होना पडा।

ऑकडे बताते है कि वर्ष 1994 में जापान का भारत में निवेश जहॉ 69 प्रतिशत का हिस्सा था

वह सितम्बर 1996 में घटकर मात्र 10 प्रतिशत रह गया और इसी तरह जर्मनी की निवेश सम्बन्धी हिस्सेदारी 24 प्रतिशत की तुलना मे घटकर 17 प्रतिशत रह गयी।[12] अमेरिका, ब्रिटेन, रूस की तरफ निवेश में कमी तो कोई विशेष नहीं आयी, किन्तु इनकी तरफ से वृद्धि की जो उम्मीद की जा रही थी उस पर विपरीत असर पडता दिखायी पडा। विदेशी निवेश के तौर तरीकों पर राजनीतिक दलों की विचारधारा में मत भिन्नता होना स्वाभाविक है और समूचे विश्व में इस तरह के मतभेद समय-समय पर उभरते दिखायी पडते है किन्तु ऐसा तो कदाचित ही कहीं देखने को मिले कि जनमत से चुनी गई सरकार के फैसले के विरूद्ध इस तरह का बावेला मचा दिया जाये कि प्रोमोटरो को भाग खडे होने को विवश हो जाना पडे। ऐसा कहने का मतलब कदापि यह भी नहीं कि निर्वाचित सरकार द्वारा इस सम्बन्ध मे या अन्य किसी मामले में लिये गये निर्णय को आख मूँदकर मान ही लिया जाये। विरोध या आन्दोलन की भी मर्यादा होती है और वह उसी सीमा में रहकर ही किया जाना चाहिए,लेकिन दुर्भाग्य से इस पर किसी भी राजनीतिक दल का रूख सामाजिक नहीं दिखता।

विरोधी दलों को क्या कहा जाये, सयुक्त मोर्चा सरकार मे शामिल वामपथी घटकों की विचारधारा इस मामले पर प्रधानमत्री देवगौडा, वित्तमत्री चितम्बरम् से मेल नहीं खाती, लेकिन इसका तात्पर्य यह कत्तई नहीं निकलता कि वामपथी अपनी मागों को मनवाने के लिए सड़क पर उतर पडे। माहौल की यह भी एक बडी कमजोरी है जिस पर अत्यधिक ध्यान देने की जरूरत है।

केन्द्रीय मत्रिमण्डल ने देश में हवाई अड्डों की सख्या बढाने के उद्देश्य से शुक्रवार (07-11-97) को जो निर्णय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विदेशी निवेश से सम्बन्धित लिए हैं वे वास्तव में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए 74 प्रतिशत तक विदेशी पूँजी निवेश की खुली छूट दी है और 100 प्रतिशत तक निवेश के प्रस्ताव को मजूरी देने का जो निर्णय लिया गया है। उससे यही स्पष्ट होता है कि सरकार हवाई अड्डों की सख्या बढाने के महत्व को समझ रही हैं परन्तु इसके लिए भारी पूँजी की आवश्यकता है और सरकार उतनी पूँजी लगाने की स्थिति में नहीं है, दूसरी ओर जो लोग पूँजी लगा सकते हैं उनके लिए पूँजी निवेश का एक अच्छा अवसर हो सकता है, असल में हवाई अड्डो के निर्माण में काम मिलने की गारण्टी होगी। तो वे भी उत्साह दिखायेंगे, यदि विदेशी पूँजी निवेशकर्ता इस क्षेत्र में पूँजी निवेश करते हैं तो उन्हे भी यह सुविधा रहेगी कि वे अपने ढग से रख-रखाव व प्रबन्धन करे। उस सिलसिले में यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि हवाई अड्डों की सुविधाए बढने के साथ-साथ बेरोजगारी की समस्या हल करने में मद्द मिलेगी। इस तरह सरकार की

---

12 दैनिक समाचार दैनिक जागरण, 13 फरवरी 1997, पृष्ठ सख्या-6

इस नीति से अर्थव्यवस्था को कुल मिलाकर लाभ जरूर होगा। जरूरत यह है कि पूँजी निवेश हो और हवाई अड्डो की निर्माण के लिए केन्द्र एव राज्य सरकार भूमि उपलब्ध कराये। यह ठीक है कि देश में उदारीकरण के माध्यम से बहुराष्ट्रीय निगमों को न तो सही परिप्रेक्ष्य में लिया गया है और न ही उसे अपेक्षित दिशा दी गयी और यह सौ फीसदी सही है कि उदारीकरण की नीति की तरफ देश इतना आगे बढ चुका है जहाँ से पॉव खींचना कत्तई सभव नहीं। ऐसी दशा में सभी राजनीतिक दलों को एक ऐसी सार्वभौमिक विचारधारा को अपनाना चाहिए जिससे कम से कम जगहसाई की स्थिति तो न आने पाये। सत्ता पक्ष व विपक्ष लोकतन्त्र के दो घर कहे गये हैं तो उसका यह मतलब नहीं कि वे एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए ही काम करें।

दावोस में प्रधानमत्री देवगौडा ने जिस अदाज से विदेशी कम्पनियों के अन्दर भारत के प्रति विश्वास बढाने के प्रयास किये उसका हो सकता है कुछ लाभ मिल जाये, किन्तु यदि माहौल, भ्रष्टाचार, कामचोरी व बेवजह की देर करने जैसी कमजोरियों पर अकुश न लगा तो यह आज का मामूली फायदा कल के लिए बडा नुकसान साबित हो सकता है। इसमे कोई दो राय नहीं कि अधिकाश बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ चीन की तुलना में भारत को ज्यादा पसद करती है,किन्तु जब उनके सामने राजनीतिक भ्रष्टाचार की समस्याओं के अलावा आधारभूत सुविधाओं का बडा अभाव देखना पडता है तब वे व्यावसायिक दृष्टिकोण से अन्यत्र जाने को ठीक मानती हैं यह स्थिति निश्चित रूप से शुरू जरूर हो चुकी है और इसमें गति भी आ चुकी है,लेकिन यह नहीं मान लिया जाये कि कुछ करना मुमकिन नहीं है। लक्ष्य कठिन है,लेकिन स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के लिए इसे पाना अब जरूरी हो गया है।

वर्ष 1990-91 की अपेक्षा अब भारतीय अर्थव्यवस्था काफी आगे निकल चुकी है। आज विदेशी मुद्रा भण्डार इतना बढ चुका है कि 8 महीनो का आयात बिल उससे चुकाया जा सकता है। चालू खाते मे घाटा अब महज केवल सकल घरेलू उत्पाद का 0 5 फीसदी है जो पहले 2 से 2.5 फीसदी पर था। यह एक शुभ सकेत है विदेशी सस्थागत निवेशक देश में 1 7 बिलियन डालर का निवेश कर चुके हैं। इसके अलावा भारतीय कम्पनियॉ भी विदेशी पूँजी बाजार से 2.5 बिलियन डालर की पूँजी उगाह चुकी है। विदेशी मुद्रा का यह प्रवाह बना रहेगा।

आज के ऑकडे के अनुसार औद्योगिक विकास दर 8 फीसदी रहेगा। इस साल के बजट में निर्माण क्षेत्र में विकास दर बढाने के लिए विशेष उपाय किये गये थे उनका प्रतिफल मिलना शुरू हो गया। इस साल कृषि उत्पादन में 3.5 फीसदी वृद्धि हो गयी। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में चौतरफा सुधार

विकास दर, निवेश दर, बचत दर आदि मे सबसे बढोत्तरी हुई। मार्च 1997 मे विदेशी मुद्रा भडार 22 4 अरब डालर तथा अक्टूबर 1997 मे 26 1 अरब डालर है इस प्रकार सात महीने में 16 5 प्रतिशत विदेशी मुद्रा भडार की वृद्धि हुई।

भारत मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का वर्चस्व एक वस्तुगत यथार्थ है। इसके वर्चस्व का एक रूप तो यह है कि देश के आबादी का एक बडा हिस्सा इनके उत्पादों का अभ्यस्त हो गया है। चाय की चुस्की से सुबह की शुरूआत करने वाला यह तब का ब्रुकब्राण्ड या लिप्टन को गले लगाकर ही छोडता है। दॉत साफ करने के लिए कोलगेट या क्लोजअप, स्नान करने के लिए लक्स, रेक्सोना, लिरिल, बाल धोने के लिए सनसिल्क या क्लीनिक, कपडा धोने के लिए सर्फ आदि इन सबकी जरूरते हैं। लाइफव्याय, सनलाइट, एवरेडी, बैटरी, डालडा वनस्पति, विमको माचिस, बनावटी हार्लिक्स, विक्स बेपोरब तो जाने कब से आचालिक क्षेत्रो तक अपना सिक्का जमाये हुए है। इनके वर्चस्व का स्वरूप है गैट समझौता, जिसका सार है सरकारों पर प्रतिबन्ध और अन्य कम्पनियो से लगे प्रतिबन्धो से इन्हें मुक्त कर देना अर्थात इन्हे लूटने की खुली छूट दे देना। गैट समझौता और इनके उत्पादों के फैलाव के मद्देनजर यह कहा जा सकता है कि ये कम्पनियॉ हमारी अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार प्रभावी हो गयी है कि ये इसे निर्देशित करने लगी हैं। सच तो यह है कि इतनी भीमकाय और शक्तिशाली है कि विश्व बाजार के समस्त कारोबार की प्रत्यक्ष परोक्ष सचालिका बन गई है। विश्व बाजार में इन कम्पनियों का निवेश दो हजार अरब डालर हो गया है। इनकी बिक्री का वार्षिक लेखा-जोखा कई राष्ट्रों के सालना बजट से कहीं ज्यादा है।

दुनिया के प्राय सभी देशों में इनकी व्यापारिक इकाइयॉ स्थापित हैं। ये अपनी भूमिका में आयात-निर्यात का सीमाकन, पूॅजी प्रक्षेपण और उन्नतदेशों की जूठन तकनीकी का क्रय विक्रय करती है। ये तीसरी दुनिया के देशों में प्रदूषण लाने वाले या अत्यधिक मलबा छोडने वाले उद्योगों को स्थापित करती है और इनका उत्पादन उन्नत देशों की जरूरत के अनुसार देती है। ये इस दुनिया के देशों के सार्वजनिक क्षेत्रों का दोहन करने के लिए उनके प्रबन्धकों को इच्छित सुविधाओं से सतुष्टकर अपने अनुकूल निर्वाह करवाती है। इनकी इस प्रकार की मनोवृत्ति से प्रशासनिक भ्रष्टाचार फैलता है और एक समानान्तर व्यवस्था को जन्म देती है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विदेशी पूॅजी निवेश के लिए आमत्रित की जा रही है क्योंकि देश में पूॅजी का सकट है और विदेशी पूँजी के बिना यह सकट हल नहीं किया जा सकता। सकट टालने के लिए विदेशी पूँजी को आमत्रित करने वालों ने पूर्व अनुभव का कितना उपयोग किया यह काबिले गौर है।

स्पष्ट शब्दो मे कहा जाय तो पूर्वानुमानो का दर किनार कर बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को व्यापार सम्बर्द्धन और बाजार सस्थापक की छूट दी गयी है जो अत्यन्त गम्भीर स्थिति है। बहुराष्ट्रीय निगमो के वर्ष 1956-75 के वित्त स्रोतों का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि इस पूरी अवधि में इन निगमो ने मात्र 5 4 प्रतिशत का निवेश किया और शेष भाग घरेलू स्रोतों से ही एकत्र कर लिया। वर्ष 1981 से 89 के बीच हुए पूॅजी निवेश और उसी बीच के उन कम्पनियों के लाभ, रायल्टी, एव टेक्नोलाजी शुल्क के रूप में देश से बाहर जाने वाली पूॅजी का लेखा-जोखा तैयार करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि विदेशी पूॅजी निवेश का सौदा एकदम घाटे का रहा है इसीलिए पी आर ब्रम्हमानन्द, के एन राज जैसे अर्थशास्त्रियों ने विदेशी पूॅजी की सहभागिता के प्रति आभार किया है।

कहना न होगा कि विदेशी पूॅजी के व्यापारिक अनुभवों का एकदम नजर अन्दाज कर और उसके चरित्र की व्यवस्था किये बिना निवेश को बढावा देने के लिए खुलेपन और उदारीकरण की चरित्र बनी। इस नीति के लागू होने के बावजूद निवेश में कुछ खास बढोत्तरी हुई हो ऐसा नहीं है। अलबत्ता देश 20 हजार से अधिक विदेशी कम्पनियों का चारागाह अवश्य बन गया है। बडा आश्चर्य तो यह है कि इस नीति के लागू होने के तीन वर्ष पहले का विश्लेषण करने से तीन वर्ष के बाद से अधिक है। जो इस बात का सकेत है कि इन कम्पनियों ने अपनी आदत के अनुसार निवेश कम किया है।

विदेशी पूॅजी निवेश का उद्देश्य पूॅजी निर्माण दर में वृद्धि करना है। इस तथ्य पर विचार करें तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका और स्पष्ट हो जाती है। ऑकडों के अनुसार वर्ष 1950-51 से 1988-89 तक पूॅजी निर्माण दर 10 4 प्रतिशत से 21 0 प्रतिशत तक रहा है। यही स्थिति 1990-91 तक बनी रही ऐसा कहा जा सकता है,किन्तु विदेशी कम्पनियों को खुली छूट देने के बाद 1991-92, 1992-93 एव 1993-94 में यह राष्ट्रीय उत्पाद का औसतन 15 प्रतिशत हो गयी और इधर इसमें गिरावट जारी है। पूॅजी निर्माण सम्बन्धी ये ऑकडे एक ऐसी अर्थव्यवस्था के ऑकडे है जो पारस्परिक अवधारणा है। यह अर्थव्यवस्था विकास दर मे वृद्धि करके सामाजिक विकास का लक्ष्य आर्थिक विकास में स्वत निहित है और यदि पूॅजी निर्माण दर बढती है तो सामाजिक विकास स्वत पूर्ण मान लिया जाता है।

पाया था जबकि 34950 करोड रूपये का विदेशी निवेश की मजूरी दी गई थीं।

इससे वास्तविक विदेशी निवेश की स्थिति और गति का चित्र साफ हो जाता है। जबकि इस निवेश को प्राप्त करने के लिए बहुराष्ट्रीय निगमो की वे सभी मागे मान ली गयी है जो उन्होने चाही थी। इस निगमों की चाहत को पूरा करने के लिए हाल के वर्षों के सरकारी बजट मे उत्पादन कर,निगम कर, आयात-निर्यात कर आदि मे काफी रियायत दी गई है। जिसके कारण आम जनता के कार्यक्रमों मे कटौती करनी पडी है। यहॉ तक कि शिक्षा एव स्वास्थ्य सेवाओं पर भी रहम नहीं किया गया है। इतना ही नहीं विदेशी मुद्रा नियमन कानून फेरा एव एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार कानून इन्हीं कम्पनियों के दबाव में पूरी तरह बदले जा चुके है। कम्पनियों मे विदेशी हिस्सेदारी की शर्त मे भी ढील दी जा चुकी है। जिसका लाभ यहॉ पहले से मौजूद विदेशी कम्पनियो को खूब प्राप्त हुआ है और उन्होने अपना हिस्सा 40 से 51%कर लिया है।

विकासशील देशो मे आर्थिक विकास का ढॉंचा परम्परागत बना हुआ है। इन देशो में सदैव पूॅजी का अभाव बना हुआ है जिसके कारण इन देशों मे कृषि के लिए अत्यधिक भूमि होते हुए भी विकसित देशो की तुलना मे घिसे-पिटे तथा पुराने निम्न साधनो के प्रयोग से उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं किया जा सका और पूॅजीगत तथा सस्थागत ससाधनों के अभाव मे कच्चे माल का पर्याप्त स्रोत होते हुए भी उसका शोषण एव उपयुक्त उपयोग नहीं उपलब्ध किया जा सका, परिणामस्वरूप ये देश सम्पन्न होते हुए भी विश्व पटल पर निर्धन बने हुए हैं। विश्व के पिछडे तथा विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक विषमता को दूर करने मे विदेशी पूॅजी की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। भारत को विदेशी पूॅजी निम्नलिखित रूप से प्राप्त होती है।

अ प्रत्यक्ष निवेश,बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निवेश, **ब-** अप्रत्यक्ष निवेश, विदेशियों द्वारा भारतीय कम्पनियों के हिस्से अथवा डिबेंचर (ऋण पत्र) खरीदना।, **स-** विदेशी पूॅजी जिसे विदेशी सहायता अथवा बाध्य सहायता भी कहते है। यह पूॅजी विश्व बैंक (आई बी आर डी),अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम एफ) तथा अन्य सयुक्त राष्ट्र एजेंन्सियों के अनुदानों तथा ऋण के रूप में प्राप्त होती हैं।

भारत में विदेशी पूॅंजी का आगमन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से ही हो गया था औद्योगीकरण प्रारम्भ होने पर भारत में लोहा एव इस्पात,बीमा एव बैंकिग, रेल यातायात, जहाजरानी, चाय, दियासलाई, कागज, कृषि सम्बन्धी उपकरण आदि उद्योगों के विकास में विदेशी पूॅजी की मुख्य

भूमिका रही है। विदेशी शासकों द्वारा भारत का आर्थिक एव सामाजिक शोषण ही नहीं किया गया बल्कि राष्ट्रहित के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। विदेशियों द्वारा जो पूँजी निवेश की नीति अपनायी गयी वह भारत के प्रतिकूल रही। अग्रेज शासको द्वारा भारतीयो को उद्योगो में स्वामित्व एव प्रबन्धन का हिस्सा लेने का अवसर नहीं दिया गया। बैंकिग, बीमा, यातायात एव आयात-निर्यात उद्योगों मे तो भारतीय पूँजी और ब्रिटिश पूँजी में सीधी प्रतियोगिता होने लगी थी, इसका भारतीय उपक्रमों पर प्रतिकूल प्रभाव पडा।

स्वतन्त्रता के कुछ ही वर्ष पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था से विदेशी पूँजी का बहिर्गमन प्रारम्भ हो गया क्योकि विदेशी पूँजीपतियो को यह आशका थी कि स्वतन्त्रता के बाद यदि उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया गया तो उसके हित असुरक्षित हो जायेगे। विदेशी उद्यमियों ने अपने अशों को भारतीयों के हाथों बेंचना शुरू कर दिया। कम्पनियों का स्वामित्व एव प्रबन्ध भारतीय व्यापारियों के हाथ में आ गया परन्तु पूँजी बहिर्गमन से भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पडा।

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने सोवियत रूस की यात्रा की और देश के आर्थिक विकास हेतु एक मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव डाली। अप्रैल 1951 को देश में प्रथम पचवर्षीय योजना प्रारम्भ की गयी जो मूलत कृषि विकास पर केन्द्रित थी। विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति की घोषणा 6 अप्रैल 1948 के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में और फिर अप्रैल 1956 की सविधान सभा में प्रधानमत्री के बयान में कर दी गयी थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में तथा वार्षिक योजनाओं (द्वितीय से सप्तम) 1956-1990 में विदेशी पूँजी निवेश की गति काफी धीमी रही। पूँजी निवेश की दिशा में तीव्र गति प्रदान करने का मुख्य श्रेय पूर्व सरकार के वित्त मत्री मानवीय डॉ० मनमोहन सिह को जाता है जिन्होंने नयी आर्थिक नीति के तहत उदारीकरण शब्द का इस्तेमाल अर्थव्यवस्था मे खुलापन होने के उद्देश्य से किया है। इसमें लाइसेस और परमित जैसे विभिन्न प्रकार के नियत्रण तथा पूँजी निवेश में आने वाली अन्य बाधाए दूर करना शामिल है। एकाधिकारवादी तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार कानून और विदेशी मुद्रा नियमन कानून के अन्तर्गत लगायी जाती थी। इस सुधार कार्यक्रम का एक उद्देश्य स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकार के निवेश आमन्त्रित करना और उसमें वृद्धि करना था। वर्तमान सयुक्त मोर्चा सरकार का न्यूनतम साझा कार्यक्रम इस बात पर जोर देता है कि यदि भारत से गरीबी को मिटाना है तो प्रत्यक्ष पूँजी निवेश को आकर्षित करने के लिए विशेष प्रयत्न करने होंगे। मोर्चा सरकार के वित्त मत्री श्री पी चिदम्बरम् का मत है कि भारत दस अरब डालर का प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश प्रतिवर्ष इस्तेमाल करने की क्षमता रखता है। अर्थव्यवस्था में

खुलापन आने के फलस्वरूप विदेशी निवेश अब 250 से 400 करोड डालर प्रतिवर्ष आने लगा है। भारत मे 1994 के दौरान मात्र 95 करोड डालर का निवेश हुआ जबकि 1995 मे यह राशि बढकर 2-12 अरब डालर पहुँच गयी इस प्रकार 1991 से 1995 तक कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मात्र 4 अरब डालर का हुआ है।

भारत में पूँजी निवेश के दौरान अमेरिका की सक्रिय भूमिका रही। अमेरिका ने उदारीकरण के पहले तीन वर्षों में कुल विदेशी निवेश का लगभग एक तिहाई 5452 62 करोड रूपये लगाये गये थे, 1994 की पहली छमाही में केवल 573 39 करोड रूपये का निवेश किया, जबकि 1991 में 185 85 करोड रूपये, 1992 मे 1231 50 करोड रूपये और 1993 मे 3461 88 करोड रूपये का निवेश किया गया। इसी प्रकार जापान में 1991 में 52 71 करोड रूपये के प्रस्ताव मिले जो 1992 में बढकर 610 23 करोड रूपये के हो गये, परन्तु 1993 में कम होकर 257 43 करोड रूपये तथा 1994 में उसमें और कमी हुई और वर्ष की पहली छमाही में सिर्फ 18 90 करोड रूपये के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए।[13] जिन देशो की ओर से निवेश प्रस्ताव में निरन्तर वृद्धि हुई वे हैं ब्रिटेन, जर्मनी, सयुक्त अरब अमीरात, फ्रान्स, सिगापुर और कनाडा।

विदेशी पूँजी निवेश बढने के फलस्वरूप कई समस्याए भी पैदा होती है। जैसे विदेशी निवेशक उन्हीं क्षेत्रों में पूँजी निवेश लगाने को प्रोत्साहित रहे हैं जिसमें अधिक लाभ की गुजाइश है। उदाहरणस्वरूप कोका कोला, पेप्सी आदि। इस दशा में देश की प्राथमिकताओं पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। एक और समस्या यह है कि प्रोत्साहन तथा रियायतों के जरिये आमन्त्रित किया जाता है जो विदेशी निवेशकों को उपलब्ध नहीं होता। जैसे बिजली क्षेत्रों में सरकार ने विदेशी निवेशकों को 16 प्रतिशत लाभ की गारण्टी दी है। इसके साथ-साथ एक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि जल जीव पालन जैसे नये क्षेत्रों और ताप बिजली के सामान परम्परागत क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के प्रदूषणो के सम्बन्ध में भारत में पर्यावरण की गम्भीर समस्या पैदा हो रही है।

किसी भी राष्ट्र की अन्य समस्याओं के साथ-साथ उसके मुद्रा स्फीति की समस्या प्रमुख है। भारत में विदेशी पूँजी निवेश को तेज गति से बढाने के कारण उसका स्वदेशी उद्योगों के साथ कडी प्रतिस्पर्धा हो रही है। फलस्वरूप भारतीय जनता का अत्यधिक झुकाव विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर है। जैसे हमराज पेन की प्रतिस्थापना लोगों द्वारा रेनाल्ड तथा रोटोमैक को उद्धारित किया जा रहा है। इस प्रकार एक ओर कीमत युद्ध हो रहा है। स्वदेशी तथा विदेशी कम्पनियों में फिर भी

---

13 दैनिक समाचार आज, 31 जनवरी 1997, पृष्ठ सख्या-6

अत्यधिक माग के कारण उत्पादन मे आर्थिक वृद्धि हो रही है। जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत मुद्रा के मूल्य की अपेक्षा तेजी से बढ रही है अर्थात मुद्रा स्फीति हो रही है।

खुले पूँजी निवेश की उदार नीति और भारतीय बाजार मे बडे आकार एव भावी सम्भावनाओं को देखते हुए भारत में पूँजी निवेश के प्रति विदेशी उद्योगपतियो एव विनियोजकों की उत्सुकता निरन्तर बढ रही है। वर्तमान सरकार के उदारीकरण की नीति द्वारा आज हमारे पास विदेशी मुद्रा के भण्डारण में काफी वृद्धि हुई है जिससे हमारा भुगतान सतुलन अनुकूलता की ओर अग्रसर हो रहा है, किन्तु जिस गति से विदेशी कम्पनियॉ भारत में अपना प्रभुत्व एव स्वामित्व बढा रही है देश की स्वतन्त्रता पर खतरा हो सकता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए भारतीय बाजार और आसान कर दिया गया है और स्वदेशी उद्योगो को ढेर सारे इसका खामियाजा भुगतना होगा बडे आश्चर्य की बात है कि उद्योग जगत कारपोरेट दरों में कमी, इस पर अधिकार समाप्त करने, न्यूनतम वैकल्पिक कर (मैट) में आवश्यक सशोधन, विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम (फेरा) को बदलकर उसके स्थान पर विदेशी मुद्रा प्रबन्धन कानून बनाने, पूँजीगत खाते को पूर्ण परिवर्तनीय बनाने तथा निवेशकों पर लगने वाले लाभाश कर खत्म करने जैसे निर्णयों की तारीफ करते नहीं थक रहा, किन्तु उसे इस बुनियादी बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मुकाबला किस प्रकार कर पायेंगे।

केवल इतना ही नहीं बल्कि भारतीय बाजार में सभावनाओ को ध्यान में रखकर कई कम्पनियो ने अपने निवेश कार्यक्रम को सुचारू रूप से जारी रखा। भारत के सस्ते श्रम और ससाधनों का लाभ उठाने और एशिया के भारत जैसे विशाल बाजार में विकास की पूरी सभावनाओं को देखते हुए यहॉ पॉव पसारना शुरू किया, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से स्थितियो ने उनकी मनोवृत्ति को प्रभावित करना शुरू किया, लेकिन इसके बावजूद कम्पनियो ने अपना इरादा छोडा नहीं बल्कि विषम परिस्थितियो का सामना करने लगी। भारत मे आने वाली कम्पनियों को यहॉ बुनियादी सुविधाओं का अभाव खटक रहा है।

भारत के आर्थिक विकास में सबसे बडा अवरोधक पर्याप्त मात्रा में पूँजी का अभाव होता है। विदेशी पूँजी में प्रवासी भारतीयों की जमा राशियों तथा अतर्राष्ट्रीय सस्थाओं द्वारा ऋणों के रूप में विदेशी पूँजी उपलब्ध करायी जाती है। देश में पूँजी की आवश्यकता इस कारण भी होती है कि उत्तम तकनीकी ज्ञान के अभाव तथा पूँजी की कमी के कारण हम प्राकृतिक साधनों का उचित विदोहन नहीं

कर पाये। देश को विदेशी पूँजी के साथ उच्च स्तर का तकनीकी ज्ञान भी उपलब्ध होता रहता है जिसका उपयोग हम कृषि या उद्योग के विकास में कर सकते हैं। सन् 1991 के बाद देश द्वारा अपनायी गयी आर्थिक नीति और संरचनात्मक कार्यक्रमों को लेकर विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग को आकर्षित करने के लिए भारत विवश है। इसी कारण भारत अपने विदेशी विनियम नियमन अधिनियम (एफ.ई.आर.ए.) और औद्योगिक नीति में फेरबदल किया है। यह बात जरूरी है देश के आर्थिक विकास पर विदेशी सहायता का काफी अच्छा प्रभाव पड़ा है।

हमारे राष्ट्रीय निवेश का स्तर काफी ऊँचा उठ गया है। शुरू में वार्षिक निवेश की दर कुल राष्ट्रीय आय का मात्र 5 प्रतिशत थी, लेकिन अब यह बढ़कर 23 प्रतिशत हो गयी है। इस प्रकार की सहायता के द्वारा हम अपने यहाँ खा़द्यान्नों की कीमतों में स्थिरता बनाने के प्रयास में कामयाब हो पाये है तथा आयातितऔद्योगिक कच्चे माल के सम्बन्ध में देश के उत्पादन में काफी वृद्धि हो पायी है। कुल विदेशी सहायता का लगभग 22 प्रतिशत विद्युत जनन पर तथा 10 प्रतिशत के विकास पर व्यय किया जाता है जिससे अद्यः संरचना का आधार मजबूत हो पाया है।

तकनीकी साधनों के विकास में भी हम सक्षम हो पाये है। यदि हम कहें कि हम इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो चुके हों तो हैरानी वाली बात नहीं होगी, लेकिन हमें विदेशी सहायता के सम्बन्ध में विशेष सतर्कता बरतनी होगी, जबकि इस बारे में शुरू में ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने स्पष्ट कर दिया था कि हम विश्व के प्रत्येक कोने से आर्थिक सहायता एवं तकनीकी साझेदारी का हृदय से स्वागत करते हैं, लेकिन भारत सरकार की अनुमति आवश्यक जाँच पड़ताल के बगैर विदेशी पूँजी किसी भी कीमत पर देश में नहीं आ सकती। जहाँ तक सम्भव हो सके स्वामित्व और नियंत्रण भारत के हाँथों में रहे तो ज्यादा अच्छा होगा।

हमारे देश में विदेशी पूँजी अधिक से अधिक प्रोत्साहित हो इसके लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास शुरू किये गये हैं। कर सम्बन्धी रियायतें, दुहरे करारोपण से रियायत विदेशी सहायता हेतु गारण्टी, फेरा में अनुकूल परिवर्तन रूपये की पूर्ण परिवर्तनशीलता तथा दीर्घकालीन निर्यात आयात नीति को अपनाया गया है। यह बात भी जरूर है कि विदेशी पूँजी से हमारे औद्योगिक विकास, परिवहन एवं संचार, सिंचाई एवं विद्युत उत्पादन में वृद्धि, औद्योगिक विकास, पूँजी निर्माण की गति को बढ़ावा देने, तकनीकी सेवा तथा विदेशी मुद्रा संकट से हमें काफी उबारा है। यदि हम विदेशी पूँजी का सही दिशा में प्रयोग करना समझः जाएं जैसे हम इसे व्यापार से सम्बद्ध करें और हम इसे निर्यातोन्मुख उद्योग में प्रयोग करें और इसका उपयोग केवल उत्पादक कार्यो के लिए ही करें तो यह विदेशी

सहायता काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती है। आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप ही हमारे देश की आर्थिक विकास की दर काफी अच्छी हालत में पहुँच गई है। आठवीं योजना में विकास दर 6 5 प्रतिशत थी तथा नौंवी योजना में 7 से 8 प्रतिशत की दर तक बढाये जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

उदारीकरण का अर्थ देश में नियमों एव प्रतिबन्धों में आवश्यक ढील देने एव उनमें उदारता अपनाने से लगाया जाता है। इस उदारीकरण का औद्योगिक क्षेत्र पर भी व्यापक प्रभाव पडा है। लाइसेंस लेना अब अनिवार्य नहीं रहा, बगैर सरकारी अनुमति के औद्योगिक क्षमता का विस्तार करना, विदेशी कम्पनियों को भारत में उद्योग स्थापित करने की अनुमति प्रदान करना। ऐसा करने से भारतीय उद्योगों में भी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति सृजित होगी जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं की गुणवत्ता में काफी सुधार आयेगा और देश के निर्यात बढाने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी स्थिति को सुदृढ कर सकने में सफल हो सकेंगे, लेकिन इन सभी सफलताओं के बावजूद हमारे देश के कुछ लोगों की यह भी सोंच है कि विदेशी कम्पनियॉ भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी अपने हाथ में लेगी।

आम चुनाव मे जहॉ विदेशी कम्पनियों को लेकर विभिन्न प्रकार की चर्चाए होती रही। 1998 के दौरान विदेशी सस्थागत निवेशको का निवेश उम्मीद से अच्छा रहा। पर्यवेक्षकों का मानना है कि विदेशी सस्थागत निवेशको ने यह खरीदारी दीर्घकालिक नजरिये से किया है। 1998 के दौरान विदेशी सस्थागत निवेशको की खरीदारी 1494 करोड 50 लाख रूपये की रही जबकि बिक्री 755 करोड 10 लाख रूपये ही थी।

अमरीका के एटी वर्नी द्वारा किये गये एक अध्ययन के मुताबिक विदेशी निवेशक भारत को पसन्द करते हैं। भारतीय विदेश व्यापार सस्थान की पत्रिका के अनुसार भारत के पक्ष मे विशेष बात यह है कि भारतीय कम्पनियॉ विपणन रिपोर्ट विदेशी व्यापार की अवधारणा को अच्छी तरह समझती है।

भारत द्वारा विदेशी सहायता का प्रयोग मुख्यत जिन मदों में किया गया, वे हैं - परिवहन और सचार परियोजनाए, शक्ति परियोजनाए, इस्पात परियोजनाए, औद्योगिक विकास, कृषि विकास, खनिज एव लौह परियोजनाए तथा अन्य मदों जैसे-परिवार नियोजन कार्यक्रम, उच्च शिक्षा, जलापूर्ति, शहरी विकास आदि। इसके अलावा भारत ने विदेशी ऋणों के पुर्नभुगतान के लिए सहायता प्राप्त की है।

इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि ब्याज के अलावा मूल धन वापसी का समय आ गया था और ऋण चुकाने की समस्या आ गई। इस प्रकार की स्थिति वर्तमान आयात-बिल, उद्योगों के लिए

आवश्यक वस्तुओ के आयात और निर्यात बिल में अपर्याप्त वृद्धि के कारण उत्पन्न हुई। विदेशी सहायता के उद्देश्यवार उपयोग पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत द्वारा विदेशी सहायता का उपयोग औद्योगिक विकास के लिए अधिक किया गया है जिसे समय के सन्दर्भ में सर्वथा न्यायोचित ठहराया जा सकता है क्योकि भारत जैसे विकासशील देश के लिए आर्थिक विकास का अर्थ है औद्योगिक विकास। अन्य महत्वपूर्ण मदे जो प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास मे सहायता प्रदान करती है और विदेशी सहायता मे उनका महत्वपूर्ण अश है उनमे परिवहन एव सचार, शक्ति व परिवार कल्याण कार्यक्रम आदि शामिल है भारत जैसे कृषि प्रधान देश में विकास हेतु भी विदेशी सहायता का भारी उपयोग किया गया है।

विद्युत उत्पादन के क्षेत्र मे विदेशी निवेश की सार्थकता :

किसी देश के विकास और औद्योगीकरण मे विद्युत की अहम् भूमिका निर्विवाद है। विकास के साथ-साथ देश में विद्युत की आवश्यकता भी बढती जाती है। भारत आज ऐसी स्थिति से गुजर रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश मे जहॉ विद्युत उत्पादन की कुल स्थापित क्षमता मात्र 1362 मेगावाट थी, वहीं फरवरी 1994 के अन्त में यह बढकर लगभग 73 मेगावाट (1 मेगावाट = 10 लाख वाट) हो चुकी है। इसके बावजूद देश में विद्युत की कमी लगातार बनी हुई है। सन् 1950 मे देश मे विद्युत की प्रति व्यक्ति खपत मात्र 15 6 किलोवाट घण्टा थी, जो कि इस समय 270 किलोवाट घण्टा हो चुकी है। हमारे पडोसी देश पाकिस्तान में यह खपत 358 किलोवाट घण्टा है। इस स्थिति को तथा देश में बढती विद्युत की माग को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि देश में विद्युत का उत्पादन यदि तेजी से नहीं बढाया गया तो देश में गम्भीर विद्युत सकट पैदा हो जायेगा। दूसरी तरफ देश में विद्युत बोर्डों की स्थिति निरन्तर बिगडती जा रही है। अधिकाश राज्य विद्युत बोर्ड इन दिनों घाटे के दौर से गुजर रहे हैं। इनके पास इतना धन नहीं है कि ये अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोयला और एन टी पी सी का शुल्क अदा कर सकें। नवीनतम ऑकडों के अनुसार देश में राज्य विद्युत बोर्डों का घाटा बढकर 5346 77 करोड रूपये तक पहुॅच गया है।[14] देश में मात्र पॉच ही राज्यों के विद्युत बोर्ड लाभ में चल रहे है। ये राज्य हैं - आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु। मध्य प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड 471.29 करोड रूपये के लाभ के साथ सूची में सबसे ऊपर हैं जबकि तमिलनाडु 407 करोड रूपये के लाभ के साथ दूसरे स्थान पर है, शेष विद्युत बोर्डों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। वास्तव में निरन्तर बढ रहे घाटे के कारण राज्य विद्युत बोर्ड उद्योगों, ग्रामीण अचलों

---

14 मासिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण जून 1994, पृष्ठ सख्या-1461-1462

तथा इसी तरह कृषि कार्यों के लिए पर्याप्त विद्युत आपूर्ति में सफल नहीं हो पा रहे है, क्योंकि देश में विद्युत उत्पादन परियोजनाओं का खर्च लगातार बढता जा रहा है। सरकारी ऑकडो के अनुसार सन् 2006 तक देश में 1 42 लाख मेगावाट विद्युत का अतिरिक्त उत्पादन करना होगा जिसके लिए दो लाख अरब डालर के निवेश की आवश्यकता होगी।

निश्चय ही इतने बडे निवेश की स्थिति में इस समय न तो राज्य विद्युत बोर्ड है और न ही भारत सरकार इसके लिए स्वय को तैयार कर पा रही है। अन्त सरकार को इस हेतु गैर सरकारी और विशेषकर विदेशी पूँजी निवेशकों की ओर मुडना पडा, लेकिन इतने जटिल और विशाल निवेश के लिए गैर सरकारी तथा विदेशी पूँजी निवेशकों को आकर्षित कर पाना आसान नहीं था। इनके लिए अनेक आकर्षण उपलब्ध किये गये। विदेशी निवेशक एक निश्चित लाभ की गारन्टी चाहते थे। लिहाजा सरकार को उनके लिए सोलह प्रतिशत लाभ की गारन्टी घोषित करनी पडी इसके अतिरिक्त सरकार ने इन निवेशकों के अनेक रियायतों की भी घोषणा की है यथा-विद्युत की दरों में वृद्धि, रियायती प्रशुल्क के आधार पर आवश्यक उपकरणों का आयात, पूँजी और लाभ को बाहर ले जाने की अनुमति आदि।

सरकार द्वारा दी जा रही इन रियायतों की जहॉ देश मे व्यापक स्तर पर आलोचना हो रही है। वही, यह अनेक विदेशी पूँजी निवेशकों को आकर्षित करने में सफल रही है। केन्द्रीय ऊर्जा मत्री श्री एन के पी साल्वे ने इस सम्बन्ध में गत फरवरी माह मे अमरीका, जर्मनी, ब्रिटेन का दौरा किया वहीं विदेशी निवेशकों से बातचीत की। प्रधानमत्री पी वी नरसिहराव ने भी गत फरवरी में अपनी जर्मनी यात्रा के दौरान तथा बाद में दावोस में विश्व आर्थिक मच की बैठक में अपने भाषण में भारत में विदेशी निवेश के लिए अनुकूल वातावरण को स्पष्ट किया। समझा जाता है कि इन परिस्थितियों में पश्चिमी देशो के अनेक प्रमुख औद्योगिक समूहो ने भारत में विद्युत गृहों के आधुनिकीकरण में रूचि दिखाई है। इन औद्योगिक समूहों मे रोल्स रायस, जी ई सी और सीमेंस के नाम प्रमुख है। विद्युत क्षेत्र में विदेशी निवेश के लिए अस्सी नए प्रस्ताव सरकार के पास आए हैं जिनसे देश की विद्युत उत्पादन क्षमता 26 हजार मेगावाट तक बढ सकती है इनमें से कुछेक समझौते सम्पन्न भी किये जा चुके हैं।

वास्तविकता तो यह है कि देश में विद्युत उत्पादन की स्थिति को यदि शीघ्र ही सुधारा नहीं गया तो हमारी अनेक विकास योजनाए खटाई में पड जाएंगी। देश में उत्पादन की तुलना में विद्युत की माग में लगातार वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर, विद्युत की स्थापित क्षमता में लक्ष्य के अनुरूप वृद्धि नहीं हो पाती। इन्हीं परिस्थितियों में भारत सरकार को विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में विदेशी निवेश को

प्रोत्साहन देना पडा है, किन्तु जिन उदार शर्तों पर सरकार विदेशी पूँजी निवेशकों को देश मे आमन्त्रित कर रही है, वह बहस का मुद्दा बना हुआ है। हालाकि सरकार के आलोचक भी इस बात को स्वीकार करते है कि आज देश में विद्युत उत्पादन के लिए काफी बडे निवेश की आवश्यकता है और इसे विदेशी निवेशकों के माध्यम से आसानी से पूरा किया जा सकता है, लेकिन इस सम्बन्ध मे प्रेक्षकों का मानना है कि विदेशी निवेशकों की शर्तों पर बहुत गम्भीरता पूर्वक विचार करने की जरूरत थी। हमें इस तथ्य को नजर अदाज नहीं करना चाहिए कि सरकार इन विदेशी निवेशकों को जिस तरह 16 प्रतिशत लाभ की गारटी और वह भी विदेशी मुद्रा में दे रही है,

उससे भारतीय विद्युत उपभोक्ता को अधिक मूल्य तो देने ही पडेंगे, साथ ही रियायती प्रशुल्क के आधार आवश्यक उपकरणों के आयात जैसी रियायतों से भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव भी पडेगा। विदेशी निवेशक स्वाभाविक रूप से भारतीय विद्युत उपकरणों को क्रय करने की अपेक्षा विदेशी उपकरणो का आयात करना ही अधिक पसन्द करेंगे। इस प्रकार निश्चित रूप से विदेशी मुद्रा में हमारी देनदारी काफी हद तक बढ जायेगी।

विदेशी निवेशकों को लाभ की गारटी यदि विदेशी मुद्रा की बजाय भारतीय मुद्रा में दी तो उस दोष को काफी हद तक कम किया जा सकता था और यदि यह विदेशी मुद्रा मे ही आवश्यक थी तो इसे 8 15 प्रतिशत तक सीमित रखा जा सकता था, क्योकि इस ब्याज दर पर इस समय विदेशों से पर्याप्त पूँजी प्राप्त की जा सकती है।

दूसरी ओर पहले से विद्युत उत्पादन मे लगे भारतीय उत्पादकों और सरकारी इकाइयों को अपने पुराने और सीमित ससाधनो के बल पर देश में विदेशी कम्पनियों का मुकाबला करना होगा। इसके अतिरिक्त प्राय विदेशी निवेशक विद्युत उत्पादन के लिए देश में बिल्ड, 'ऑपरेट एण्ड ओन' सिद्धान्त के स्थान पर 'बिल्ड, ऑपरेट एण्ड ट्रासफर' प्रस्ताव को अधिक पसन्द कर रहे है अर्थात् विद्युत वितरण के उत्तरदायित्व से वे स्वय को मुक्त रखना चाहते हैं, ऐसी स्थिति में राज्य विद्युत बोर्डो को विदेशी निवेशकों द्वारा स्थापित विद्युत उत्पादन केन्द्रों से विद्युत खरीदनी पडेगी। जो किसी भी तरह तीन रूपये प्रति यूनिट से कम नहीं बैठेगी, हालाकि शुरूआती दिनों में इस दर को कम रखने का प्रयास किया जा रहा है। पिछले दिनों हुए समझौते के परिणामस्वरूप विदेशी कम्पनी एनरान महाराष्ट्र में जो विद्युत उत्पादन केन्द्र स्थापित कर रही है। इससे उसमें महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड को दो रूपये चालीस पैसे प्रति यूनिट की दर से विद्युत देना स्वीकार किया है। स्पष्टत इस दर में सम्प्रेषण वितरण के दौरान होने वाली हानि को नहीं जोडा गया है। यदि सम्प्रेषण व वितरण हानि को इसमें जोड दिया

जाए तो उपभोक्ताओं के लिए विद्युत लगभग चार रूपये प्रति यूनिट पडेगी। नि सन्देह, विद्युत की इस ऊची कीमत का भारतीय अर्थव्यवस्था पर चतुर्दिक प्रभाव पडेगा। एक ओर सरकार देश में गॉव-गॉव तक विद्युत पहुँचाने की बात करती है तो दूसरी ओर इस ऊँची दर पर विद्युत का उपभोग निम्न वर्ग तो क्या मध्यम वर्ग भी नहीं कर पाएगा, इसमे सन्देह उत्पन्न हो गया है।

अब देखना यह है कि विदेशी निवेश को निरन्तर प्रोत्साहन देने के साथ-साथ सरकार इस सम्बन्ध मे अब ऐसा कौन सा मार्ग चुनती है। जिससे देश का आम उपभोक्ता सतुष्ट रह सके और देश मे विद्युत की आवश्यकता भी पूरी हो जाए। वैसे एक सुखद सकेत यह है कि भारत सरकार द्वारा विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में विदेशी निवेशकों के प्रति उदारवादी नीति की घोषणा के बाद जहॉ अनेक विदेशी निवेशकों ने भारत में विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में निवेश करने की इच्छा व्यक्त की है, वहीं विश्व बैंक हरियाणा, उत्तर प्रदेश और उडीसा राज्यों की इच्छा पर उनके विद्युत क्षेत्रों में बृहत सरचनात्मक सुधार सम्बन्धी अध्ययन कार्यों का वित्त पोषण करने के लिए तैयार हो गया है। बिहार और राजस्थान सरकारों के अनुरोध इसके अन्तर्गत विचाराधीन है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नजर प्राकृतिक सम्पदा पर :

भारतीय उद्योग पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का विजय अभियान इसलिए सफल हो रहा है कि इनके पास अकूत पूँजी है। इनके सामने बडी से बडी भारतीय कम्पनियॉ भी बौनी है। रूपये के अवमूल्यन से अब विदेशी कम्पनियों के सामने भारतीय उद्योगपतियों में दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का जोर है। एक ओर तो वे पीछे रह जाने के खौफ मे विदेशी कम्पनियो से गठबन्धन के लिए टूटे पड रहे हैं, दूसरी ओर एक के बाद दूसरी भारतीय कम्पनी का नियन्त्रण विदेशियो के हाथ में जाते देखकर बेहद घबराये हुए है। यह सोचना सही नहीं होगा कि सिर्फ सत्ता-प्रतिष्ठान के बाहर के राजनीतिज्ञ और असहमति के बाद कुछ अर्थशास्त्री ही आर्थिक नीतियों और विदेशी पूँजी समझौते की शक्ल में आ रहे नव-उपनिवेशवाद के खतरे की घटी बजा रहे हैं स्वय भारतीय उद्योगपति भी इससे चिन्ति है। असल मे किसी न किसी तरह का आर्थिक राष्ट्रवाद आज भारत की आर्थिक प्रभुसत्ता को बनाये रखने के लिए आवश्यक हो गया है। दादाभाई नौरोजी से लेकर महात्मा गॉधी तक ने जिन परिस्थितियों में यह कार्य किया था, वह आज से भिन्न थीं। तब विदेशी सत्ता एक ऐसी सच्चाई थी, जिसे नकारा नहीं जा सकता था। वह दिनों दिन भारतीय जनता के श्रम और सम्पत्ति को लूट रही थीं, लेकिन वह स्पष्ट दिख रहा था आज का आर्थिक-उपनिवेशवाद विकास का बाना पहनकर आ रहा है। वह युद्ध नहीं लड़ता। जरूरत पडने पर वह इसमें चूकेगा भी नहीं। वह देश के उच्च्व तथा मध्यम वर्ग को

आधुनिकतम उपभोक्ता वस्तुए उपलब्ध कराने के सतरगी सपने दिखाकर अपना कार्य साध रहा है। शहरी नयी पीढी में ही नहीं, गॉवों, कस्बों में भी इसका इन्द्रजाल फैल रहा है।

देश- विदेश के व्यापार तो सदियो से चलते रहे, पर पुराने जमाने में व्यापारियों का मकडजाल नहीं था, यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का गठन हुआ। ईस्ट इडिया कम्पनी इन्हीं 'आरम्भिक कम्पनियों' में से एक बडी कम्पनी थी। इनका चरित्र लुटेरों का था। ये आपस मे सैन्य शक्ति का उपयोग भी करती थी। भारत में इस कम्पनी ने डच और पुर्तगाली कम्पनियों को खदेड दिया। इसकी मनमानी का इतिहास साक्षी है। पचास हजार पौंण्ड से आरम्भ करने वाली इस कम्पनी ने 1770 तक बीस लाख पौण्ड का मुनाफा कमाया था। मुनाफे की लालची ऐसी ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में हमारा देश अपनी आर्थिक कमान सौंपता जा रहा है, ऐसा नहीं कि इसके कुपरिणाम को हम जानते नहीं। देश की आम जनता से अधिक जानकार है, देश के कर्णधार जिन्होंने देश की गर्दन फॅसायी है। दुनिया की दौलत के साथ-साथ सैन्य शक्ति अमरीकी की मुट्ठी में सिमट रही है। इनकी दादागिरी से बडी शक्तियॉ भी भयभीत है, सब जानते समझते हुए सत्ता के सकुचित स्वार्थ में देश को गुमराह कर सोने के पिजरे में डाल दिया गया।

इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण सवाल यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सुझाई गई आर्थिक नीतियो तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का खुले दरवाजे से आना समाज के किस तबके पर सबसे अधिक प्रतिकूल असर होगा? यह समय ही बतलायेगा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जो भी कुछ कहता है उसके साथ यह जरूरी है कि विदेशी कम्पनियों को अपने यहॉ कारोबार करने की अधिक छूट दो। इन कम्पनियो के उत्पादो को खरीदने की क्षमता मुख्य रूप से गरीब देशों के ऊपरी तबके में ही होती है। इसलिए कोष यह नहीं चाहता कि इस अमीर तबके की क्रय शक्ति या आय में कुछ कमी आए। चूँकि कोष की नीतियो के तहत राष्ट्रीय स्तर पर कम या अधिक सिकुडन आती ही है और खर्च कम होता ही है। इसलिए इस कटौती का भार अर्थव्यवस्था के निचले तबके पर पडने की पूरी सभावना रहती है। दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की नीतियों का अधिक भार उस वर्ग पर पडता है जो इसे सहने के लिए पहले से ही कम समर्थ है।

अर्थव्यवस्था में कुल खर्च में सिकुडन होने पर विदेशी या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का व्यवसाय बढता रहे इस अर्तविरोध को सुलझाने का एक अन्य उपाय यही है कि स्थानीय उद्योग व्यवसाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के स्वामित्व में चला जाय। ऐसा होने पर प्राय अधिक मशीनीकृत उत्पादन विधियों से काम होता है व इसका भी मेहनतकश वर्ग पर प्रतिकूल असर पडता है। साथ ही मुनाफे का एक

मोटा हिस्सा देश के बाहर भी जाता है। विश्व पूँजी निवेश रिपोर्ट 1993 इस भयावह सच को उजागर भी करती है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का निजी उत्पादक परिसम्पत्ति में से एक तिहाई हिस्से पर नियत्रण है। सयुक्त राष्ट्र व्यापार एव विकास सम्मेलन 'अकटाड' ने यह अपनी रिपोर्ट में स्वीकारा है। पिछले बीस साल में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सख्या 7 हजार से बढकर 37 हजार हो गयी।ये कम्पनियॉ बीस अरब डालर का प्रत्यक्ष पूँजी निवेश करती है। इनमें से एक तिहाई हिस्से पर सौ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का नियत्रण है। अकटाड के आकलन के अनुसार सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ विदेशो में करीब 55 खरब डालर का विक्रय करती है।[15]

रिपोर्ट के अनुसार 1990 में विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेश दो खरब 34 डालर तक पहुॅच गया जो एक रिकार्ड था विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेश 1992 मे डेढ खरब बताया गया जो 1987 के बाद सबसे कम था। इस कमी की वजह आर्थिक मदी और निवेशकों, यूरोपीय समुदाय, अमरीका तथा जापान की धीमी, आर्थिक विकास दर बतायी गयी है। गत वर्ष विकासशील देशों में चालीस अरब डालर का विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेश हुआ। यह पॉच साल पहले की तुलना में 25 अरब डालर अधिक है।

एशिया और दक्षिण अमरीका में विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी निवेश तेजी से बढ रहा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत विदेशी पूँजी निवेश को आकार्षित करने में सफल रहा है। अब वह इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति का आभास दिला रहा है। 1992 के पहले सात महीनों में सयुक्त उपक्रमों में एक अरब डालर से कुछ अधिक की विदेशी इक्विटी मजूर की गयी। यह राशि 1991 में मजूर की गई राशि से लगभग तिगुनी थी।

रिपोर्ट के अनुसार एशिया में जो अन्य देश विदेशी पूँजी निवेश के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे है। उनमे चीन शामिल है उधर महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश मे विजय करने के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के अश्वमेधीय घोडे की नजर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ही भॉति अब बिहार के प्राकृतिक ससाधनो के भरपूर पठारी इलाके पर है। अब यहॉं व्यावसायिक खेती भी की जाएगी। बहुराष्ट्रीय बीज कम्पनियों के लिए यहॉ बाजार की बेहतर-सभावनाए है। कारगिल, पायनियर काटिनेंटल सीड्स, होक्स्ट और मर्क जैसी कम्पनियॉ जल्द ही इस दिशा में पहल करने वाली है। बिरसा कृषि विश्वविद्यालय और गैर सरकारी सगठनों ने यहॉं नए किस्म के बीजों का प्रयोग शुरू कर दिया है। इन बीजों के साथ अत्याधुनिक कृषि उपकरणों और सिचाई सुविधाओं की भी जरूरत पडेगी। इसके साथ ही बीज, उर्वरक और कीटनाशक बनाने वाली कम्पनियों के लिए यहॉं नया बाजार विकसित हो जायेगा।

---

15 दैनिक समाचार स्वतन्त्र भारत, 13 अगस्त सन् 1994, पृष्ठ सख्या-6

बिहार पठार विकास योजना का 49 फीसदी खर्च 1200 किलोमीटर लम्बी सडक तैयार करने के लिए है। यह सडक कृषि उत्पादो को पठार के नए विकसित बाजारों तक पहुँचाने में मद्दगार साबित होगी। पब्लिक इट्रेस्ट रिसर्च ग्रुप के मुताबिक 400 करोड रूपये की इस योजना में विश्व बैंक की मद्द 350 करोड रूपये की है। इस योजना का मकसद बिहार के जनजाति इलाके झारखण्ड मे सडक बनाकर सिचाई, कृषि विकास और पीने का पानी मुहैया कराकर जनजातीय लोगों की माली हालत सुधारना है। बिहार का पठारी क्षेत्र झारखड दो हिस्सों में बॅटा है। छोटा नागपुर पठार और सथाल परगना, यह पूरा इलाका प्राकृतिक ससाधनों से भरपूर है। देश की 40 फीसदी खनिज, धातु और कोयले की खाने इसी इलाके में है। विकास के नाम पर यहॉ शुरू की गई परियोजनाओ में टाटा परियोजना, देवी इजीनियरिंग कारपोरेशन, सुवर्ण रेखा बॉध परियोजना और चाडोल ऊर्जा परियोजना प्रमुख है जिनका फायदा भी बडे औद्योगिक घरानों बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थानों ने उठाया है।

अब फिर बिहार पठार योजना के नाम पर फिर एक बार जनजातीय लोगों को उनकी जमीन से बेदखल किया जायेगा। आर्थिक फायदे के नाम पर उन्हें अपनी जमीन देशी-विदेशी कम्पनियों को देनी पडेगी, फिलहाल विदेशी कम्पनियॉ उच्चतम भूमि सीमा कानून में बदलाव के लिए दबाव डाल रही है। 1908 मे बने छोटा नागपुर काश्तकारी कानून के तहत जनजातीय लोगो की जमीन गैर-जनजातीय लोगो को देने में देर लगाई गई, लेकिन इस रोंक का जमकर उल्लघन हुआ और अब विदेशी कम्पनियॉ इस मुहिम में शामिल हो गई है। बिहार पठार विकास योजना के नाम पर जनजातीय लोगों को कम से कम कीमत पर उनकी जमीन से बेदखल किया जायेगा। इसके लिए सरकार सबन्धित कानून भी बदल सकती है।

यहॉ अभी तक की योजनाओ से जनजातीय लोगों का विकास तो दूर रोजी-रोटी का सकट ही गहरा गया है। सुवर्ण रेखा परियोजना से करीब 60 हजार लोग विस्थापित हुए। इन्हें बहुत कम मुआवजा दिया गया। इनमें से ज्यादातर विस्थापित राची और जमशेदपुर जैसे शहरों में रिक्शा चलाने या कुली का काम करने लगे। जिन लोगों को रोजगार नहीं मिल सका, उनके परिवार की औरतों को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर होना पडा। दूसरी तरफ टिस्को और बिहार स्पज आयस परियोजनाओं को विश्व बैंक की मद्द से हुआ।

मेरे विचार से पठार विकास योजना को विश्व बैक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की नई शर्तों की रोशनी में देखा जाना चाहिए। खासकर ढॉचागत समायोजन के सन्दर्भ में सरकार ने जो नीतिगत

फैसलों की घोषणाए की है उनमें निजीकरण, राष्ट्रीय सस्थानों की घुसपैठ निर्यातोन्मुख कृषि विकास सब्सिडी में कटौती और सिचाई, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं पर उपभोक्ता फीस आदि शामिल है। पठार विकास योजना माडल मे बडे-बडे फार्म तैयार करने की योजना है। अत्याधुनिक टेक्नोलाजी से जैसे इन फार्मों में अकुशल किसानों के लिए कोई जगह नहीं होगी।

कृषि क्षेत्र पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कसता शिकंजा :

भारत सरकार ने नयी कृषि नीति के तहत हाल ही में विदेशी कम्पनियों के मलिकाना हक पर कृषि भूमि प्राप्त करने की सुविधा देने का जो निर्णय लिया है, उससे न केवल देश में भुखमरी बढने की आशका है बल्कि वह निश्चय ही अनाज के मामले में हमारी आत्मनिर्भरता को भी क्षति पहुँचायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत जहॉ दुनिया की एक तिहाई आबादी मुश्किल से आधा पेट भोजन प्राप्त करती है, ने खेती के दरवाजे बडी-बडी कम्पनियों के लिए इस उम्मीद से खोलने का निश्चय कर लिया है कि उससे इस कृषि प्रधान देश में दूसरी हरित क्रान्ति आ जायेगी। उल्लेखनीय है कि कार्पोरेट (निगमित) व्यापारिक घराने काफी पहले से ग्रामीण जोत नियमों को ढीला करने की माग करते रहे हैं। राजनीतिक दृष्टि से यह एक बहुत ही सवेदनशील मामला है, क्योंकि इस देश में अधिकाश सख्या उन किसानो की है जो सीमान्त किसान है तथा मुश्किल से अपने आवश्यकता भर खाद्यान्न उत्पादन कर पाते हैं।

खाद्य अनुसधानों तथा समाज कर्मियों के एक प्रभावशाली वर्ग का कहना है कि कार्पोरेट कृषि से देश में भुखमरी की स्थिति बढेगी, क्योंकि इससे अन्त इस गरीब देश की खाद्य सुरक्षा कुछ थोडे से बडे कृषि व्यापार कम्पनियों के हॉथो में सिमट कर अधिकाधिक रूप से हमे मॅहगे अनाज आयातित करने को आश्रित बना देगी। कृषि व्यापार के दरवाजे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोलते ही देश के खाद्यान्न पैदा करने वाले खेत ऐसी नकदी फसल देने वाले उद्यमो में बदल जायेंगे जो विश्व बाजार की माग की पूर्ति को ही महत्व देंगे। सबसे चिन्ता की बात यह है कि इससे देश की समूची कृषि तस्वीर ही बदल जाने वाली है। आशका तो यह है कि जिन लोगों को इस नीति के चलते अपनी जमीन त्यागनी होगी, उनमे अधिक सख्या छोटे तथा सीमान्त किसानों की होगी। वर्तमान व्यवस्था में ही एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार देश में प्रतिवर्ष बीस लाख की दर से छोटे तथा सीमान्त किसान या अपनी जमीन खो रहे हैं या उससे अन्य ढग से विलग हो रहे हैं। खेती में बडे व्यापारियों के प्रवेश का मतलब होगा देश की वह खाद्य व्यवस्था जिसका आधार वर्तमान में वे करोडों किसान हैं, जो स्वायत्त उत्पादकों के रूप में खाद्य उत्पादन कर रहे हैं कि हॉथों से निकलकर उन मुट्ठीभर बहुराष्ट्रीय

कम्पनियों के हॉथों में चली जायेगी जो निवेशों और उत्पादन दोनों को नियत्रित करती है। देश मे कृषि व्यापार का कारोबार फैलाने के लिए इस समय दुनिया की बडी से बडी कम्पनियॉ लालायित हैं।

कृषि क्षेत्र को बडी कम्पनियों के लिए खोले देने के प्रस्ताव से चिन्तित लोगों के अनुसार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की देश मे खाद्य सुरक्षा भण्डार स्थापित करने में कोई दिलचस्पी नहीं होगी। उनकी दृष्टि केवल नकदी फसलो एव निर्मित वस्तुओं पर ही होगी। कृषि व्यापार से सम्बन्धित बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की विकासशील देशों में अनाज पैदा करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। वे इन देशों को घरेलू उपयोग हेतु अनाज आयात करने के लिए प्रोत्साहित करती है। अनाज के लिए आयात पर निर्भरता बढाने से देश में खाद्यान्नों के मूल्य बढेगा तथा किसानों के मुनाफादेय नकदी फसलों की ओर मुड जाने तथा उनकी पैदावार घटने से सरकार की सस्ते अनाज की दुकानें तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रभावित होगी। खाद्य, कीटनाशी, दवाइयॉ और कृषिजन्य मशीनों का निर्माण तथा उसकी आपूर्ति बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ कर रही है। उनकी कीमतों पर सरकार का कोई नियत्रण नहीं रह गया है।[16] अब बिजली उत्पादन तथा सेवा क्षेत्र में भी इनकी पैठ बढ रही है। शकर बीजों के उत्पादन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपना कब्जा मजबूत करना चाहती है। विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव में आकर सरकार ने खेती को दी जाने वाली रियायतें समाप्त करनी शुरू कर दी है परिमाणत खेती पूर्णरूपेण बाजारी ताकतों के शिकजे में कसती जा रही है। ऐसे में किसान आन्दोलनों एव सघटनों की सस्ती बिजली, खाद,बीज एव पानी उपलब्ध कराने या उन्हें पूरी तरह माफ करने की मॉगे अपना अर्थ खोती जा रही है। कृषि उत्पादों के उचित मूल्य की माग को लेकर हमारे किसान सघटन काफी समय से सक्रिय हैं।

आज की उनकी प्रमुख माग है कि कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण, उत्पादन लागत के अनुपात मे होने चाहिए जबकि वस्तुस्थिति इसके विपरीत होती जा रही है। हरित क्राति के फलस्वरूप व्यापारिक उत्पादो के उत्पादन मे इजाफा हुआ है। अब हमारे किसान निर्यात के लिए नकदी फसलों के उत्पाद की ओर झुक रहे हैं, सोयाबीन, तिलहन, फल सब्जियाँ, चाय, काफी आदि बडे पैमाने पर निर्यात के लिए उत्पादित हो रहे हैं, लेकिन जब कृषि उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय मण्डी में पहुँचते हैं वहॉ उनकी कीमते हमारा किसान या हमारी सरकार नहीं बल्कि कृषि उत्पादों के व्यापार में लगी बडी-बडी कम्पनियॉ निर्धारित करती हैं, जहॉ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तानाशाही चलती है। कृषि का ऐसा औपनिवेशक ढाँचा हमारे देश में बनता जा रहा है, जहाँ सारा कुछ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के व्यापार'

---

16 दैनिक समाचार आज 26 सितम्बर 1997, पृष्ठ सख्या- 6

तथा विकसित देशों की आवश्यकता के लिए होगी।

खेती के अतर्राष्ट्रीयकरण और उस पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कब्जे की वजह से ही हमारी सरकार को मॅहगा अमेरिकी गेहूँ खरीदना पड रहा है। हमारे किसानो के पास गेहूँ प्रचुर मात्रा में है और वे कम मूल्य पर सरकार को बेंचने के लिए भी तैयार होते हैं, लेकिन सरकार सार्वजनिक वितरण के नाम पर अमेरिका से मॅहगा गेहूँ आयात करती है, विकसित देशों के दबाव में आकर सरकार अमेरिकी किसानों को फायदा पहुँचाती है और अपने यहॉ सब्सिडी खत्म करके एक तरह से अमेरिकी किसानो को सब्सिडी दे रहे है। इससे विकासशील देशो की स्थिति बदतर होती जा रही है। ब्राजील, मैक्सिको, पेरू, इथियोपिया और सोमालिया में कृषक समाज छूट चुका है। बेरोजगारी, भुखमरी और भयकर गरीबी का चारों तरफ बोलबाला है। इन देशों के किसानों और खेती को बचाने के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियो, विश्व बैंक, अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के खिलाफ व्यापक आन्दोलन के अलावा और कोई चारा बचा नहीं है। दूसरी ओर हरित क्रान्ति की आशा में हमारा देश बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के शिकजे में फॅसता चला जा रहा है। 1960 के दशक में पहली हरित क्रान्ति की तकनीक का अर्थ यह लगाया गया कि इससे अनाज का उत्पादन बढेगा और देश अन्न के मामले में आत्मनिर्भर होगा, लेकिन यह हमारे लिए कितनी बडी भ्रान्ति बन गयी, यह हमने देख लिया है। कृषि के क्षेत्र में हरित क्रान्ति क्यों आयी, इसकी भी एक काली पृष्ठभूमि है।

वास्तव में इस तथाकथित क्रान्ति का उद्देश्य विकसित देशों द्वारा तीसरी दुनिया के कृषि अर्थतन्त्र को अपने शिकजे में लेना था ताकि उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निर्मित कृषि आदानों (खाद, कीटनाशी, ट्रैक्टर आदि) के लिए बाजार बनाया जा सके। कृषि पर टिकी तीसरी दुनिया से मुनाफा बटोरने के लिए इन देशो की एक ऐसी कृषि पद्धति की ओर मोडना था जिसको बनाये रखने की कला उनके हाथ में हो। अपनी गरीबी और बढती जनसख्या के बोझ से जूझते भारत जैसे देश इस कुचक्र मे ऐसे फॅसे है कि अब उन्हें फसल बोने से फसल काटने तक के सारे नियत्रणो के लिए इन्हीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मुॅह ताकना पडता है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति में कम्पनियों की अपेक्षा से अधिक सफलता भी मिली अन्यथा अनाज को एक अतर्राष्ट्रीय हथियार के रूप में इस्तेमाल करने वाले अमेरिका को गरीब देशों में अनाज उत्पादन बढाने को क्यों सूझती ?

जिन-जिन देशों में इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रभाव बढ़ा है उन-उन देशों में अनाज, ज्ञान-विज्ञान, प्रतिभा, कौशल,सास्कृतिक अस्मिता सब कुछ सकट में पड़ गया है और उनका विकास अवरूद्ध है। हर क्षेत्र में नकल करने तथा जूठन पर जीने की प्रवृत्ति को बढावा मिला है। पूँजी प्रधान

उत्पादन प्रणाली के बजाय श्रम प्रधान उद्योग एव खेती को बढावा देकर, फिजूलखर्ची, ऐय्याशी पर रोंक लगाकर तथा गैर जरूरी और कम जरूरी आयात को रोंककर हमारा देश भुगतान सन्तुलन की समस्या पर काबू पा सकता था,लेकिन यह सब करने के बावजूद सरकार ने देश की आर्थिक नीति को जनापेक्षी और स्वदेशी के बजाय इसे अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा अमीर देशों के इशारे पर विपरीत दिशा में मोड गति इतनी तेजकर दी कि यदि इसे रोका न गया तो देश में भयावह अन्न सकट उत्पन्न हो जायेगा।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के औद्योगिक गुप्तचरी विभाग द्वारा भारतीय साम्राज्य का पतन एव विनाश .

उद्योग व्यापार के क्षेत्रों में गलाकाट प्रतियोगिता के चलते औद्योगिक गुप्तचरी लगातार बढ रही है। अमेरिकी गुप्तचर सस्था सी आई ए के भूतपूर्व डाइरेक्टर राबर्ट गेट ने तत्कालीन राष्ट्रपति बुश को भी सूचित किया था कि सी आई ए अपने ससाधनों का 40 प्रतिशत औद्योगिक गुप्तचरी में लगाता है। प्रारम्भ में औद्योगिक गुप्तचरी का क्षेत्र केवल उच्च तकनीक तथा दवा उद्योगों तक ही सीमित था परन्तु बाद के वर्ष में इसका विस्तार हुआ और आज उद्योग व्यापार के सभी क्षेत्रों में यह अपना पैर पसार चुका है। आज वह गुप्त नहीं रही कि आर्थिक रूप से सम्पन्न राष्ट्रों के ससदों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ बेधन तथा परोक्ष सहयोग से बडी सख्या मे सासद चुनकर जाते है। पूरी दुनिया के खाद्य व्यापार का सचालन अमेरिकी कारगिल कारपोरेशन तथा कटीनेटल, ग्रेन, फ्रासीसी लूइस ड्रेफस, ब्राजील को बेज एड बोर्न, स्वीस आद्रे कारनाक तथा जापानी मित्सुई कुक नामक बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मौसम, वर्षा, बाढ अकाल की घटनाओ पर कडी नजर रखने के लिए उनके एजेन्ट चौबीस घण्टे सजग रहते है।

उद्योग व्यापार के दूसरे क्षेत्रों मे भी इसी तरह कम्पनियों के गुप्तचर सक्रिय रहते है। अपनी प्रतिद्वदी कम्पनी मे उत्पादन, मजदूर, सगठन, सचालन एव नई खोजो के प्रति जागरूक थे। एजेन्ट क्षण - क्षण की खबर सुपर कम्प्यूटर में सग्रहित रखते हैं। किसी देश के उद्योग- व्यापार की अग्रिम जानकारी प्राप्त कर तदनुरूप कपनी को आगामी योजना सारा कुछ इन एजेन्टों के माध्यम से ठीक-ठाक चलता रहता है। दुनिया के किस देश में कौन सा उत्पादन कैसा हो रहा है, उसका सही आकलन बिना औद्योगिक गुप्तचरों के सभव नहीं है। यदि यही तक की बात होती तो अधिक चिन्ता की बात नही थी। दूसरे उद्योग धन्धों को ठप्प करना, मजदूर सगठन में घुसपैठ तथा रहस्यों को चुराने से लेकर उस सगठन की अच्छी प्रतिभाओं को अधिक वेतन एव सुविधाओं को लालच देकर अपनी कपनी

मे खीचना भी इसी योजना का एक अग है।

औद्योगिक गुप्तचरी अपने आप मे तब पूर्ण नहीं है जब तक उसका दूसरा भाग पोलिटिकल एक्शन ग्रुप सक्रिय नहीं है। रक्षा सामग्री उत्पादन करने वाली कम्पनियों के लिये तो यह अति आवश्यक है कि भारत जैसा देश कितना आधुनिक हथियार किस देश से खरीदेगा, कौन सा राजनेता या सैनिक अधिकारी इस काम के लिये रखा गया है ताकि उससे कैसे सम्बन्ध स्थापित कर अपनी कम्पनी का हथियार बेचा जाये। अरबों-खरबों के इस खेल मे बिचौलियों की मदद ली जाती है। भारत मे तोप घोटाला तो अभी चर्चा में है, परन्तु प्राय सभी रक्षा सौदों में यह प्रक्रिया अपनायी जाती है। इसके लिये ससद की चर्चा से लेकर सडक की गप-शप तक इनकी कडी दृष्टि रहती है। सासद, मत्री, नौकरशाहों से लेकर विभिन्न सक्रिय सगठनो तक पहुँच बनाने में इनकी कितनी सक्रियता रहेगी, यह सहज कल्पना की बात नहीं है यूरोप और अमेरिका मे इन कम्पनियों को वहॉ स्थापित प्राइवेट डिटेक्टिव एजेंसियों से काफी मदद मिलता था। आज भारत में परिस्थितिया बदल गयी हैं, यहाँ भी प्राइवेट गुप्तचर सगठन तथा सुरक्षा एजेंसिया काम करने लगी हैं। भारत सरकार ने अपने यहॉ उद्योगों के विस्तार के साथ ही औद्योगिक सुरक्षा बल का निर्माण किया है, परन्तु बढते दबाव के कारण इसका पूरा लाभ अपने देश को नहीं मिल पा रहा है। बिजली, इस्पात जैसे प्रमुख भारतीय सरकारी उद्योग आज घाटे में चल रहे हैं, यहॉ तो विचित्र बात यह भी लगती है कि जो भारतीय उद्योग अन्य भारतीय कम्पनियों से सामान खरीद सकती है। उसे आर्डर नहीं मिलकर विदेशी उद्योग को आर्डर मिल जाता है। यदि किसी थर्मल पावर स्टेशन में कोयले के साथ काली मिट्टी मिलाकर विद्युत उत्पादन को ठप्प करवा दिया जाता है तो इसकी जॉच कभी नहीं की जाती है कि इसके पीछे सूत्रधार कौन है। भारी उद्योग निगम, राची का करोडों का आर्डर समय पर पूरा नहीं किया जाता था, निम्न स्तरीय काम करने के कारण आर्डर कैंसिल हो जाता है तो किसी को इसके लिये जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता। परिणाम यह है कि आज पडित जवाहर लाल नेहरू के सपनों का यह उद्योग धीरे-धीरे मौत की ओर जा रहा है।

स्वर्णरेखा बहुदेशीय परियोजना 650 करोड मे पूरी होने का अनुमान था परन्तु आज 2000 करोड खर्च करके भी काम पूरा नहीं हुआ और विश्व बैंक ने इससे अपना हाथ खींच लिया है। पर्यावरण की सुरक्षा और विस्थापन की समस्या को लेकर ऐसी योजनाओं में इतना हगामा मचाया जाता है कि काम कभी भी समय पर पूरा नहीं हुआ है यदि हमारी सरकार मात्र यहीं जॉंच करवाये कि पदाधिकारी अब तक कितनी बार विदेशी भ्रमण कर चुके हैं तथा सगठन का आर्थिक स्रोत क्या है तो

चौंकाने वाले तथ्य सामने आयेगे। आज बडे भारतीय उद्योग अपने सुरक्षा बलो की सख्या सीमित कर या पूर्णत हटाकर प्राइवेट सुरक्षा एजेन्सियों की सेवा ले रहे हैं। अतर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय ये प्राइवेट सुरक्षा एजेन्सिया उन उद्योगों के रहस्यो को उजागर नहीं करेगी इसकी क्या गारण्टी है? बडी तेजी से पूरे भारत में प्राइवेट गुप्तचर सगठन तथा आधुनिक हथियारो से लैस सुरक्षा एजेन्सियॉ सक्रिय हो रही हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तत्कालीन मुगल सम्राट से अपने गोदामों की रक्षा के लिए सुरक्षा बल रखने की माग की थी। बाद में वहीं सुरक्षा बल मोरकासिस की हार का कारण बना, यह क्या हमें इतिहास से पता नहीं चलता? अति उत्साह में आकर बैंक, बीमा, कूरियर, वायु सेवा दूरभाष जैसे नाजुक क्षेत्रो में जल्दी प्रगति करने के लिए यदि विदेशों को हम आमत्रित करते हैं तो हम कहॉ रह जायेगे, इसकी चिन्ता करने वाला कोई नहीं है। जब किसी उद्योग,तकनीकी या रक्षा रहस्य की चोरी का हगामा होता है तो कोई अदृश्य हाथ है जो इन पर पूर्ण विराम लगा देता है और चर्चा पत्र पत्रिकाओं तक रह जाती है।

1947 में सघटित अमेरिकी केन्द्रीय गुप्तचर एजेन्सी सी आई ए का कार्य क्षेत्र विश्वव्यापी हो गया है। प्रत्येक महाद्वीप में इसका जाल फैला हुआ है। भौगोलिक अर्थ में यह गुप्तचर सगठन हर देश को किसी न किसी रूप मे अपने कार्यकलापों का व्यापक आचलिक अखाडा नहीं बना चुका है। अमेरिकी प्रभुत्ववादी राजनीति, अर्थनीति और रणनीति के लक्ष्यों के अनुरूप लोकतात्रिक सरकारों को पलटने से लेकर अस्त व्यस्ता एव अव्यवस्था पैदा करने तक इसने 50 वर्ष में ही नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इसके ब्लैकमेल, भ्रष्टाचार, तोडफोड आदि कार्य सब जगजाहिर है अमेरिकी विदेश नीति के विरोधी दुनिया के सभी भागों के राजनेताओं एव जननेताओं की हत्याए कराने में इसे सकोच नहीं है। मगर इसका एक और कारनामा है जो तीसरी दुनिया के युवा पीढी के खतरनाक मशों का अभ्यस्त बनाने तथा जासूसी हथियार के रूप में तस्करी और मादक द्रव्यों के अवैध व्यापार का इस्तेमाल, इस प्रयोग को सी आई ए के नीति निर्देशक बहुत लाभप्रद मानने लगे है। इस सघटन के कुछ भूतपूर्व अधिकारियो और एजेंटों ने ही इसका भण्डाफोड किया है। मेरे विचार से जिस प्रकार से व्यक्ति नशीली चीजो के खाने या पीने के आदी हो जाते है और यह आदत सामान्यत नहीं हटती, उसी प्रकार सी आई ए के कार्यरत अधिकारियों तथा एजेन्टों की भॉंति उसके कई अवकाश प्राप्त अधिकारी और कर्मचारी भी गोपनीय कार्यकलाप के रोग से मुक्त नहीं हो जाते। चूँकि आतकवादी कारवाईयों के लिए तस्कर और मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले बहुत उपयुक्त समझे जाते हैं इसलिए सी आई ए तोड फोड तथा इसी प्रकार की अपनी अन्य योजनाओं में उनका धडल्ले से इस्तेमाल करने में लगी है सबसे पहले लैटिन अमेरिका में इस जासूसी हथियार का प्रयोग शुरू हुआ

था और अब एशिया तथा अफ्रीका में इसका इस्तेमाल व्यापक रूप ग्रहण कर चुका है।

भारत भी इससे बचा नहीं है, तस्करो के जरिये पजाब, जम्बू कश्मीर और उत्तर पूर्व भारत के अलगाववादियो को हथियार तथा आर्थिक सहायता देने का क्रम जारी है। मादक द्रव्यों के तस्करी से जो भारी मुनाफा अर्जित किया जाता है उसका एक भाग सी आई ए की परियोजनाओं के कार्यान्वयन पर व्यय करने का तथ्य भी छिपा नहीं है। हा लाभ का अधिकाश भाग तस्करों को सुलभ रहने में कोई कठिनाई नहीं पैदा की जाती क्योंकि जोखिम भरे कार्यों को पूरा करने में यह प्रक्रिया कारगर साबित होती है।

जासूसी के काम में सेक्स का अपना विशिष्ट स्थान है। इस क्रिया को बढावा प्रदान करके चालाकी से काम निकालने के लिए भी मादक द्रव्यो का प्रयोग किया जाता है, विरोधियों और शत्रुओं का अपहरण करके उसे सूचनाए प्राप्त करने के काम मे भी नशीली चीजो और इनके इजक्शनों का इस्तेमाल सी आई ए के बडे पैमाने पर करने लगी हैं, पिछले कुछ वर्षों से कई देशों के अखबारों में तस्करों और मादक पदार्थो की बिक्री करने वाले गिरोहो के साथ सी आई ए की साठ-गाठ की सवाद कथाए काफी प्रकाशित होती रही है।

लेकिन हम पूछेंगे कि यह रहस्य खुला कैसे? कुछ समय पूर्व अमेरिका में फ्लोरिडा की पुलिस ने एक ऐसे गिरोह को गिरफतार किया था जो कई वर्ष से मादक द्रव्यों की तस्करी में सलग्न था। इस कार्य मे लाखों रूपये की पूँजी लगायी गयी थी और करोडो रूपये की कमाई हो रही थी। इस गिरोह का जाल अमेरिका के प्राय सभी राज्यों में फैला हुआ था, लेकिन जब इस गिरोह के सदस्यों ने गिरफतारी के बाद सी आई ए के एजेन्ट होने के कार्ड दिखाये तो फ्लोरिडा की जाच करने वाली पुलिस का माथा ठनका और उसने काफी क्रोध प्रकट किया। जॉच के दौरान यह भी पता चला है कि सी आई ए ने उन्हे विशेष कार्यों के लिए तस्करी का काम सिखाया था और खास काम हो जाने पर उन्हे यह गुप्तचर सघटन अतिरिक्त धनराशि पारितोषिक के रूप में भी दिया करते थे।

ज्यो ही उक्त घटना से सी आई ए के इस घिनौने कार्यकलाप का पर्दाफाश हुआ त्यो ही अमेरिकी प्रशासन ने चुस्ती दिखाई और फ्लोरिडा काण्ड पर पर्दा डालने की सूक्ष्म प्रक्रिया शुरू कर दी थी। तब अखबारों में इस बिषय पर खबरों का प्रकाशन बन्द हो गया और पुलिस ने भी मौन धारण कर लिया।

इस काण्ड से यह भी तथ्य प्रकाश में आया कि अमेरिका के भीतर तथा अन्य देशों में मादक

द्रव्यों की तस्करी से सी आई ए को आर्थिक लाभ होता है। जब कभी अमेरिकी काग्रेस सी आई ए की कई अति गोपनीय योजनाओ के लिए धनराशि निर्धारित करने में बाधा डालती है अथवा अपेछित धनराशि मजूर नहीं करती तो उक्त प्रकार की तस्करी प्राप्त मुनाफे का एक अश विदेशी बैंक के जाली खाते में जमा कर दिया जाता है और गोपनीय परियोजनाओं के कार्यान्वियन तथा विशेष एजेन्ट को आयकर से मुक्त नकदी पुरूस्कार देने में इसे खर्च किया जाता है।

जानकर सूत्रो के मतानुसार केवल अमेरिका मे प्रतिवर्ष मादक द्रव्यो के अवैद्य व्यापार से 4 करोड 40 लाख रूपये से 9 करोड 60 लाख रूपये तक का लाभ होता है। थाईलैण्ड, पाकिस्तान, तुर्की तथा कुछ अन्य देशों से करीब 4 टन अफीम, 70 टन कोकीन तथा कई टन चरस, चण्डू आदि अमेरिकी तस्कर मगाते हैं। यद्यपि मादक द्रव्यो की तस्करी से जो मुनाफा प्राप्त होता है। उसका बहुताश सी आई ए को इस अवैध व्यापार में सलग्न अपराधियों के गिरोहो और सिडीकेटों को देना पडता है तो भी उसे गोपनीय परियोजनाओं और पुरूस्कारों के लिए इस मुनाफे का 8 प्रतिशत तक प्राप्त हो जाता है। अमेरिकी प्रशासन प्रभुत्ववादी खेल में हर अनैतिक कार्य को नैतिक मानता है। इसी कारण इस खेल की प्रमुख टीम सी आई ए का नाम मादक द्रव्यों की तस्करी में नहीं लेना चाहता। जासूसी कला के विकास में यह अमेरिकी कदम भी निश्चय ही बेमिसाल है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अमेरिका एक पूॅजी प्रधान देश है जहॉ पर पूॅजी की प्रचुरता के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी इस देश ने अत्यधिक तीव्र गति से विकास किया है। यही कारण है कि विश्व बाजार में इसका प्रभुत्व स्थान है जो भी नियम व उपनियम विश्व व्यापार से सम्बन्धित बनाये जाते हैं उनका सचालन एव नियमन इन्हीं देशों के हॉथों मे होता है। विश्व व्यापार से सम्बन्धित जितने भी सगठन मे है, उसमें इनका प्रभुत्व स्थान होता है और सभी सगठन में ये स्थायी सदस्य होते हैं। इनके द्वारा रखी गयी बातो को जल्दी एव शीघ्र समर्थन प्राप्त होता है।

इसलिए हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ हमारे यहॉ आ रही है उनका उद्देश्य केवल व्यापार करने से सम्बन्धित होना चाहिए, यही तक यह सीमित होना चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि कहीं वे हमारे राज्यव्यवस्था को या देशव्यापी व्यवस्था में तो हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं, नहीं तो हमारी अर्थव्यवस्था को तो चौपट कर देंगें ही साथ ही साथ कहीं हम उनके अधीन न हो जाय, क्योंकि व्यापार के साथ-साथ ये अनैतिक, नशाखोरी या बहुत से गुप्तचरी सस्थाओं की स्थापना करते हैं जिससे ये देश नीति-नीतियों के बारे में जानकर वहॉं गुप्तचरी सस्थाओं द्वारा विस्फोटक या विध्वंसकारी नीति अपनाकर देश में शान्ति व्यवस्था को भग कर देते हैं जिससे

अर्थव्यवस्था पर इसका विपरीत प्रभाव पडता है, जिसके कारण विकास के मार्ग में अवरूद्ध व बाधाए उत्पन्न हो जाते हैं। इसका प्रमुख उदाहरण हम अपने गुलामी के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मानते हैं। जिन्होंने व्यापार के साथ-साथ हमारी शासन व्यवस्था पर भी अधिकार जमा लिया। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उद्देश्य लाभ कमाना तो होता है ही, लेकिन धीरे-धीरे ये बाजार व्यवस्था पर देशी उद्योगों को पनपने नहीं देते हैं क्योकि उनको हानि या उसके विकास में रूकावट डालने के लिए इनके पास अनेक कारण होते है। 1-पूॅजी की कमी, 2-तकनीकी कमी, 3-कार्यकुशलता की कमी, 4-गुणवत्ता की कमी, 5-उत्पाद निर्माण तक पहुॅचने के लिए उसके किसी एक या अनेक भाग पर आश्रित होना, 6- उत्पादन लागत का अत्यधिक होना, 7-कर्मचारियों को वेतन एव उसके सुविधा में कमी, 8-प्रबन्ध तन्त्र का ठीक न होना।

यही कारण है कि हम विदेशी कम्पनियों की अपेक्षा हमारे उद्योग उनके प्रतिस्पर्धा मे पीछे हो जाते हैं जिसके कारण धीरे-धीरे हमारे उद्योग की हानियॉ बढने लगती हैं और एक समय ऐसा आता है कि हमें अपने उद्योगों को बन्द कर देना पडता है, किन्तु यदि हम विदेशी उद्योगों की नकल करके उनकी प्रतिस्पर्धा करके हम उनसे अच्छी गुणवत्ता वस्तुओं को निर्मित करें, जिससे बाजार में हम ख्याति बना पायें तो हमारे लिए विदेशी कम्पनियॉ लाभप्रद होंगी।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ जब हमारे यहॉ व्यापार करने लगती है तो वे हमारे प्रशासनिक अधिकारियों को खरीद लेते हैं जिससे हमारे देश में बनाये गये सभी नियम बेकार एव निष्प्रवाह हो जाते हैं। ये चुनावी प्रक्रिया में भी विभिन्न पार्टियो को जिताने में या उनकी सरकार बनवाने के लिए उन्हे सुविधा शुल्क के रूप में रूपये की भेट करती है। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के यहॉ जो कर्मचारी कार्य करते हैं, उनको आर्थिक सहायता एव सुविधा देशी कम्पनियो की अपेक्षा अत्यधिक मुहैया कराती हैं। जिससे हमारे देश के कर्मचारी उनकी बातों को मानने के लिए मजबूर हो जाते हैं और वे गलत प्रलोभन देकर उनसे बहुत से अनैतिक, एव देश द्रोही कार्य करवाते हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा लोकसभा के चुनावो को प्रभावित करना :

आज की दुनिया का राजनीतिक सचालन अर्थनीति द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बोर्ड रूम से होता है। आठ के दशक से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विकास और विस्तार जिस तेजी से हुआ है, उसमें अस्सी का दशक मील के पत्थर के रूप में माना जायेगा।

अव्यवहारिक दो नये विभाग औद्योगिक गुप्तचरी विभाग तथा पोलेटिकल एक्शन ग्रुप पर

बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपने अनुसधान और विकास विभाग से अधिक खर्च करती है। औद्योगिक गुप्तचरी विभाग बहुत व्यापक है, अपने उत्पादन के बाजार के रहस्यो को जानना, प्रतिभाओं को लुभाकर अपनी कम्पनी मे लाना, विरोधी उत्पादन केन्द्र मे हडताल तथा मजदूर-आन्दोलन मे घुसपैठ तक इसमें शामिल है।

अन्तर्राष्ट्रीय पेप्सी तथा कोका-कोला कम्पनियॉ अमेरिकी राजनीति मे दूर तक दखल देती हैं। ये दोनों कम्पनियॉ क्रमश डेमोक्रेटिक तथा रिपब्लिक पार्टियों की चहेती हैं जो राष्ट्रपति के चुनाव मे प्रत्यक्ष दखल देती है। भारत में पेप्सी तथा कोका के काले इतिहास को जानना यही उद्देश्य नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओ मे पेप्सी कोला के साथ सी आई ए के गहरे सम्बन्धो की चर्चा हो चुकी है। सरकारो के तख्ता पलट में इसकी भागीदारी प्रमाणित हो चुकी है। भारतीय उपभोक्ता बाजार पर अधिकार करने के लिए 200 से अधिक बहुराष्ट्रीय विदेशी कम्पनियॉ यहॉ आ चुकी हैं। विश्व स्तर की उच्चतम 100 कम्पनियों में से 60 का कारोबार यहॉ फैल चुका है।

विदेशी सहयोग की आलोचना :

भारत ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के शोषण से अपने को स्वतन्त्र कर लिया है, लेकिन आज एक विदेशी शोषण के स्थान पर कई विदेशी शोषण हो गये है और उन्होंने विगत 42 वर्षों मे हमारा शोषण पहले की अपेक्षा कई गुना बढा दिया है।

ससद की सार्वजनिक सस्थान समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि भारत मे आवश्यक प्रौद्योगिकी उपलब्ध होने पर भी सार्वजनिक सस्थान उसके लिए बिना सोंचे-समझे विदेशी तकनीकी सहयोग के समझौते करते रहे है। लोकसभा को दी गई अपनी 80 वीं रिपोर्ट में समिति ने इस तरह के कई उदाहरण दिये हैं। जिनमे स्थानीय सार्वजनिक सस्थाओ के पास उपलब्ध प्रौद्योगिकी के लिए निजी कम्पनियो ने विदेशियो से सहयोग के लिए समझौते किये। उदाहरणार्थ इण्डियन ऑक्सीजन लिमिटेड ने ऑक्सीजन प्लाट के लिए विदेशी सहयोग का एक समझौता कर लिया, जबकि उसके लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी भारत हेवी प्लेट एण्ड बैसिल्स, विशाखापट्टनम के पास उपलब्ध थी। टैक्सायको, कलकत्ता ने एक इण्डस्ट्रियल वायलर के लिए विदेशी समझौता किया जबकि स्थित बी एल ई एल के पास आवश्यक प्रौद्योगिकी मौजूद थी। इस प्रकार और भी उदाहरण है जिनसे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार बिना सोंचे समझे विदेशी सहयोग के लिए समझौते किये जाते हैं। हमारे देश में 1975 में विदेशी

कम्पनियो को अपनी उत्पादन क्षमता 25 प्रतिशत बढाने की अनुमति दी गयी थी।[17]

इसके अतिरिक्त दूसरी ओर विदेशी सहायता के कारण हमारा निर्धारित लक्ष्य अनिश्चित हो जाता है। इसी के कारण चौंथी पचवर्षीय योजना को समय से अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका है। 1971 में भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण के समय अमरीका ने भारत को विदेशी सहायता बन्द कर देने की धमकी दी थी। तारापुर का ऊर्जा सयन्त्र विदेशी सहायता न मिलने का शिकार रहा। इसके लिए अपेक्षित ईंधन मिल सकने की सम्भावना अभी हाल के प्रयासों के फलस्वरूप हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सन्दर्भ में कतिपय औपचारिकतायें अभी भी शेष है, वे चाहे जिस प्रकृति की हो।

आज बहुत से निर्धन देशो की भॉति भारत भी सम्पन्न देशों पर न केवल विकासात्मक सहायता के लिए, बल्कि प्रौद्योगिकी के लिए भी आश्रित है। विदेशी पूॅजी के साथ-साथ विदेशी प्रौद्योगिकी भी आई है। वास्तव में विदेशी पूॅजी व विदेशी प्रौद्योगिकी को जानबूझकर आमन्त्रित किया गया था। उन्नत प्रौद्योगिकी का अर्थ भूमि या पूॅजी की प्रति इकाई उत्पादन बढाना नहीं, बल्कि काम में लगे प्रति श्रमिक या प्रति उद्यमी उत्पादन बढाना है। जिसका परिणाम यह हुआ कि आय में असमानता बढी, बेरोजगारी बढी, आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण बढा और यही वे मर्ज थे जिनको हमारे सविधान के निर्माता दूर करना चाहते थे।

1976 में तत्कालीन विदेश मत्री श्री चह्वाण ने भी यह स्वीकार किया - 'विदेशी पूॅजी' अपने साथ ऐसी पूॅजी प्रधान प्रौद्योगिकी लेकर आयी जो अतिरिक्त श्रम वाले देशों की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी।[18] इन सबके बावजूद हमारे पास आवश्यक मात्रा में न तो पूॅजी है और न प्रौद्योगिकी, जिसके कारण हम विदेशी सहयोग के कुचक्र में फॅसे हुए हैं। इस प्रकार हमारे राष्ट्र का आर्थिक विकास विदेशी पूॅजी, विदेशी मशीनों और विदेशी प्रौद्योगिकी पर निर्भर है।

विदेशी पूॅजी से देश की स्वाधीनता एव स्वाभिमान को ठेस पहुॅचेगा क्योंकि ये देश अपनी विदेशी सहायता के साथ हम पर अपने राजनीतिक विचार थोपने का प्रयास करेंगे और इससे देश को एक स्वतन्त्र आर्थिक नीति का निर्माण करने में बाधा उठ खड़ा होगी। इससे पलायन की भी प्रवृत्ति होगी जिससे हमारे देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है। विदेशी पूॅजी से आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। इससे हमें एक तरह से अपने देश के लाभों का निर्यात करना पड रहा है। विदेशी पूॅजी का देश की सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था पर भी बुरा प्रभाव पडता है।

---

17 मिश्र, जगदीश नारायण · भारतीय अर्थव्यवस्था (12वॉं सस्करण) 1996, पृष्ठ सख्या-939

18 मिश्र, जगदीश नारायण भारतीय अर्थव्यवस्था, 1996, पृष्ठ सख्या-940

जैसे- पूँजीगत वस्तुओ की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तुओं पर अधिक बल देना, सार्वजनिक क्षेत्र में विदेशी सहायता के उपयोग पर प्रतिबन्ध, आर्थिक उदारवाद की नीति लागू करना, डकल प्रस्ताव, औद्योगिक विस्तार के लिए निजी क्षेत्र को प्राथमिकता, 1966 एव 1991 का अवमूल्यन आदि सभी बाते अवाछित राजनीति दबाव का ही परिणाम कही जा सकती है। विदेशी सहायता से देश पर ऋणो का बोझ और ऋण सेवा भार निरन्तर बढता जा रहा है। कुछ ऋण सेवा भार में ब्याज भुगतान का प्रतिशत निरन्तर बढता जा रहा है। हमे कुछ देशो विशेष कर अमेरिका की सहायता का काफी भाग बँधीसहायता के रूप मे है। इससे हमें ऋणदाता देशों से अनिवार्य रूप से ऊँची कीमतो पर माल खरीदना पडता है। ये कीमते अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो से 30 से 40 प्रतिशत अधिक होती है। इससे विदेशी सहायता की लागत बढ जाती है, सहायता भार बढ जाता है। विदेशी सहायता का उचित उपयोग योजनाओं के कुशल क्रियान्वयन पर निर्भर करता है, जिसका हमारे यहॉ पहले से ही अभाव है। जब तक देश स्फूर्ति अवस्था तक नहीं पहुँचता तब तक हमे बडे पैमाने पर आयात करना होगा और हम निर्यात क्षमता का पूर्ण विस्तार नहीं कर पा रहे हैं तो हमें भुगतान दायित्यो का बोझ निरन्तर सहना ही पडेगा। इस सहायता की अनिश्चित्ता कुशल आयोजन के मार्ग में एक बहुत बडी बाधा खडी कर देती है। यदि सहायता के जारी करने के सन्दर्भ में कोई पूर्ण निश्चित व्यवस्था नहीं है तो इससे दाता देश तथा ऋणी देशो के बीच अनावश्यक तनाव तथा गलतफहमी की स्थिति जारी रहती है, लेकिन प्रत्येक गठबन्धन वाली सरकार में यह कोई आसान काम नहीं है जहॉ सभी या अधिकाश राजनैतिक दलों की किसी बात पर सहमति बन जायें।

चीन और जापान के उदाहरण इसके विपरीत है। चीन असम्भव कठिनाइयों का उस समय से सामना कर रहा है जब से सोवियत सघ ने अपने टेक्नीशियन वहॉ से वापस बुला लिये थे, तब से चीन ने विदेशी सहायता के विरूद्ध सघर्ष किया है और अपनी समस्याओं के पहले हल खोजें हैं। जापान ने विदेशी प्रौद्योगिकी का आयात तभी किया जब उसके बिना काम नहीं चल पाया, लेकिन न विदेशी पूँजी का आयात किया, न विदेशी प्रबन्ध का। जापानी अर्थशास्त्रियों के अनुसार - इस नीति का परिणाम यह हुआ कि स्थानीय उद्यम के विकास को प्रोत्साहन मिला है और जापानी अर्थव्यवस्था के अन्दर विदेशी 'उपनिवेश' नहीं बन पाये हैं जैसे कि अल्प-विकसित देशों में हुआ है। परन्तु अधिकाश विकासशील देशों को विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पडता है यद्यपि विदेशी सहयोग की बहुत सी कमियॉ भी है।

विदेशी सहयोग की समस्याएं :

1. राजनीतिक दबाव :

विदेशी सहयोग ने बहुत बडी सीमा तक राजनीतिक दबाव की भूमिका अदा की है। बहुत से विदेशी समझौते राजनीतिक दबाव के कारण हुआ करते है। यहाँ तक कि मुद्रा का अवमूल्यन भी करना पडता है। भारत का 1966 का मुद्रा अवमूल्यन विदेशी दबाव के कारण ही हुआ था। भारत एव चीन के युद्ध के समय 1962 में सोवियत रूस ने भारत को बोकारो इस्पात सयन्त्र में सहयोग देने में असहमति व्यक्त की थी। इसी प्रकार भारत पाक-युद्ध के दौरान 1971 मे अमेरिकी सरकार ने भारत पर दबाव डालने की कोशिश की थी और धमकी दी थी कि वह विदेशी सहायता बन्द कर देगा। अत विदेशी निर्भरता जिस देश पर जितनी अधिक होगी, उस देश पर उतना ही अधिक विदेशी दबाव बढेगा। जब 1950 के लगभग सयुक्त राज्य अमेरिका का विदेशी सहायता बजट अचानक अधिक तेजी से बढने लगा तो इसकी प्रमुख प्रेरणा कम विकसित देशों की विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने की इच्छा थी। यह विकसित ससार के उस हिस्से में विशेष रूप से हुआ जिसका अध्ययन मिर्डल ने बहुत गहराई से किया हैं कम विकसित ससार का यह विशाल भाग दक्षिण एशिया है। कम विकसित देश का राजनीतिक गठबन्धन और कुछ मामलों में पहले से मौजूद ऐसी तटस्थता जो अमित्रतापूर्ण न हो, सयुक्त राज्य अमरीका की राजनीति दिलचस्पी का बिषय बन गया। इस क्षेत्र के देशों को जो अनुदान और ऋण प्राप्त हुआ, उसका अस्सी प्रतिशत अमरीका से मिला। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका की प्रभावशाली स्थिति रही। सहायता का राजनीतिक उद्देश्य इस क्षेत्र के देशों में इसके वितरण से स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ। पाकिस्तान को सैनिक सहायता के अलावा, प्रति व्यक्ति के हिसाब से भारत की तुलना में दुगुनी सहायता मिली। पाकिस्तान को यह सहायता सयुक्त राज्य अमरीका से उसके राजनीतिक और सैनिक गठबन्धन के मुआवजे के रूप में मिली। सन् 1960 के दशक मे सयुक्त राज्य अमरीका द्वारा अपने ऋणों पर यह पाबन्दी लगाना कि उनकी राशि से केवल अमरीका से ही माल खरीदा जा सकता है, अत्यधिक आलोचना का आधार रहा है।

यह आलोचना बाद में अधिक कड़ी हुई और अमरीका के इस रवैये को शोषण कहा जाने लगा। 11 मई और 13 मई 1998 को प्रधानमत्री अटल बिहारी बाजपेयी की अध्यक्षता में परमाणु बम का परीक्षण किया गया जो सफल भी रहा, लेकिन इस परीक्षण के बाद ही अमरीका ने भारत पर तुरन्त आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिया और सी टी बी टी पर हस्ताक्षर करने को मजबूर भी कर रहा है।

2. अनिश्चित्ता.

विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता परियोजनाओ एव निर्धारित कार्यक्रमों को लागू करने में अनिश्चित्ता की स्थिति पैदा करती है। कभी-कभी तो सहायता विलम्ब से मिलने के कारण हानिकारक परिणाम भुगतने पडे हैं। इस अनिश्चित्ता के कारण हमारी योजनाओ में भी अनिश्चित्ता बनी रहती है। विदेशी सहायता के सम्बन्ध में हमेशा यह डर बना रहता है कि वह किसी भी समय, थोडा सा भी संकट आने पर देश से पलायन कर सकती है। इसके कारण सहायता प्राप्त करने वाले देशों की विकास योजनाए स्थगित हो जाती है। यही कारण है कि बोकारो इस्पात सयन्त्र तीसरी योजना के बजाय चौथी योजना में स्थापित हुआ।

3. बॅधी सहायता अधिक ·

विदेशी सहायता दो प्रकार की होती हे एक तो मुक्त सहायता जिसका उपयोग किसी भी प्रकार से किया जा सकता है। दूसरी बॅधी सहायता जिसका उपयोग उसी प्रोजेक्ट के लिए किया जा सकता है जिसके लिए उसे प्रदान किया गया है। अब तक भारत को जो विदेशी सहायता मिली है उसमें बॅधी सहायता का प्रतिशत अधिक है। इस प्रकार भारत के सामने एक समस्या यह है कि यद्यपि ऐसा सहायता का उपयोग हो रहा है, लेकिन यह अच्छा होता कि बॅधी सहायता का अनुपात कम होता है।

4. नीची उपयोग दर:

भारत मे स्वीकृत विदेशी सहायता का शत प्रतिशत भाग उपयोग में नहीं लाया गया है। यह बडे ही आश्चर्य की बात है कि एक ओर तो हम अधिक से अधिक विदेशी सहायता की माग करते हैं, दूसरी ओर स्वीकृत अधिकृत सहायता का उपयोग नहीं कर पाते हैं। वर्ष 1993-94 तक कुल 135096 करोड रूपये की विदेशी सहायता अधिकृत की गयी थी। जिसमें से उस अवधि में 95220 करोड रूपये का उपयोग किया जा सका था। इस प्रकार अब तक कुल अधिकृत सहायता का केवल 71 प्रतिशत भाग ही उपयोग किया जा सका है। अत अधिकृत एव प्रयुक्त विदेशी सहायता में अन्तराल बना हुआ है। विदेशी सहायता की उपयोग दर विकासशील देशों में अनेक तत्वों पर निर्भर करती है। वर्ष 1964 में डॉ० वी के आर बी राव की अध्यक्षता में गठित समिति ने उपयोग दर तेज करने की सिफारिश की

थी। इस प्रकार 1950-51 से 1955-96 के बीच स्वीकृत विदेशी सहायता का लगभग 65 प्रतिशत ही काम मे लाया गया है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी का विपरीत प्रवाह तथा बढ़ता सरक्षणवाद

विदेशी सहायता जो ऋण के रूप मे प्राप्त होती है, उसका कुछ समय बाद विकासशील देशों से विकसित देशों को प्रवाह होने लगता है। विश्व बैंक की सूचना के अनुसार 1986 मे 109 विकासशील राष्ट्रो ने ब्याज अदायगी के रूप में दीर्घकालीन ऋणो से 30 अरब डालर से अधिक का भुगतान किया। आज दुनिया के अधिकाश राष्ट्रों में सरक्षणवाद एक आवश्यक बुराई के रूप मे घुसपैठ कर चुका है। विकसित राष्ट्रो में बढता सरक्षणवाद विकासशील राष्ट्रो के निर्यातों की वृद्धि के लिए गतिरोधक के रूप में बाधक सिद्ध हो रहा है। निर्यात वृद्धि के अभाव में इन राष्ट्रो को मजबूरन विकास और पुराने ऋण चुकाने के लिए अधिक ऋण का सहारा लेना पडता है जो एक भयावह दुष्चक्र का रूप ग्रहण कर चुका है। यह सत्य है कि बढते सरक्षणवाद के कारण गरीब राष्ट्रो की निर्यात कमाई पर विपरीत असर पडा है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ इन राष्ट्रों को अपनी कर्ज-अदायगी में दिक्कतें आ रही हैं और दूसरी तरफ विकास के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा की आवश्यकता अनुभव की जाती है।

शोधन की समस्या :

भारत के समक्ष सबसे बडी समस्या शोधन या ऋण सेवा का भुगतान है। ऋण सेवा से अर्थ मूलधन एव उस पर ब्याज के भार के भुगतान से लगाया जाता है। यह भार दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है जिसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय पर दबाव बना रहता है। प्रतिवर्ष भारी नुकसान का दबाव होने के कारण अनेक देशों से ऋण भुगतान करने की तिथि को कुछ समय के लिए स्थगित करने की प्रार्थना करनी पडती है या भुगतान की अवधि में वृद्धि करने के लिए अनुरोध करना पडता है या भुगतान की शर्तों को पुन निर्धारित करने के लिए कहना पड़ता है।

तालिका 5 14

ऋण शोधन सबन्धी अदायगियॉ

(मिलियन अमेरिकी डालर)

मद	1989-90	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94
विदेशी सहायता	2145	2307	2588	2798	2984
वापसी अदायगियॉ	1148	1244	1406	1523	1656
ब्याज अदायगियॉ	997	1063	1182	1275	1328
विदेशी वाणिज्यिक	2240	2665	2573	2873	3252
वापसी अदायगियॉ	1154	1502	1373	1639	2033
ब्याज अदायगियॉ	1086	1163	1200	1234	1219
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष	1046	783	697	614	430
वापसी अदायगियॉ	877	649	459	335	13
ब्याज अदागियॉ	169	134	238	279	296
अनिवासी भारतीयो की जमा राशि	1112	1282	1036	930	905
ब्याज अदागियॉ	1055	1193	1240	878	745
कुल ऋण शोधन	7598	8230	8134	8093	8316
वापसी अदायगियॉ	4234	4588	4478	4375	4568
ब्याज अदायगियॉ	3364	3642	3656	3718	3748
चालू प्राप्तियों के /के रूप मे	31 8	32 3	29 8	30.3	24 8

स्रोत्र *आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 1994-95, पृष्ठ सख्या- 124*

उपर्युक्त तालिका से यह प्रतीत होता है कि ऋण प्राप्त करने के परिणामस्वरूप लगातार कुल ऋण सेवा भार बढती ही जा रहा है। पिछले तीन वर्षों में ऋण शोधन अदायगिया लगभग 8.2 बिलियन डालर तक होती रहीं परन्तु वर्ष 1994-95 में ये बढ़कर लगभग 10.5 बिलियन डालर तक हो जाने का अनुमान है। ऋण शोधन अनुपात (सरकारी अन्तरणों को छोडकर चालू प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप में ऋण शोधन)वर्ष 1990-91में 31 8 प्रतिशत रहा है और यह गिरावट वर्ष 1992-93 में 30.3 प्रतिशत

से वर्ष 1993-94 मे 24 8 प्रतिशत तक विशेषकर तेज रही है। तथापि वर्ष 1994-95 में यह अनुपात बढने की आशा है।

ऋण अदायगी के इस बढते बोझ से तग आकर ब्राजील ने फरवरी 1987 में अपने कुल ऋणों में से 68 अरब डालर पर ब्याज न दिये जाने की घोषणा कर डाली और अर्जेन्टीना, बेनेजुएला, फिलीपीन्स, जैरे, नाइजीरिया आदि राष्ट्रों ने भी निकट भविष्य में इस समस्या के उचित समाधान के अभाव मे ब्राजील के पदचिन्हो पर चलने की चेतावनी दी है। इतना ही नहीं पेरू ने तो अपने 14 अरब डालर के ऋण का भुगतान स्थगित (मोराटोरियम) कर देने की घोषणा कर दी है। विश्व के अन्य देश भी ऐसे कदम उठा सकते हैं।

6

बहुराष्ट्रीय निगमों के सन्दर्भ में यूरोपीय समुदाय में भारत की संभावनाएं

बहुराष्ट्रीय निगमों के सन्दर्भ में यूरोपीय समुदाय में भारत की संभावनाएं

विश्व व्यापार सगठन बनने के साथ ही यूरोपीय समुदाय एक बेहद मजबूत व्यापार गुट के तौर पर उभरा है। यूरोप के पन्द्रह देश सीमाओं पर अपनी बाधायें समाप्त कर अब साझा व्यापार की दिशा में चल पडे है। समुदाय का गठन और तेज विस्तार आर्थिक और भू-राजनीतिक तौर एक नई विश्व व्यवस्था की ओर इशारा करता है, लेकिन यह निराशाजनक है कि भारत ने इस समुदाय को वह अपेक्षित तरजीह नहीं दी है जो दी जानी चाहिए। इसके बावजूद भारत समुदाय के एजेंडे पर वरीयता के साथ है और इसके नेता भारत के साथ रिश्ते बेहतर करना चाहते हैं।

भारत ने जहॉ उदारीकरण के आधे दशक के बावजूद अब तक राज्यों के बीच व्यापार और उत्पादों की आवाजाही सुगम नहीं हो पाई है, वही यूरोप के पन्द्रह देशों ने अपनी सीमाए गिराकर अपनी आर्थिक और विकास से जुडी चिताओं को साझा कर लिया है।

भारत में कम लोग यह जानते होंगे कि वर्षो के अनगिनत सघर्षों और खून खराबे के बाद अब पश्चिम यूरोप के देश एक साथ मिलकर जिस स्वरूप में उभर रहे है वह दरअसल एक नई विश्व-व्यवस्था की तैयारी है। पश्चिमी यूरोप के 15 देशो के एक साथ लाने में हालाकि व्यापार और आर्थिक कारको बुनियादी तौर 'एड्हेसिव' का काम किया है पर अब यूरोपीय समुदाय की नई भू-राजनीतिक इबारतें भी पढी जा रही है। काफी पहले से शुरू हुई यूरोपीय एकता की पहले अब जिस मुकाम पर है वहॉ 15 देशों के 37 करोड लोगों का समुदाय बन गया है। जिनके बीच काफी हद तक व्यापार साझा है। कुछ झगडते, कुछ पर एक राय होते, कहीं पर सहमति तो कहीं पर गहरे मतभेद, कुछ मुद्दों को लेकर उत्सुक तो कुछ मामलों पर निराशा से होते हुए पश्चिमी यूरोप की यह मात्रा यूरोपीय काउसिल, यूरोपीय ससद, यूरोपीय न्यायालय, यूरोपीय निवेश बैंक के बाद अब पूरे यूरोप में एक मुद्दा तक आ पहुँची है। अतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर विश्व व्यापार सगठन (डब्ल्यू टी ओ) के उभार के साथ यूरोपीय समुदाय अब एक बेहद ताकतवर व्यापार गुट बन चुका है, यह सब मानते है। यह अलग बात है कि भारत ने इस समुदाय से रिश्ते कायम करने को अब तक हाशिये पर रखा है, बावजूद इसके अपनी आर्थिक सभावनाओं के चलते भारत यूरोपीय समुदाय के सर लियन ब्रिटेन के अनुसार भारत और हमारे बीच में साझा लोकतन्त्र को लेकर है, इसलिए हम साथ काम कर सकते है।

भारत के लिए यूरोपीय समुदाय के समृद्ध बाजार में पैठ बनाने की सभावनाए तो है ही इसके साथ इन देशो की एक होने की प्रक्रिया में कई नसीहतें भी छिपी हुई है। भारत जहॉ उदारीकरण के आधे दशक के बावजूद अब तक राज्यो के बीच व्यापार और उत्पादों की आवाजाही सुगम नहीं हो पाई है वही यूरोप के 15 देशों ने अपनी सीमाए गिराकर अपनी आर्थिक और विकास से जुडी चिताओ को साझा कर लिया है। इन देशों की सीमाए अब न लोगों को रोकती है और न व्यापार को, यूरोप की एकता इस तथ्य की रोशनी में और अहम् हो जाती है कि ये देश दूसरे विश्व युद्ध तक एक दूसरे के खिलाफ कूटनीतियों, षडयन्त्रों और सामारिक प्रतिस्पर्धा में लगे थे। इस मामले में यह एक अभिनव प्रयोग हो जाता है जिसमें इन देशो के लोग कुछ मामले में बिल्कुल एक ढग से सोंचने लगे है। इधर भारत जिसकी एक राष्ट्र के तौर पर एक सीमा है वहीं आर्थिक विकास के मामले मैं राज्यों के क्षत्रप भी एक ढग से नहीं सोंच पाते। यूरोप की एकता की जरूरत दर असल दूसरे विश्व युद्ध के खून-खराबे के दौरान ही महसूस की गई थी। पर तब तक यह एक वैचारिक आदर्श से ज्यादा कुछ नही थी। यूरोपीय देशों की राष्ट्रीय अस्मिता के गहरे आग्रह तब सिर चढ बोल रहे थे और उस दौर मे यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि यूरोप के देश अपनी दीवारें गिराकर इस हद तक एक हो जायेंगें कि उनके बीच एक मुद्दा चलाने की तैयारी होगी। यूरोपीय एकता की शुरूआत 'शूमैन प्लान' से मानी जा सकती है। जिसके मूल मे इटली के सघवादी एल्टियेरो स्पिनेली और जॉन मापेट थे। यह शूमैन प्लान ही था जिसके आधार पर 1951 में यूरोपियन कोयला ओर इस्पात समुदाय की नींव पडी। यूरोप में इस समुदाय से साझा जरूरतें महसूस करने और कुछ मामलों में मिलकर कदम उठाने की प्रक्रिया शुरू हुई थी जो 1957 में यूरोपीय आणविक ऊर्जा समुदाय यूरोटाम और 1958 में रोम में यूरोपीय आर्थिक समुदाय की सधि से गुजरकर 1986 में एकल यूरोपियन अधिनियम तक आई।

एकता की इस प्रक्रिया का शिखर या 1922 की मास्ट्रिख सधि, जिसके जरिये यूरोपीय समुदाय की एक सवैधानिक आधार मिला है और पश्चिमी यूरोप के सप्रभु राष्ट्र मजबूती के साथ एक झडे के तले आ गए। आज इस समुदाय ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रास, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, नीदरलैण्ड, डेनमार्क, लक्जमबर्ग, आयरलैण्ड, ग्रीस, आस्ट्रिया, फिनलैण्ड, स्वीडन और बेल्जियम कुल 15 देश है। यूरोपियन कोयला और इस्पात समुदाय से मास्ट्रिख सधि के बीच का इतिहास दरअसल असहमति दर असहमति और सहमति का है। जैसे 1957 में फ्रास की राष्ट्रीय असेम्बली ने यूरोपीय रक्षा समुदाय का प्रस्ताव नकार दिया, तो श्रमिकों, उत्पादों और सेवाओं की मुक्त आवाज ही पर केन्द्रित यूरोपीय आर्थिक समुदाय बनाने की तैयारी की गई। छठे दशक के अन्त तक यूरोपीय देशों के बीच निर्मित सामॉनों पर सीमा शुल्क काफी हद तक समाप्त कर दिये गये थे। कृषि व वाणिज्यिक मामलों पर

काफी हद तक एक जैसी नीतिया आकार लेने लगी थी। बेल्जियम, फ्रास, जर्मनी, इटली, लक्जमबर्ग, और नीदरलैण्ड इन छह देशो की सदस्यता वाले इस आर्थिक समुदाय में, लम्बी और जटिल विचार विमर्श व जनरल द गाल के दो बार बीटो के बाद 1973 मे डेनमार्क, आयरलैण्ड, और यूनाइटेड किगडम शामिल हुए।

1970 में अमेरिका ने जब डालर की परिवर्तनीयता निरस्त कर दी और 1973 व 1979 में विश्व में दो बार तेल सकट का सामना किया, तब यूरोप के देशों में अपने आर्थिक हितों को लेकर एकजुटता दिखाई दी और इसके नतीजे के तौर पर 1979 मे यूरोपीय मौद्रिक समुदाय का गठन हुआ। 1981 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय में ग्रीस और 1986 में स्पेन व पुर्तगाल शामिल हुए। 12 देशों का यह सघ बनने के बाद 1922 में एक यूरोपीय समुदाय का गठन हुआ तथा मास्ट्रिख सधि के जरिये इसका सविधान और सस्थाए तय की गई। 1994 मे माराकेस में गैट सधि के बाद यूरोपीय समुदाय एक मजबूत व्यापार गुट के तौर पर उभरा और 1995 में आस्ट्रिया फिनलैंड और स्वीडन ने इसमें शामिल होकर इसकी ताकत और बढा दी।

स्पेन और पुर्तगाल जिस रास्ते से गुजरकर यूरोपीय समुदाय में शामिल हुए वह रास्ता किसी को भी सीख दे सकता है। यूरोप को विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में पिछडे माने जाने वाले इन देशो ने जिस तेजी के साथ खुद को विकसित देशों की पात मे शामिल किया, वह आश्चर्यजनक है। स्पेन और पुर्तगाल ने अपना, आर्थिक ढाँचा इसलिए सुधारा क्योंकि उन्हें समुदाय में शामिल होने के बाद मिलने वाले लाभ दिख रहे थे। ये लाभ निवेश में बढोत्तरी, भारी व्यापार और अतर्राष्ट्रीय स्तर पर हितो का सामूहिक सरक्षण थे। पुर्तगाल 1986 में यूरोपीय समुदाय का सदस्य बना और 1984 में इस देश मे मुद्रास्फीति की दर थोडी नहीं 30 फीसदी थी। 1990 तक पुर्तगाल इसे घटाकर 12 फीसदी पर और अब पिछले साल इसे 3 1 फीसदी पर ले आयात है।[1] दस सालों में यह प्रगति चौंकाने वाली है। विकास की दौड मे शामिल होने का लाभ इन देशों को विदेश निवेश में व्यापक बढोतरी से मिला है।

मास्ट्रिख सधि को यूरोपीय समुदाय का 'लाचिग पैड' माना जाता है क्योंकि इसके बाद समुदाय ने जिस तेजी के साथ इस एकजुटता को सस्थागत आधार देना शुरू किया, उल्लेखनीय है। हालाकि यूरोपीय ससद और यूरोपीय आयोग पुरानी सस्थाए है पर मास्ट्रिख सधि के बाद इनकी भूमिका और इनके काम काफी अहम् हो गये है। 626 सदस्यों वाली यूरोपीय ससद ने इस समय

---

1 *मासिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण, 19 मई १९९७, पृष्ठ सख्या-6*

जर्मनी के पास 99, फ्रास, इटली और यूके प्रत्येक के पास 87, स्पेन के पास 64, नीदरलैंण्ड के पास 31, बेल्जियम पुर्तगाल व ग्रीस के प्रत्येक के पास 25, स्वीडन के पास 22, आस्ट्रिया के पास 21 डेनमार्क और फिनलैण्ड प्रत्येक के पास 16, आयरलैण्ड के पास 15 और लक्जमवर्ग के पास 6 सीटे है। सीधे चुने हुए सदस्यो की यह सस्था विधाई प्रक्रिया मे शामिल होने के साथ, यूरोपीय समुदाय के कामकाज पर नजर रखती है। इसके मुख्य सत्र स्टासबर्ग मे आयोजित होते है।

इधर यूरोपीय आयोग जिसे यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय, यूरोपीय आर्थिक समुदाय और यूरोटॉम को मिलाकर गठित किया गया था आज समुदाय की केन्द्रीय नीति निर्माण सस्थाओ मे है। इससे फ्रास, जर्मनी, इटली, स्पेन और यूके के दो-दो सदस्यो के अलावा अन्य देशो के एक-एक सदस्य अर्थात कुल मिलाकर 20 सदस्य हैं तीसरी प्रमुख सस्था यूरोपीय समुदाय परिषद है जिसे समुदाय की मत्रिपरिषद माना जा सकता है। इसकी बैठकें ब्रुसेल्स और लक्जमबर्ग मे होती है इसके अलावा यूरोपीय कोर्ट ऑफ आडिटर्स, कोर्ट ऑफ जस्टिस और 222 सदस्यों वाली आर्थिक व सामाजिक समिति है जिसकी राय लेना अनिवार्य है। यूरोपीय निवेश बैंक का गठन यूरोपीय समुदाय की वित्त पोषण सस्था के तौर पर किया गया है। समुदाय की सबसे नयी सस्था ऑफ रीजस है। जिसमे 222 सदस्य हैं।

मास्ट्रिख सधि के बाद से यूरोपीय समुदाय ने अपने फैसलो के लिये एक समय सीमा का सख्ती से पालन किया है। इसलिये निर्णय काफी तेजी से हुए हैं। इसलिये अब इस बात पर जोर दिया जाने लगा है कि यदि अधिकाश देश सहमत हैं तो किसी एक देश के लिये फैसले को टाला नहीं जाना चाहिए। यूरोपीय परिषद के 87 सदस्य वोटों में बडी सख्या जर्मनी, फ्रास, इटली और यूनाइटेड किगडम के पास हैं। आयोग के अधिकारी ने कहा कि जब हम अगले दस सालों में 20 नये सदस्य शामिल करने का विचार कर रहे हैं तब हमें एक रास्ता तो चुनना ही होगा, या तो आगे बढने के लिये निर्णय किया जाय या फिर किसी एक देश की समस्याओं के चलते निर्णय कर यूरोपीय समुदाय को उसके हाल पर छोड दिया जाये।

इस तरह की घटना के साथ यह देखना होगा कि 1 जनवरी 1999 से पूरे यूरोपीय समुदाय मेंएक मुद्रा का प्रचलन की महत्वाकाक्षी योजना पर काम शुरू हो सकेगा और क्या देश इस मुद्रा 'यूरो' के लिये अपने पौण्ड, फ्रैंक, मार्क आदि को छोड़ने पर राजी हो जायेगा। योजना के तहत् 1 जनवरी 1999 तक यूरोपीय कामर्शियल बैंक (ई सी बी) और यूरोपियन सिस्टम आफ सेन्ट्रल बैंक (ई एस सी बी) तैयार हो जायेंगे और यूरो नोट व सिक्के जारी करने की प्रक्रिया शुरू की जाएगी।

उपरोक्त तारीख से ही यूरोपीय परिषद इस व्यवस्था में भागीदारी करने वाले देशों की मुद्रा की विनिमय दर तय करेगी। यूरोपीय समुदाय जिस योजना पर काम कर रहा है उसके तहत् 1 जनवरी 2002 तक सदस्य देशों की मुद्रायें पूरी तरह यूरो से बदल जानी हैं। यूरोपीय समुदाय के कार्यालय एक जटिल प्रक्रिया के तहत सदस्य देशों की मुद्राओं को यूरो में बदलने की गणित लगा रहे हैं। एकल मुद्रा पर अभी मतभेद, कायम है खासतौर पर ब्रिटेन की ओर से, पर जिस तरह समुदाय ने एक के बाद एक निर्णय लिये हैं। उससे लगता है कि इसको भी लागू कर लिया जायेगा। यूरोपियन इम्प्लायर्स फेडरेशन के महासचिव जिगमाट टेस्केवेंज कहते है कि 'अब पूर्ण परिवर्तनीयता वाली' मुद्राओं से काम नहीं चलेगा, हमें एकल मुद्रा की ओर बढना होगा।

आखिर यूरोप में एकल मुद्रा की जरूरत इतनी शिद्दत के साथ क्यों महसूस की जा रही है। इसकी सीधी वजह यूरोप के देशों का छोटा आकार है। यूरोप की यात्रा पर निकलने वाले एक यात्री को विभिन्न देशों में जाने के लिये कई मुद्राए अपनी जेब में रखनी पडती हैं और विभिन्न देशों में विनिमय दरों का फर्क और कमीशन आदि के चलते यात्री की एक बडी राशि इसी कमीशन आदि में निकल जाती है।

यूरोपीय समुदाय के अधिकारी एक उदाहरण देते हैं कि यदि कोई 100 डालर लेकर यूरोप की यात्रा पर निकलें तो पूरी यात्रा के बाद उसके 50 डालर तो कमीशन आदि में निकल जाते हैं। इधर व्यापारियो के नजरियें से एकल यूरोपीय मुद्रा यूरोप की अन्य मुद्राओं के मुकाबले काफी स्थिर होगी, जिससे निर्यातकों और आयातकों को लाभ होगा। इसलिए यूरो जारी करने की आवश्यकता को यूरोप में समर्थन मिल रहा है।

यूरोपीय समुदाय में पिछले कुछ साल मे हुए बदलावों से वहाँ के आम लोगो को यह बात तो समझ आने लगी है कि एकजुटता की ये कोशिशें अतत उनके लाभ के लिए ही है। सरकारें अपने उद्योगो को सरक्षण देरही है, उनके लिए बाजार तलाश कर रही है जिससे उनके लिए समृद्धि आएगी। यूरोपीय समुदाय की नागरिकता के लाभ भी लोगों को समझ आ रहे है। समुदाय के नागरिक को समुदाय के भीतर कहीं भी जाने, काम करने और कराने की छूट होगी और देश के बाहर जाने पर समुदाय उन्हें राजनायिक सरक्षण देगा। इसके अलावा नागरिकों के अलावा सामाजिक सुरक्षा के तमाम प्रावधान है अर्थात एक तरह से अब स्वीडन जर्मनी या फ्रास नहीं पूरा यूरोप उनका घर होगा जिसमें उनकी समृद्धि की तमाम संभावनाए निहित होगी। इसलिए ही टेस्केवेज कहते हैं कि 'एक बाजार से देश के भीतर प्रतिस्पर्धा बढेगी' और व्यापार जगत सक्रिय होगा इसका परिणाम स्वरूप अधिक

रोजगार और अधिक समृद्धि आएगी। यूरोपीय समुदाय के सदस्य देशों के आम लोग यह मानते हैं कि पहले झगडे रहे होगे,लेकिन अब उन्हे भूल जाने की जरूरत है क्योकि नये तरह की चुनौतिया हमारे सामने हैं और उनका सामना मिलकर करना है।

भारत, यूरोपीय समुदाय के लिए काफी महत्वपूर्ण है। यूरोपीय समुदाय चीन के बाद अब भारत पर निगाहें जमा रहा है। कम्पनियॉ यहॉ निवेश के इच्छुक हैं वे भारत से व्यापार बढाना चाहती हैं। पर स्थिति यह है अब तक भारत की ओर से यूरोपीय समुदाय के कार्यालयों का कोई सरकारी दौरा नहीं किया गया है। फ्रास के विदेश मत्री चार्ल्स मिलान ने कहा कि उन्होंने पिछले कुछ समय में भारत से द्विपक्षीय बातचीत के तीन प्रस्ताव भेजे पर उन पर भारत की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। वे कहते हैं कि भारत उदारीकरण कर रहा है हम बात करना चाहते हैं, और एक दूसरे को समझना चाहते हैं वहॉ के अधिकारी भारत के भू राजनीतिक महत्व को स्वीकार करते हैं।

लक्जमबर्ग के प्रधानमत्री जीन क्लॉड बेकर ने कहा कि शीत युद्ध के बाद भारत की भूमिका और स्थिति महत्वपूर्ण हो गई है,लेकिन हमें भारत और एशिया के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। यूरोपीय समुदाय के नेता भारत को एक सभावनाओं भरा देश पाते है और भारत से रिश्ते मजबूत करने के पक्ष में है, लेकिन भारतीय पक्ष की ओर से सूचनाओं का प्रवाह बेहद सुस्त है। यह यूरोपीय समुदाय के देशों में भारतीय दूतावासों के कामकाज से देखा जा सकता है। भारत की ओर से सूचनाओं की कमी का शिकायत हर जगह मिलती है। इन देशों में भारत के प्रचार-प्रसार का जो भी काम दिखा है, वह निजी कम्पनियों के सगठनों और भारतीय चैम्बरों का है। यूरोपीय ससद के सदस्य राबर्ट इवास ने कहा कि 'भारत' को अभी दक्षिण एशियाई देशों के साथ रखकर देखा जा रहा है लेकिन सार्क देशों मे भारत एक विशाल अर्थव्यवस्था है और रणनीतिक तौर पर भी महत्वपूर्ण है, लेकिन ब्रिटेन के अलावा समुदाय के अन्य देशों से भारत का द्विपक्षीय सचार काफी कमजोर है।

1990 से 1995 के बीच यूरोपीय समुदाय को भारत को निर्यात बढा है पर इसमें निजी निर्माताओं के प्रयास से ज्यादा है। हालाकि भारत और यूरोपीय समुदाय एक दूसरे को सर्वाधिक वरीयता वाले देश का दर्जा दे चुके है और यूरोपीय समुदाय अमेरिका के बाद भारत का दूसरा सबसे बडा व्यापारिक भागीदार है। 1993 में दोनों देशों के बीच व्यापार 47,381 3 करोड रूपये था। इधर यूरोपीय समुदाय के बाजार में भारत का हिस्सा जो 1990 में 0 98 फीसदी था वह 1995 में बढकर 1.43 फीसदी पर पहुँच गया है, लेकिन इसके बावजूद भारत को इस उभरते हुए व्यापार गुट में अपेक्षित रूचि अभी लेनी है। यूरोपीय समुदाय भारत में गैर व्यापार क्षेत्रों में भी सक्रिय है। समुदाय यहाँ

सरकार के बजाय सीधे स्वय सेवी सस्थाओं को सहायता दे रहा है। कुछ राज्यों में इसकी सहायता से कल्याणकारी कार्यक्रम भी चल रहे हैं। यूरोपीय समुदाय ने देश में प्रयोगशालाओं के आधुनिकीकरण का एक कार्यक्रम शुरू किया है। समुदाय विभिन्न शहरो मे स्थानीय निकायों के साथ सीधे सहयोग स्थापित कर रहा है और साथ ही ग्रामीण विकास, कृषि और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रमों को सहयोग दे रहा है,लेकिन इन सबमें समुदाय ने स्वय सेवी सस्थाओं को तरजीह दी है।

एकल यूरेपीय मुद्रा को लागू करने की ओर बढ रहे समुदाय की ज्यादातर ऊर्जा इस समय अपने भीतरी झगडे निबटाने में खर्च हो रही है। ब्रिटेन की ओर इस एकल मुद्रा का विरोध है तो कुछ देशो को यह डर है कि समुदाय के विस्तार के बाद जब पूर्वी यूरोप के देश इसमें शामिल हो जायेंगे तब समुदाय का नियत्रण केन्द्र पश्चिम से पूर्व की ओर खिसक जायेगा। यूरोपीय समुदाय ने 2010 तक सदस्यों की सख्या 28 करने का लक्ष्य रखा है इसलिए सभी देशों की निगाहें अगले माह एक्सटर्डम मे होने वाली समुदाय की बैठक पर लगी है।

यूरोपीय समुदाय में भीतरी विवाद मौजूद है कुछ व्यापक असहमतियॉ भी हैं, लेकिन इसके बाद भी जिस तरह से पिछले सालों में इन्हें हल किया गया है, उससे उनके सुलझने को लेकर उम्मीदें भी है। इस बात से अब कोई इकार नहीं करता कि यूरोपीय समुदाय इस समय विश्व के सबसे ताकतवर व्यापार गुटों में एक है और अब जबकि नाटों की कमान भी यूरोप को देने की माग उठने लगी हो तो अतर्राष्ट्रीय राजनीति में इस समुदाय का महत्व और बढ जाता है। विश्व की राजनीति से जिस तरह के सकेत मिल रहे है, वे एक नई विश्व व्यवस्था के है। जो आर्थिक और व्यापारिक धुरी पर केन्द्रित होगी। जाहिर है इस व्यवस्था में भारत को भी अपनी जगह बनानी है इसलिए भारत के नेताओं को यह सोंचना होगा कि यूरोपीय समुदाय के साथ ठडे रिश्ते आने वाले वर्षों में मुक्त अर्थव्यवस्था के बीच खडे होने में दिक्कत पेश करेगे। क्योंकि अब यूरोपीय समुदाय पश्चिम से निवेश के प्रवाह का एक प्रमुख केन्द्र होने वाला है।

वर्ष 1995-96 में इस क्षेत्र को भारत के कुल निर्यात का 32 86 प्रतिशत निर्यात और कुल आयात का 34.99 प्रतिशत आयात इस क्षेत्र के देशों के साथ हुआ।[2] इस क्षेत्र के अन्तर्गत यूरोपीय सघ बेल्जियम, डेनमार्क, फ्रास, जर्मनी, ग्रीस, आयरलैण्ड, इटली, लक्जेम्बर्ग, नीदरलैण्ड, ब्रिटेन, स्पेन, पुर्तगाल और यूरोपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र- आस्ट्रिया, फिनलैंड, नार्वे,स्वीडन, स्विटजरलैंड, आइसलैंड, लिचेनस्टेन के देशों के अलावा तुर्की, माल्टा तथा साइप्रस शामिल हैं। पश्चिम यूरोप को भारत के

---

2 *योजना सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार 1996, पृष्ठ संख्या 528*

निर्यात का प्रमुख हिस्सा मात्र 8 देशों को होता है, ये है- जर्मनी, ब्रिटेन, बेल्जियम, इटली, फ्रास, नीदरलैंड, स्पेन और स्विटजरलैंड। इस प्रकार इस क्षेत्र के अधिकाश बाजारो की सम्भावनाओं को अभी तलाशा नहीं गया है। भारत से पश्चिमी यूरोप को कृषि और समुद्री उत्पादों के अलावा कपडा, यार्न, फैब्रिक्श, सिले-सिलाए वस्त्र, चमडा और चमडे से बनी वस्तुए, रत्न तथा आभूषण, गलीचे, इजीनियरी सामान आदि का निर्यात किया जाता है। इस क्षेत्र से भारत में सामान्यत तैयार माल विशेषकर सयन्त्र तथा मशीनें, रसायन, इस्पात और परिवहन उपकरणों का आयात होता है।

भूतपूर्व पूर्वी यूरोप के 15 देशों के साथ व्यापार वर्ष 1994-95 में 374 71 मिलियन डालर से बढकर वर्ष 1995-96 में 655 89 मिलियन डालर तक पहुँच गया। इस प्रकार इन देशों के साथ व्यापार मे 75 04 प्रतिशत वृद्धि हुई। इसी अवधि में इन देशो को भारत से निर्यात में 28.57 प्रतिशत बढोत्तरी हुई और यह 156 11 मिलियन डालर से बढकर 200 72 मिलियन डालर हो गया।

आयात में 108.22 प्रतिशत बढोत्तरी हुई और यह 218 60 मिलियन डालर से बढकर 455 17 मिलियन डालर हो गया। स्वतन्त्र देशों के राष्ट्रकुल और मध्य तथा पूर्वी यूरोप के देशों के साथ भारत के सबध 1995-96 के दौरान और मजबूत हुए।भारत के इन सभी देशों के साथ परस्पर विश्वास पर टिके मैत्री तथा सहयोगपूर्ण सम्बन्ध है। भारत का प्रयास रहा है कि पुराने सम्बन्धों के सकारात्मक पक्षों को चलाए रखते हुए सक्रिय तथा प्रगतिशील तरीकों से इन्हें आवश्यकतानुसार नया रूप दिया जाए। इन देशों में लोकतन्त्र, राजनैतिक बहुलता और निजी उद्यमों को ज्यादा स्वतन्त्रता और पहल का ज्यादा मौका देने का जो नया माहौल बना है, वैसे ही परिवर्तन तथा बुनियादी दृष्टिकोण में बदलाव भारत मे भी आए हैं।

परिणामस्वरूप, उन देशों के साथ मित्रता की परम्परा को आगे बढाते हुए ऐसे प्रयास किए गए हैं। इन देशों ने भारत के उभरते बाजार के महत्व को समझा है और इस बाजार द्वारा उपलब्ध अवसरों का पूरा लाभ उठाते हुए परस्पर सस्थागत ढाँचे तथा व्यापारिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने में गहरी दिलचस्पी दिखाई है। स्वतन्त्र देशों के राष्ट्रकूल, मध्य तथा पूर्वी यूरोप में युग परिवर्तन के इस दौर में, भारत तथा इन देशों ने परम्परागत मैत्री और सामाजिक परिवर्तनों के बीच पूरे विवेक के साथ सामजस्य कायम किया है।

रूसी परिसघ के साथ भारत के सम्बन्ध विविध क्षेत्रों में सतोषजनक रूप से घनिष्ठतर होते गए। 8 से 10 मई 1995 के दौरान मास्को में हुए 'यूरोप में विजय दिवस' समारोहों में भारत के

विदेश मत्री शामिल हुए। इसके बाद रूसी उप प्रधानमत्री के नेतृत्व मे 64 सदस्यो का प्रतिनिधिमण्डल इसमे हिस्सा लेने भारत आया। व्यापार तथा आर्थिक, वैज्ञानिक, सास्कृतिक सहयोग, प्रतिबन्धित वस्तुओ तथा मादक पदार्थों की तस्करी रोकने के लिए दोनों देशों के बीच अक्टबूर 1995 में समझौता हुआ। क्रोएशिया, स्लोवाक, रोमानिया, आर्मेनिया, बुल्गारिया आदि देशों के बीच विभिन्न प्रकार के समझौते हुए।

पश्चिमी यूरोप के देशों के साथ भारत के सम्बन्ध घनिष्ठतर हुए। शीतयुद्ध के युग की समाप्ति और पश्चिमी यूरोपीय देशों के यूरोपीय सघ के साथ बढते राजनैतिक और आर्थिक सामजस्य और भारत की बाह्य परिस्थितियों से सम्बन्धों का नया परिप्रेक्ष्य विकसित हुआ जो परस्पर हितो की निरतरता पर आधारित था। 1 जनवरी 1995 के आस्ट्रिया, स्वीडन, और फिनलैंड के यूरोपीय सघ में शामिल होने से इसकी सदस्य सख्या बढकर 15 हो गई।[3] यूरोपीय सघ बढते हुए राजनैतिक तथा आर्थिक प्रभाव को देखते हुए भारत के सघ के साथ सम्बन्ध और भी महत्वपूर्ण हो गए। भारत के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रीय और अतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर यूरोपीय सघ के देशों में भारत के दृष्टिकोण के प्रति समझ विकसित करने के निरन्तर प्रयास किए गए। भारत में आर्थिक उदारीकरण के साथ पश्चिमी यूरोप के सम्बन्धों के विस्तार और विकास के लिए विशेष प्रयास किए गए। उदारीकरण के प्रारम्भ से सितम्बर 1995 तक भारत में पश्चिमी यूरोपीय देशों का विदेशी निवेश, कुल विदेशी निवेश का 30 प्रतिशत हो गया।

इनमें से ब्रिटेन, स्विटजरलैंड, जर्मनी और इटली भारत में सबसे ज्यादा, निवेश करने वाले देशों में थे। पश्चिम यूरोपीय देश भारत को बडी मात्रा में विकास सहायता और टैक्नोलाजी देते रहे और 'भारत' के साथ मिलकर सयुक्त उद्यमों में पूँजी लगाते रहे। भारत और ब्रिटेन के आपसी विश्वास पर आधारित सम्बन्ध घनिष्ठतर हुए। दोनों देशों के उच्च स्तर के नेताओं ने एक-दूसरे देशों की यात्राए की। दूसरे विश्व युद्ध में विजय-दिवस स्मृति समारोहों में भाग लेने भारत के विदेश मत्री मई 1995 में ब्रिटेन गए। समझौते के अनुसार पिछले दो वर्षों में व्यापार में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई, आपसी सहयोग के 350 कार्यक्रमों पर सहमति हुई और 1992 की तुलना में भारत में ब्रिटिश निवेश दस गुना हो गया।

यूरोपीय समुदाय में व्यापार बढाने के दृष्टिकोण से भारत और जर्मनी के मध्य दोहरे कराधान

---

3. *योजना सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार, 1996, पृष्ठ संख्या-654*

रोंकने तथा आर्थिक सहयोग के समझौते हुए। इसके अलावा इटली, आयरलैड, पुर्तगाल, स्वीडन, बेल्जियम, लक्जेम बर्ग आदि देशों व्यापार सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के समझौते हुए।

यूरोपीय सघ के साथ व्यापार में वृद्धि की दर पूरी तरह सतोषनजक रही। इस वर्ष भी यूरोप भारत का प्रमुख निवेश सहयोगी और टेक्नोलाजी का महत्वपूर्ण स्रोत बना रहा। भारत और यूरोपीय सघ के देशों के बीच आर्थिक सम्बन्ध काफी मजबूत हुए। जेनेवा मे विश्व व्यापार सगठन (डब्ल्यू टी ओ) के मुख्यालय में उस वक्त रात के दो बज रहे थे। तिमजली बिलियम रैपर्ड बिल्डिग के केन्द्रीय कक्ष में भारी हलचल थी, दरअसल वहॉ 70 देशों के प्रतिनिधि वित्तीय सुधारों के मुद्दे पर अपने मतभेद सुलझाने में व्यस्त थे। अमेरिकी प्रतिनिधि मलेशिया की घेराबन्दी कर रहा था कि वह अपने बाजार में उसकी पहुॅच और आसान बनाए तो दूसरी ओर तमाम प्रतिनिधि मिलान कर रहे थे कि किसे कितनी रियायत मिली, टूटती उम्मीदों, बहती धडकनों के माहौल में तीन भारतीय प्रतिनिधियों के चेहरो पर हवाइया उड रही थी। गैट के स्थान पर विश्व व्यापार सगठन (डब्ल्यू टी ओ) ने 1 जनवरी 1995 से कार्य करना आरम्भ किया।[4] इससे वैश्विक उदारीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। जेनेवा में भारत के राजदूत श्रीनिवास नारायणन, वित्त मत्रालय में सयुक्त सचिव सतोष कुमार और भारतीय रिजर्व बैंक के अतिरिक्त मुख्य महाप्रबन्धक श्यामला गोपीनाथ फिर भी ज्यादा दबाव नहीं महसूस कर रहे थे। देश में जारी राजनैतिक अस्थिरता उनके लिए फायदेमद साबित हुई क्योंकि अमेरिका, यूरोपीय सघ और जापान जैसी महाशक्तियों ने सुधार की जरूरत पर जोर दिया। पर ज्यादा दबाव नहीं डाला। बाजार पर कब्जे का बढता दबाव कारण यह है कि भारत ने और ज्यादा विदेशी बैंकों के लिए दरवाजे खोले, मगर बडे देश बीमा के क्षेत्र में घुसने को आतुर जिनका तीखा राजनैतिक विरोध होने की सभावना है।

भारत ने भी सम्मेलन में अपनी बात रखी और 1995 में की गयी अपनी पेशकश में कुछ और बाते जोडी पहले उसने हर साल आठ विदेशी बैंकों को शाखाए खोलने की अनुमति देने की बात मानी थी अब वह 12 को अनुमति देगा यानी भारत में विदेशी बैंकों का कारोबार बढेगा। मात्र 1995 में 27 विदेशी बैंक देश में कारोबार कर रहे थे।

आज 42 विदेशी बैकों के 183 शाखाए चल रही है। बैंक आफ न्यूयार्क, यूनियन बैंक आफ कैलिफोर्निया, दाइ इची काग्यों बैंक आफ जापान और जर्मनी के बी एच एफ बैंक समेत 26 अन्य बैकों ने यहाँ प्रतिनिधि कार्यालय खोले हैं, यानी और कई बैंक इधर आँखे लगाए हैं।

---

4 त्रिपाठी, डॉ बद्री विशाल भारतीय अर्थव्यवस्था (षष्टम सस्करण), 1991, पृष्ठ सख्या-458

भारत अब विशेषाधिकार प्राप्त 'देश' वाला वर्गीकरण ही खत्म कर रहा है। पहले वह तय कर सकता था कि अपना बाजार किसके लिए खोलें। अब सभी का दर्जा एक सा हो जायेगा। पुनर्बीमा नीति मे भी अतत बदलाव हो ही गया। दो साल पहले अतरिम वित्तीय सेवा समझौते पर दस्तखत करते समय भारत ने कहा था कि स्थानीय बीमा कम्पनियॉ पुनर्बीमा के अपने कारोबार का 10 फीसदी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ कर सकेंगी। यह न्यूनतम सीमा अब हटा ली जाएगी फिर भी सामान्य बीमा के बारे में कोई वादा नहीं किया गया है।

रियायतें भले नाममात्र की हों पर उनको लेकर देश में राजनैतिक हगामा मचा हुआ है भाजपा ने जहॉ यह कहा है कि "एक लुजपुज सरकार को विश्व व्यापार सगठन के एक और समझौते को मजूर करने का अधिकार नहीं। वही माकपा पोलित ब्यूरो का कहना है कि सयुक्त मोर्चा सरकार ने भारत को अतर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजार की दया पर छोड दिया है।" मलेशिया, भारत और ब्राजील को अपना बीमा बाजार भी दूसरों के लिए खोलने को कहा गया है।

"अगर हम समझौते में शरीक न होते तो पूरी दुनिया में हमारा मजाक बनता। जो भी श्रेष्ठतम पेशकश हो सकती थी, हमने की" - पी पी प्रभु, वाणिज्य सचिव|असल चिन्ता यह है कि समझौते से हमें कितना कुछ हासिल होने वाला है। समझौते का पालन करने से सुधारों के प्रति हमारी विश्वसनीयता तो बढेगी मगर विदेशी बैंकों की शाखाए खुलने का यह मतलब नहीं कि बडे पैमाने पर रकम यहॉ आने लगेगी। ये बैंक अपने देश में कर्ज बॉटने के मकसद से यहाँ पैसे उगाहेंगे और प्रतियोगिता बढेगी (बाजार का 85 फीसदी लेन-देन देसी बैंकों के पास ही रहेगा)।

इससे लाभ तो बहुराष्ट्रीय बैंकों को होगा जहॉ तक किए गए वादों पर अमल का सवाल है तो हम पिछले दो साल में हर वर्ष 15 बैंकों को भी यही शाखाए खोलने की अनुमति दे सकते थे पर इसकी सख्या फिर तुरत-फुरत 11 नहीं की जा सकती थी। पर यह विकसित देशों की अपेक्षाए तो लम्बी-चौडी है,बीमा क्षेत्र में विदेशी फर्मों को प्रवेश दो, विदेशी बैंको की शाखाओं को सीमित न करो। शेयरों की खरीद-फरोख्त सभी गैर बैकिग वित्तीय सेवाओं में विदेशी भागीदारी 51 फीसदी तक बढाओ और विदेशी बैंकों के लेन-देन में हिस्सेदारी 15 फीसदी तक ही सीमित न करें।

यह एजेन्डा थोपने की भी हरसभव कोशिश हो रही है वर्ष 1995 में विकासशील देशों के सन्तोषजनक रियायतों की पेशकश न करने पर विश्व व्यापार सगठन (डब्ल्यू टी ओ.) में अमेरिकी प्रतिनिधि बीच वार्ता से उठकर चले गये थे। इस बार आर्थिक मदी की भार झेल रहे दक्षिण पूर्व

एशियाई देश झुक गए, तकनीकी रूप से थाईलैण्ड, मलेशिया और भारत के बैंक विकसित देश में अपनी शाखाएं खोल सकते हैं पर उनके पास इतनी पूँजी कहाँ है। विकासशील देश तो वित्तीय सेवाओं के आयातक भर है। हमें आकलन करना चाहिए कि यह सेवा क्षेत्र में प्रतियोगिता को बढ़ावा देने और अपनी क्षमताएं विकसित करने में किस हद तक उपयोगी होगी। दूसरे विकसित देशों की तरह हमारे लिए भी चिन्ता की कोई वजहें है हमारा 20 फीसदी निर्यात अमेरिका को और 10 फीसदी से कम जापान को होता है। बाजार खोलने के मामले पर नई सरकार ने अड़ियल रवैया अपनाया तो उसकी फौरन प्रतिक्रिया हो सकती है दूसरी ओर मुरझाई अर्थव्यवस्था को सोंचने के लिए हमें विदेशी रकम की भी दरकरार है, आधारभूत ढाँचे के क्षेत्र में मौजूदा जरूरतों को देखते हुए सड़को, बन्दरगाहों और बिजली परियोजनाओं के लिए करीब 150 अरब डालर (5,70,000) चाहिए।

संभव है बाजार खोलना हमारे लिए अपरिहार्य हो जाए, पर इस दृष्टि से हमें बहुत सतर्क रहने की जरूरत है। दक्षिण पूर्व एशिया के कई देशों ने फटाफट अपने व्यापारिक प्रतिबन्ध हटाकर बड़े पैमाने पर विदेशी निवेश तो आकार्षित कर लिया पर इस प्रक्रिया में वित्तीय क्षेत्र में कई खामियां रह जाने से आज वे मुश्किल में है हमारी प्रणाली की भी हालत कोई बहुत अच्छी नही है। अनुपयोगी संपत्तियों के संग्रह के मामले में सरकारी बैंक आज भी निजी बैकों से काफी आगे हैं। लाभ कमाने के पीछे आज उनका खजाना भरा है पर वे जोखिम नहीं उठाना चाहते। उनके प्रमुखों ने हालांकि मितव्ययिता की बात पर जोर दिया है पर फिर भी वे मुनाफा नहीं कमा पा रहे हैं। किसी अंतर्राष्ट्रीय फोरम के दबाव डालने से अच्छा है कि हम खुद ही सुधारों के लिए अपनी एक कार्यसूची तैयार कर लें इसमें कोई शक नहीं कि हमारी वित्तीय प्रणाली में काफी शिथिलता आ गई है।

यूरोः डालर के समक्ष नई चुनौती :

ग्यारह यूरोपीय देशों ने नयी मुद्रा यूरो को अपनाकर जहाँ एक ओर हार्ड करेंसी के रूप में स्थापित डालर को चुनौती दे डाली वहीं भारत सरीखे विकासशील देशों के लिए यह राहत का पैगाम भी है। आस्ट्रिया, इटली, बेल्जियम, फिनलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, आयर लैण्ड, लग्जमबर्ग, नीदर लैण्ड, पुर्तगाल तथा स्पेन विश्व में ऐसे देश हैं जो व्यापार के मामले में अमेरिका, जापान जैसी ताकत रखते है और इनके ऐसे कदम से निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था में नयी परिस्थितियाँ तथा कठोर प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने के साथ-साथ अमेरिका की चौधराहत में भी कमी आयेगी। यूरो की इस दमदार शुरूआत से जहाँ एक ओर डालर की मनमानी पर अंकुश लगेगा वहीं गरीब मुल्कों से निर्यात

की सभावनाए उज्जवल होगी।

भारत जैसे विकासशील देशो का अच्छा खासा व्यापार इन ग्यारह देशों से होता आया है, लेकिन परोक्ष लाभ सारा का सारा अमेरिका उठाता रहा है। यह अलग बात है कि भारत का व्यापार अमेरिका, जापान तथा रूस से काफी होता है,लेकिन यूरो के अस्तित्व में आ जाने से राहत मिलने के साथ-साथ एकधिकारी प्रवृत्तियों पर पर्याप्त अकुश लग सकेगा। लगभग दो दशको मे भारत जैसे गरीब देशों को डालर के मनमाने दामों से जिस तरह की परेशानियों को झेलना पडा वह निश्चित रूप काफी कष्ठ दायी रहा। हार्ड करेंसी के रूप में माने जाने वाला डालर का प्रचलन वैसे तो कई पश्चिमी देशों की मुद्रा के रूप मे है, किन्तु व्यवहार में सारी दादागिरी अमेरिकी डालर की ही रही है तथा नि सदेह इससे ये ग्यारह देश जो विकसित देशो की श्रेणी मे आते हुए भी परेशानी का अनुभव कर रहे थे। विश्व व्यापार का पॉचवॉ भाग रखने के बाबजूद इन्हे अमेरिकी डालर का मोहताज होना पड रहा था और प्रत्यक्ष- परोक्ष रूप से इनके व्यापार पर दुष्प्रभाव पड रहा था। इन बदली हुई परिस्थितियों मे निश्चित रूप से डालर के लिये एक परेशानी का सबक यह भी होगा कि उसके हाथ से विश्व व्यापार का पॉचवॉ हिस्सा यूरो मुद्रा के रूप में होने लगेगा और इससे मूल्यों में गिरावट तो कम यह जरूर होगा कि जिस तरह से मुद्रा बाजार के आपरेटर व सटोरिये कृत्रिम अभाव दिखाकर मनमानी करते रहे है उस प्रवृत्ति पर अकुश लगेगा। चालू दशक में विशेष रूप से कोई दो- ढाई वर्ष पूर्व जिस तरह डालर ने अपना एकाधिकारी रूप दिखाकर मजबूत से मजबूत देशों की अर्थ व्यवस्था छिन्न-भिन्न की तथा गरीब मुल्कों पर कफन खसोर जैसा आचरण किया उससे ये साफ जाहिर होता है कि कहीं न कहीं कोई गडबडी जानबूझकर की जा रही है। आखिर कौन सा ऐसा काम अमेरिका ने कर दिया कि दुनिया में केवल डालर का भाव आसमान पर जाता हुआ दिख रहा है। बाकी सभी देशों की मुद्रा नीचे जाती हुई नजर आ रही हो। यहाँ तक औद्योगिक रूप से सम्पन्न जापान की मुद्रा येन भी नहीं सभल पा रही है। हाल में ताइवान, कोरिया, सरीखे देशों में गम्भीर मुद्रा सकट उत्पन्न हुआ और उनके लिए यह आज तक अनबुझ पहेली बनी हुयी है।

यूरो से भारतीय व्यापार पर अनुकूल प्रभाव पडने की उम्मीदः

वर्ष 1997 की शुरूआत के साथ ही विश्व आर्थिक जगत में एक नयी मुद्रा 'यूरो' का उदय हो जायेगा। यूरोपीय देशों की इस सामूहिक नई मुद्रा का भारतीय व्यापार पर तो अनुकूल प्रभाव पडने का आकलन किया जा रहा है,लेकिन विश्व बाजार पर छाई अमरीकी मुद्रा 'डालर' के एकाधिकार को कडी चुनौती मिलने की सभावना व्यक्त की जा रही है। 2जनवरी 1999 से यूरोप के 11 देशों में नयी साझा मुद्रा 'यूरो में कामकाज शुरू हो जायेगा। इस दिन इन सभी देशो की अपनी मुद्रा और यूरो की बीच विनिमय दर निर्धारित हो जायेगी और फिर उसी अनुपात में कामकाज होनें लगेगा।यूरोप के ग्यारह देशों में आस्ट्रिया, बेल्जियम, फिनलैण्ड, फ्रास, जर्मनी, आयरलैण्ड, इटली, लक्जमबर्ग, नीदरलैण्ड, पुर्तगाल और स्पेन शुरूआती दौर में यूरो मुद्रा की नई व्यवस्था में शामिल हुए हैं, जबकि क्षेत्र के चार अन्य देश डेनमार्क, ब्रिटेन, यूनान और स्वीडन फिलहाल आर्थिक एव राजनीतिक कारणों से इस नयी व्यवस्था में शामिल नहीं हुए है, लेकिन भविष्य में ये देश भी इस व्यवस्था को अपनायेगें। दुनिया के व्यावसायिक जगत की निगाहें इस नये ऐतिहासिक कदम की ओर लगी है। इस मुद्रा के लागू हो जाने से मुद्रा के परिवर्तन मे होने वाली कठिनाई दूर हो जायेगी तथा मुद्रा के परिवर्तन शुल्क में भी कमी आयेगी। भूमडलीकरण के इस युग में 11 यूरोपीय देशों की साझा मुद्रा यूरो का आगमन न केवल ऐतिहासिक, बल्कि मौद्रिक साहस का भी परिचायक है। यूरोप के 15 में से 11 देशों की 29 करोड जनता इस नई मुद्रा के जरिए व्यापारिक लेन-देन करेगी।[5] यूरो के सिक्के व करेंसी नोट हालाकि कुछ समय बाद जारी होगें, लेकिन शेयर कारोबार 'यूरो' में होगा और वित्तीय सस्थान व बडी कम्पनियों इसी मुद्रा के तहत हिसाब - किताब रखेंगे। यूरोप में कई दुकानों ने विभिन्न उत्पादों की कीमत स्थानीय मुद्रा के साथ 'यूरो' में भी प्रदर्शित करनी शुरू कर दी है। कुछ विशेषज्ञ अब डालर के समक्ष यूरो द्वारा नई चुनौती खडी करने की आशका जता रहे है। नई यूरोपीय सामूहिक मुद्रा के सचालन में व्यावहारिक कठिनाइयाँ पेश आएगी, किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि यूरो के प्रचलन के सन्दर्भ में भारत को भी अपनी तैयारी कुशल ढग से रखनी होगी। भारत का 60 प्रतिशत विदेश व्यापार अब तक डालर के हिसाब से चलता था चूँकि भारत का 20 प्रतिशत विदेश व्यापार यूरोपीय देशों के साथ होता था, इसलिए यूरो की डगमग के साथ भी मैाद्रिक कदम ताल करनी होगी। पिछले डेढ- दो

---

5 दैनिक समाचार हिन्दुस्तान, 2 जनवरी 1999, पृष्ठ सख्या-8

वर्षो मे डालर मे आई अप्रत्याशित मजबूती का भारत ने अत्यन्त सयम के साथ सामना किया और अब डालर-रूपया विनिमय दर मे भारी उतार-चढाव नहीं रहा। बहरहाल इस समय डालर के समक्ष यूरो की दर 1 16 से बोला जा रहा है। भारत को इसी के अनुरूप अपनी मुद्रा की चाल को अजाम देना होगा। भारत मे एक यूरो का भाव 2 जनवरी 1998 को 49 से 50 रूपया के बराबर रहा। फ्रास, इटली आयरलैण्ड जो विश्व के आर्थिक रूप से मजबूत राष्ट्रो मे गिने जाते हैं किन्तु आयात- निर्यात के मामले मे पिछडते नजर आ रहे है। इन परिस्थितियो मे भारत की दशा निश्चित रूप से बद से बदतर होती गयी और काफी वैसी हो गयी कि कोई गरीब व्यक्ति कमाये चाहे जितना, लेकिन उसका वह सब कुछ साहूकार के पास चला जाता है। इसमे कोई सदेह नहीं कि भारत पर आज करोडों डालर का कर्ज अतर्राष्ट्रीय मुद्रा सगठनो का है और एक बडी रकम उसे ब्याज के रूप मे चुकानी पडती है किन्तु ये हालात बनाने मे डालर की बेईमानी का भी बडा हाथ रहा है, क्योकि जिस तरह से भारतीय वस्तुओ को अतर्राष्ट्रीय बाजारो मे मूल्य विहीनता का सामना करना पडा और वाजिब दामों की जगह उसे लागत से भी कम पर अपना माल बेचने का विवश होना पडा वह इस एकाधिकारी प्रवृत्ति का ही परिणाम है।

यह ठीक है कि कोई देश यह नहीं कहता या करता कि उसकी मुद्रा को अगीकार कर लिया जाये लेकिन मौद्रिक मामलों में यह भी एक सच्चाई है कि जब जो ढर्रा चल पडता है तो आसानी से बदल पाना सभव नहीं होता। आज यदि भारतीय मुद्रा रूपये का प्रचलन डालर की तरह हो जाये तो इसके भी दुष्परिणाम पश्चिमी मुल्को को भुगतने पडेगे।

स्वतन्त्र भारत के इतिहास मे ऐसा कभी नहीं हुआ कि डालर प्रति पचास रूपये की ऊँचाई को न केवल छू ले बल्कि उसे पार कर लेने की छलाग लगाने की चेष्टा करें। पिछले दो दशकों में भारतीय रूपया लगभग ढाई से तीन सौ प्रतिशत तक गिरा जबकि भारत का विदेश व्यापार भी इसी के आसपास बढा।

यह कैसे हो सकता है कि एक तरफ हमारी व्यापारिक हिस्सेदारी अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रास, रूस तथा जापान जैसे देशों से बढ़े तो दूसरी ओर हमारी मुद्रा का अवमूल्यन भी उसी अनुपात में होता

रहे? इन बदले हालात मे अब यह आवश्यक हो गया है कि विश्व के गरीब मुल्क जिन्हे विकासशील देशो के नाम से जाना जाता है उन्हे चाहिए कि वे आर्थिक रूप से एक मच पर आकर इस तरह का फोरम तैयार कर ले कि विकसित देशो को भी वास्तव मे उनकी जरूरत महसूस हो और वे चाह कर भी शोषण न कर पाये। आज ये गरीब मुल्क विश्व व्यवस्था मे अपनी महत्व बुनियादी जरूरतो को पूरी करने मे महत्व बनाये हुये है, लेकिन अमीर देश अपनी इस कोशिश मे कामयाब है कि वे इनकी बहुमूल्य सपदा को मूल्यहीन बताकर माटी के मोल खरीद रहे है। यह ज्यादा दिनो तक चलने वाला नही है यदि इन गरीब मुल्को को अपनी वास्ताविक शक्ति का पता चल जाये, लेकिन यह तभी हो पायेगा जब ये राजनीतिक कटुता को दरकिनार कर आर्थिक एकता की ओर अग्रसर हो।

7

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सफलताओं एवं असफलताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सफलताओं एवं असफलताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन

बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रसार की गति द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पूर्व की अपेक्षा तीव्र रही है इस स्थिति को भारत सहित अन्य विकासशील देशों के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अपने नवोदय के साथ भारत उन कई अल्पविकसित देशों में से एक था जिन्होंने अपने विकास की गति को बढाने के लिए विदेशी पूँजी को आमन्त्रित करने की बाध्यता एव विवशता को स्वीकारा। प्रत्यक्ष विदेशी सहायता, प्रौद्योगिकीय सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सस्थाओं से उदार-अनुदार शर्तों पर दीर्घकालीन ऋण और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की उपस्थिति विदेशी पूँजी के विभिन्न कार्यगत हुए। भारत के सन्दर्भ में उपभोक्ता उद्योग समूह में इन निगमो की पैठ और प्रसार दूसरे औद्योगिक क्षेत्रो की तुलना में कहीं अधिक है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि बहुराष्ट्रीय निगमों के पास उत्पादन तथा वितरण में अभिवृद्धि करने की अद्वितीय तथा अनुभव सिद्ध क्षमता होती है और जहॉ कहीं भी यह जाते है, वहॉ की उत्पादन प्रणाली में भारी परिवर्तन उत्पन्न कर देते है। इनके द्वारा किया जाने वाला उत्पादन - विस्फोट प्राय देशी प्रौद्योगिक विकास और स्थानीय उद्योगों की कीमत पर होता है। इस सन्दर्भ में भारत जैसे अनेक विकासशील देशों की मिसाल गिनाई जा सकती है। बहुराष्ट्रीय निगमों को खुला आमत्रण देने के लिए उनकी उच्च प्रौद्योगिकी, पेशेवर प्रबन्धकीय कुशलता और गुणवत्ता के तर्क प्रस्तुत किए जाते है और इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि विकासशील देशों के उद्योगों की अपेक्षा पश्चिम के उद्योग सर्वथा इक्कीस ठहरते हैं। इसका प्रभाव स्वदेशी उपभोक्ता उद्योगों तथा अन्य उद्योगों के विकास पर पडता है। जहॉ तक आर्थिक क्षेत्र का प्रश्न है, सतही तौर पर इन निगमो का प्रवेश आकर्षक अवश्व हो सकता है, किन्तु इन पर नियत्रण भी आवश्यक है। प्रारम्भ में यह निगम अपना पैर जमाने के लिए अनेक प्रकार की उदार एव आकर्षक शर्तों का भ्रम उत्पन्न करते हैं उदाहरणार्थ- प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में पूँजी निवेश, पिछडे क्षेत्रों में रोजगार सृजन, किसी तीसरे देश को निर्यात के लिए सुनिश्चित कोटे का निर्धारण आदि। यदि स्थानीय उद्योगों की स्थिति सतोषजनक न हो तो विकासशील देशो में शासन के लिए ऐसे प्रस्तावों को अस्वीकार करना कठिन हो जाता है। न्यूनतम अशों को धारण करते हुए भी बहुराष्ट्रीय निगम औद्योगिक तथा आर्थिक स्वेच्छाचारिता के लिए स्वतत्र रहते हैं। अपनी उत्पादन प्रणाली में उन्नत तकनीक का प्रयोग कर यह निगम पहले कम मूल्य निर्धारित कर स्थानीय उद्योगों के विकास को अवरूद्ध करते हैं और बाद में बाजार पर इनका स्वतत्र शासन हो जाता है। वस्तुत उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन व वितरण में बहुराष्ट्रीय निगमों के

एकाधिकार को चुनौती देना वर्तमान समय में टेढी खीर है।

भारत के उद्योगपति विगत कई वर्षों से इसी प्रकार की नीति अपनाए जाने की माग करते चले आ रहे थे, लेकिन जब ये नीतियॉ लागू करके अर्थव्यवस्था को काफी कडी सीमा तक खुला व मुक्त कर दिया गया तो भी वे लोग स्वय को कठिनाई में अनुभव करके इनका विरोध कर रहे हैं अब इन्हें विदेशी कम्पनियों, विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का भय खाए जा रहा है। वे जानते हैं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादों के सामने उनके उत्पादों की माग कम होगी तथा वे प्रतियोगिता से बाहर हो जायेंगे। भारतीय उद्योगपति सरकार से हर प्रकार की रियायत की आशा अपने लिए तो करते हैं लेकिन उसी प्रकार की रियायतें विदेशी कम्पनियों को देने के पक्षधर नहीं है।

आयात शुल्कों में की गई कटौती व बाहर से टिकाउ इलेक्ट्रानिक्स सामान तथा अन्य वस्तुओ को लाने की छूट देने से भारत में अनेक वस्तुए लाई जाने लगी हैं, जिनका उत्पादन देश मे ही हो रहा है। ऐसा कर देने से अब घरेलू उत्पादकों को आयातित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करनी पडेगी, निश्चित रूप से यह उपाय ऐसे नहीं है जिससे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सके और देश की औद्योगिक प्रगति को गति प्रदान की जा सके। भारत विश्व के विकसित देशों के लिए एक बहुत बडा तथा आकर्षक बाजार है और विश्व की बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ यही चाहती है कि वे भारत के औद्योगिक एव आर्थिक विकास में कोई सार्थक भूमिका का निर्वाह किए बिना अपनी वस्तुए और विशेष रूप से उपभोक्ता वस्तुए बेंचने में सफल हो जाए। विदेशी पूँजी निवेश के नाम पर यदि इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा विदेशी उत्पादकों को सुविधाए प्रदान करके भारत में उपभोक्ता वस्तु उद्योग में पैर जमाने का अवसर प्रदान किया जाता है तो इससे भारतीय उपभोक्ता वस्तु उद्योग चौपट हो सकता है जो देश हित में नही है, दुनिया के सामने आज सबसे बडी चुनौती है विकास की। लेकिन दूसरी ओर ये विदेशी उत्पादकों विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतियोगिता के लिए सक्षम करने का मौका उन्हे दिया जाना चाहिए। इसके लिए कुछ वर्षों तक, उन्हें नई नीतियों के तहत सरक्षण मिलना चहिए, इतना ही नहीं वे करों तथा शुल्को यें और अधिक रियायतें तथा सरकार से सब्सिडी मिलने की आशा करते है।

बहुराष्ट्रीय निगमों की अपवित्र गति विधियो से राजनीतिक क्षेत्र भी अछूता नहीं रह सका, लैटिन अमरीकी तथा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के वृतांतो पर विहगम दृष्टि डाली जाए ,तो यह साफ तौर पर जाहिर होता है कि कई सैनिक उपद्रवों और तथाकाथित क्रान्त्रियों के पीछे बहुराष्ट्रीय निगमों के कर्ताधर्ताओं का हाथ है लैटिन अमरीका, दक्षिण पूर्व एशिया, अफ्रीका आदि के देश बहुराष्ट्रीय

उद्योग समूहो के लिए लाभार्जन की दृष्टि से उर्वरा भूमि है। इसलिए इन देशो के शासको के लिए स्वतत्र या राष्ट्रवादी आर्थिक एव राजनीतिक नीतियो पर अमल करना दिवास्वप्न है। अपने आकार एव शक्ति के कारण ही भारत की स्थिति अन्य विकासशील देशो की अपेक्षा सुदृढ है किन्तु यहॉ भी आर्थिक और राजनीतिक अतिक्रमण के प्रयास बराबर चलते रहते है।

भारत सहित लगभग सभी विकासशील देशो की प्रमुख समस्या यह है कि आज के प्रतिस्पर्धा के दौर मे विश्व मे अपना स्थान सुनिश्चित करने और विकास प्रक्रिया में शामिल होने के उद्यम मे आर्थिक उन्नयन का एक स्वकेन्द्रित प्रारूप तैयार कर पाना अभी तक सम्भव नहीं हो सका। एशिया तथा अफ्रीका के देश जिस तरह पश्चिम का अन्धानुकरण तथा साम्यवादी माडल की नकल करते रहते है। उससे अपने परिवेश तथा सस्कृति से करने की परिणति बहुत अस्वाभिक नही है। आयातित विकास प्रणालियो की विफलता हमारी ऑखे खोलने के लिए पर्याप्त है। उपभोक्ता की अपसस्कृति के विरूद्ध किसी सार्थक सघर्ष के लिए आर्थिक विकास की प्राथमिकताओ को पुर्न रेखाकित किया जाना अनिवार्य है। बहुराष्ट्रीय उपभोक्तावाद के कुप्रभावो को नियात्रित करने के उपाय भी उसमें निहित है। अल्पकालीन उपायो मे नए-नए विधेयक पारित किए जा सकते है,लेकिन इन तदर्थ उपायो की उपयोगिता भी सीमित ही रहेगी। आर्थिक नीतियॉ एव उनके उद्देश्यों पर पुर्नविचार ही किसी नई व्यवस्था के लिए जमीन तैयार सकता है जिसमें विकासशील और उदीयमान देश धनाढय और विकसित देशो के हस्तक्षेप को सहने की बाध्यता से मुक्त होंगे।

बहुराष्ट्रीय निगमो के गुण-दोषों के विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से मान लेना कि विकासशील अर्थव्यस्था मे इनकी उपादेयता नगण्य है , उचित नहीं होगा। इनके गुणों का लाभ उचित नीतियो का निर्माण करके एव इन निगमों के स्वतन्त्र प्रसार पर नियत्रण करने हेतु उठाया जा सकता है। इनके क्रियाकलापों पर दृष्टि रखना तथा उसे नियत्रित करना ऐसे प्रत्येक विकासशील देश का कर्तव्य है जिनमें यह कार्यरत है। इन निगमों की प्रासगिकता और उपयोगिता अल्पविकासित देशों की विनिर्मित वस्तुओं के विपणन की आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों के बाहर इन पर निर्भर रहना हानिकारक है, क्योकि इनकी कीमत बहुत अधिक चुकानी पडती है इसलिए प्रयास यही किया जाना चाहिए कि इन पर निर्भरता कम से कम हो।

दुनिया के सामने आज सबसे बडी चुनौती है विकास की। विकास के प्रमुख चरणों में, सरकार तथा बाजार में आपसी तालमेल एक महत्वपूर्ण चरण है चूँकि दोनों एक दूसरे के सहयोगी या सहभागी है। इसलिए दोनों का अस्तित्व आवश्यक है। इस तालमेल में कमी, उतार-चढाव के विभिन्न

परिणाम दिखाई पडते हैं। इन्हीं कारणों के कारण ज्यादातर-विकासशील देशों में भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता, सामाजिक तथा आर्थिक विषमता उत्पन्न हुई है और परिणाम यह हुआ कि लोगों में आपसी तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

स्वतत्रता के बाद नेहरू ने भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया। 1955 में काग्रेस के अधिवेशन में देश को समाजवादी रास्ते पर ले जाने का प्रस्ताव पारित किया गया। उसके बाद सरकारी नियत्रण, राष्ट्रीयकरण, लाइसेंस तथा परमिट राज का दौर चला। गरीब देश में अफसरशाही तथा राजनीतिक नेताओ ने सार्वजनिक हितों के नाम पर अर्थव्यवस्था के स्वाभाविक विकास में बाधक का कार्य किया। अस्सी के दशक तक आते-आते अर्थव्यवस्था चरमराने लगी और निरन्तर बढते जा रहे राजस्व घाटे ने मुद्रास्फीति की तेजी से अग्रसारित किया। भुगतान सतुलन की स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होती चली गयी। विश्व में हमारी साख में गिरावट आई और यहाँ तक कि हमें अपने स्वर्ण भडार का एक हिस्सा बन्धक के रूप में रखना पडा। देश की अस्मिता को धक्का लगा और हम एक प्रकार से दिवालियापन की स्थिति में पहुँच गए। उपरोक्त कारणों की वजह से हमें स्वतत्रता के चार दशक से भी अधिक समय के बाद भी अपनी अर्थनीति के ऊपर पुन विचार करना पडा। हम यह सोंचने के लिए बाध्य हो गये कि क्या हमारी अब तक की अर्थनीति वास्तव में सही है और क्या आगे भी इसी प्रकार के परिणाम होगें। दूसरी तरफ विश्व में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन तेजी से फैलता हुआ दिखाई पड रहा था। विश्व में यह महसूस किया जाने लगा था कि सबके हित के लिए समस्याओं का सार्थक समाधान सामूहिक रूप से ही सभव है। इसी दृष्टि से हमारे, राजनेताओं ने भी यह अनुभव किया कि आपसी विचार विनिमय तथा बेहतर परस्पर सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप हम विश्व के समृद्ध देशो से अधिक लाभ उठा सकेगें। यही कारण है कि हमने अपने अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करने तथा उदारीकरण की नीति अपनाने का निश्चय किया।

वस्तुत अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया इस देश में कभी धीमी गति से तो कभी तीव्र गति से अलग-अलग क्षेत्रों में चलाई जा रही थी। जुलाई 1991 से यह एक निश्चित योजना के तहत् चलाई जा रही है। इस सम्बन्ध में उदारीकरण के अर्थ स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। तमाम अन्य बातों के साथ-साथ उदारीकरण के अर्थ है कि आयात-निर्यात से सम्बन्धित एक नई नीति जिसके तहत् भारतीय निर्यातकों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में और अधिक खोलना। स्वय को पहले आशिक तथा बाद में पूर्ण परिवर्तनीयता के बारे में उठाया गया कदम एक उदाहरण के रूप में है। इस नीति ने देश से बाहर जा रही पूँजी को रोंका दूसरी तरफ विदेशी निवेशकों जिनमें अप्रवासी भारतीय भी शामिल है

तथा विदेशी सस्थाओ को भारत में निवेश करने को प्रोत्साहित किया। नए निर्यात के सम्बद्ध में कदम उठाए गए।

प्रमुख उदाहरण के रूप में सीमा शुल्क में कटौती का लाइसेंस प्रणाली की समीक्षा तथा उसमें परिवर्तन ताकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत को एक खुली प्रतिस्पर्धा वाला राज्य माना जा सके। परिणाम यह हुआ कि भारतीय व्यवसायियों ने विदेशो से कई तरह के समझौते किए। सीमा शुल्क तथा उत्पादन शुल्क के बारे में कठोर कदम उठाए गए जिस प्रकार रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क में की गई कटौतियॉ, आयात-निर्यात नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन, लाइसेंस प्रणाली का अवलोकन सभी कदम उदारीकरण नीति की देन के रूप में दिखाई पडते हैं।

इस प्रकार इन सभी कदमों के उठाये जाने पर हमारे लाभों के स्पष्ट परिणाम दिखाई पडते हैं ऐसा लगता है कि भारतीय अर्थनीति सब प्रकार से सब कुछ ठीक कर रही है। क्या वास्तव में इसका लाभ आम जनता को ही मिल रहा है? क्या इसी नीति में पुन सोंच-विचार की आवश्यकता है अथवा नहीं? क्या लोगों की आशकाएँ उचित हैं? बहुत से प्रश्न हमारे सम्मुख आते हैं।

ऐसा लगता है कि भारतीय विचारधारा हमेशा की तरह दो भागों में बॅट गई है। एक तो वह वर्ग है जो सरकारी पक्ष का पूर्ण समर्थक है और उसे सरकार के हर कार्य में अच्छाई नजर आयी है और आलोचना करने या सुनने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। दूसरी तरफ वह वर्ग है जो सरकार का कटु आलोचक है। उसे सरकार के सभी कार्यों में बुराई ही बुराई नजर आती है। अगर हम समर्थक पक्ष की बात को ही लें तो उनका कहना है कि विकास की चुनौती तथा वाह्य क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए इन सारे कदमों का क्या औचित्य है? कोई भी देश कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो वह अपने आपको विश्व में अकेले रखकर सफल नहीं हो सकता है। अगर हमें जिन्दा रहना है तो हमें प्रतिस्पर्धा मे भी उतरना ही पडेगा और अगर प्रतिस्पर्धा में उतरना है तो हमें व्यवहारिकता तथा वस्तुस्थिति के नजदीक रहना होगा।

दूसरी तरफ विरोधी वर्ग का यह मानना है कि जैसे-जैसे भूमण्डलीयकरण, उदारीकरण की प्रक्रिया के कदम आगे-आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे भारतीय सस्कृति में ह्रास होगा। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ ज्यादा हावी हो जायेगी। स्वदेशी की भावना तथा स्वदेशी उद्योग सभी में ह्रास होगा। चूँकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनाचार, दुराचार, और भ्रष्टाचार का हमला हो रहा है। आशका यह है कि नई आर्थिक नीति का भूमण्डलीकरण इसे और बढ़ाएगी। उदारीकरण से अनुशासनशील, सदाचार, त्यागवृत्ति जैसे सम्यक

सस्कार कहीं एकदम से समाप्त न हो जाएं। वस्तुत आर्थिक भूमण्डलीकरण उदारीकरण से चार्वाक के उस दर्शन की पुष्टि होती है जिसमें कहा गया है कि ऋण कृत्वा धृत पिवेत" अर्थात कर्जे के फन्दे से देश के नागरिकों का गला कसता जायेगा। इस प्रकार आर्थिक भूमण्डलीकरण उदारीकरण का रास्ता समर्पणवाद और विनाश का है।

इन दोनो पक्षों की परस्पर विरोधी विचाराधाराओं का अवलोकन करते हुए उनके गुण अवगुण की तुलना आवश्यक है। आजकल विश्व में तकनीकी ज्ञान का जिस प्रकार से विस्तार हो रहा है उससे अब हमारे लिए यह सम्भव हो गया है कि हम तकनीकी ज्ञान के ऊपर आधारित उत्पादन तथा अन्य प्रकार की वस्तुओं की गुणवत्ता का माप कर सकें जैसा कि अनेक अर्थशास्त्रियो का मानना है कि हमें अपने उत्पादन की गुणवत्ता को सुधारने तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा में सफल करने के लिए अहतन्त्र और अलगावपन की स्थिति से उठना पडेगा और अपने आपको इस अतर्राष्ट्रीय समुदाय से जोडना होगा।

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इस प्रयास में पूर्ण निजीकरण हो जाना चाहिए। क्या सरकार को इन तंमाम कार्यों को जो अभी तक वह सम्पन्न कर रही थी निजी क्षेत्र को सौंप देना चाहिए। क्या ऐसा करने से आम जनता को इसका पूर्ण लाभ मिल पाएगा। सीधी सी बात इस सिलसिले मे जो दिखाई पडती है। वह है सोवियत सघ का उदाहरण- जहॉ उदारीकरण व निजीकरण को इस तेजी से लागू करने की कोशिश की गयी कि परिमाणत आवश्यक वस्तुओं की कमी हुई, मूल्य आसमान छूने लगे और अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयकरण को हासिल करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य मानना पडेगा। भारतवर्ष में मिश्रित अर्थव्यवस्था को बनाये रखना आवश्यक होगा। ऐसा इसलिए कि भारत को अभी विश्व के आधुनिक तकनीकी ज्ञान के क्षेत्र में पूर्ण रूप से जमना होगा और भारतीय बाजार को सरकारी समर्थन की आवश्यकता होगी। साथ ही देश के व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा उद्योगपतियो को भी यह अहसास कराना होगा कि उदारीकरण का प्रमुख लाभ उद्योगों के साथ आम जनता को प्राप्त हो।

विश्व में औद्योगीकरण का लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि हम उदारीकरण की प्रक्रिया को शनै-शनै चलाते रहें और मिश्रित अर्थव्यवस्था को इसलिए भी चलाये कि इसका प्रयोग बाजार समर्थन तथा उद्योगपतियों पर अकुश के लिए किया जा सके।

आम धारणा है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जिस देश में पूँजी निवेश करती है वहाँ रोजगार के

अवसरों में वृद्धि होती है और आर्थिक गतिशीलता मे तेजी आती है, लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा स्थापित बडी औद्योगिक इकाइयॉ एक साथ कई लघु औद्योगिक इकाइयो की स्थापना को समाप्त कर देती है। बडी औद्योगिक इकाइयों में अधिकाश कार्य मशीनों की सहायता से किया जाता है, जबकि लघु इकाइयो मे श्रम को प्रधानता दी जाती है। इस प्रकार किसी बृहत इकाई की स्थापना से जहॉ सैकडों लोगों को रोजगार मिलता है वहीं हजारों लोगों को रोजगार मिलने की सभावना समाप्त होती है। अल्पकाल में ही किसी अर्थव्यवस्था मे गतिशीलता एव उत्पादकता बढने के बावजूद यदि रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती है, तो उसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बाजीगरी ही मानना चाहिए, लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के क्रियाकलापों के कारण रोजगार के अवसरो मे अल्पकाल पर पडने वाला प्रभाव उतना घातक नहीं है जितना कि दीर्घकाल में पडने वाला प्रभाव होता है। अर्थशास्त्री डॉ० भरत झुनझुनवाला का मानना है कि अतर्राष्ट्रीय कम्पनियों का व्यवहार भस्मासुर जैसा है। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं से उत्पन्न ये कम्पनियॉ अब पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं को खोखला कर दे रही है।

सयुक्त राष्ट्र व्यापार व विकास सगठन (अकटाड) की 1995 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार समूह-सात के विकसित देशों में बेरोजगारी निरन्तर बढती जा रही है। इन देशों की सरकारें बेरोजगारी से निपटने के लिए भरसक प्रयास कर रही है किन्तु इसके नियत्रण के कोई आसार दिखाई नहीं दे रहे है। इन देशो में 60 के दशक में मात्र 3से 4 प्रतिशत लोग बेरोजगार थे, लेकिन 1993 में लगभग 8से 9 प्रतिशत लोग बेरोजगार हो गये है और तभी से बेरोजगार का यह स्तर कायम है। अकटाड की रिपोर्ट के अनुसार समूह-सात के यूरोपीय सदस्य देशों- फ्रास, ब्रिटेन, जर्मनी और इटली में बेरोजगारी लगभग 11 प्रतिशत के स्तर पर पिछले दस वर्षों से स्थिर है। यह दर कई विकासशील देशों में बेरोजगारी की दर से भी अधिक है। अभी स्थिति यह है कि भारत और यूरोप के विकसित देशों में बेरोजगारी की दर लगभग बराबर हो चली है।

सयुक्त राज्य अमेरिका में अभी बेरोजगारी है, लेकिन यहॉ के कामगारों का वेतन भी लगातार घट रहा है। अकटाड की रिपोर्ट के अनुसार 1994 में अमेरिका में वेतन स्तर 2 प्रतिशत नीचे गिरा है। समूह सात एशियाई सदस्य जापान में बेरोजगारी की समस्या सबसे कम भयावह है। वहॉं लगभग तीन प्रतिशत लोग बेरोजगार है जिसे नियत्रण में कहा जा सकता है, लेकिन अकटाड का अनुमान है कि निकट भविष्य में जापान में भी बेरोजगारी 5 से 6 प्रतिशत से अधिक हो सकता है।

विकसित देशों की वर्तमान स्थिति के आधार पर अकटाड का कथन है कि विस्तृत बेकारी और

गिरते हुए वेतनमान पश्चिमी देशो के लिए महाविपत्ति साबित हो रहे हैं,लेकिन सवाल यह उठता है कि इसके लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ किस प्रकार दोषी है।

अकटाड की वार्षिक रपट में कहा गया कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए विदेशी निवेश करना एक मजबूरी है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण विकसित देशों की अतर्राष्ट्रीय कम्पनियों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा है। वास्तविकता तो यह है कि आरम्भ में किसी भी तकनीक का नेतृत्व कुछ कम्पनियॉ ही करती है उदाहरण के लिए अमेरिकी कम्पनी इटरनेशनल बिजनेस मशीन ने प्रारम्भ में कम्प्यूटर तकनीक का नेतृत्व किया था। तब उसे कम्प्यूटर निर्माण के मामलो में एकाधिकार प्राप्त था। अपने इस एकाधिकार का लाभ उठाते हुए आई बी एम ने जम कर मुनाफा कमाया तब उसकी स्थिति ऐसी थी कि वह अपने कर्मचारियों को ऊॅचा से ऊॅचा वेतन दे सकती थी और अपनी उत्पादित वस्तु की अच्छी कीमत ले सकती थी, किन्तु शीघ्र ही अनेक कम्प्यूटर कम्पनियॉ बाजार में उतर गयी और प्रतिस्पर्धा का दौर प्रारम्भ हो गया। बाजार में एकाधिकार की समाप्ति के बाद आई बी.एम को अपने उत्पादों की कीमतें कम करनी पडी, जिसके बाद उसके लिए कर्मचारियों को ऊॅचा वेतन दे पाना सभव नहीं रह गया।

चूॅकि वेतनमान का निर्धारण देश एव काल की परिस्थिति पर निर्भर करता है। इसलिए यह अलग-अलग देशो मे भिन्न-भिन्न हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष असर उत्पादित वस्तु की कीमतों पर पडता है। उदाहरण के लिए एक कम्प्यूटर निर्माता अमेरिका के स्थान पर सिगापुर में अपना कारखाना इसलिए लगाता है, कि सिगापुर मे श्रमिकों की वेतन दर कम है। अत वहॉ उत्पादित होने वाले कम्प्यूटर की लागत में कमी आयेगी और कम्पनी के लिए बाजार में सस्ता कम्प्यूटर उपलब्ध कराना सभव हो जायेगा। अमेरिका में कम्प्यूटर का निर्माण करने पर श्रमिकों का वेतमान दर ऊॅचा है, जिसके कारण उत्पादन लागत अधिक होगी। तब अन्य कम्पनियाँ भी किसी ऐसे देश में अपने सयत्र लगाने को उन्मुख होगी जहॉ श्रमिकों की पारिश्रमिक पारस्परिक दर सिगापुर की पारिश्रमिक दर के समकक्ष या उससे कम हो।

किसी विकासशील देश में जो सुविधा उपलब्ध होती है उसका परिणाम यह होता है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ विकासशील देशों में अपना उत्पादन बढ़ा लेती है और विकसित देशों में उत्पादन कम कर देती है। इसे इस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि पॉच वर्ष पूर्व जो कम्प्यूटर अमेरिका से भारत में आयात किया जाता था, वहीं अब भारत से अमेरिका में निर्यात किया जा रहा है। इस प्रकार विकसित देशों में उत्पादन का ह्रास हो रहा है। उत्पादन में कमी के साथ-साथ वहाँ रोजगार के

अवसर कम हो रहे है और विकास दर भी कम हो गयी है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के बारे मे कहा जाता है कि ये अपने देश की अर्थव्यवस्था को दबाव में देखकर भी प्रसन्न होती है क्योकि इससे इन कम्पनियो का लाभ बढता है। यह एक जगजाहिर बात है कि अधिकाधिक लाभ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मात्र लक्ष्य होता है। कहा जाता है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ उत्पादन कार्य भले ही विदेश मे करें लेकिन वह लाभ की राशि तो अपने देश में ही भेजती है, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। अपने देश मे लाभ भेज देने के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ लाभ की राशि का निवेश अपने देश मे नहीं करती है, बल्कि इसके लिए भी किसी विकासशील देश की खोज करती है जहॉ निवेश पर अधिक प्रतिफल प्राप्ति की उम्मीद होती है। इससे विकासशील देशो मे ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका बढती है। ये कम्पनियॉ तब विकासशील देशो मे ही निवेश करके रोजगार के अवसरो को बढाती रहती है लेकिन ध्यान रहे, बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ तभी तक किसी विकासशील देश में निवेश करती हैं, जब तक वहॉ पारिश्रमिक दर कम हो, कुछ समय बाद जब किसी विशेष विकासशील देश में आर्थिक गतिशीलता तीव्र हो जाती है, तब ये कम्पनियॉ किसी अन्य देश की तलाश मे लग जाती है जहॉ पारिश्रमिक का स्तर और भी कम हो।

अकटाड के पश्चिमी देशों को यह सलाह दिया गया है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बाजीगरी से बचने के लिए उन्हें सतुलित बजट की नीति त्याग देनी चाहिए और बाजार में माग बढाने के लिए सार्वजनिक निवेश बढाना चाहिए। ऐसा करने से विकसित देशों में माग बढेगी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए घरेलू अर्थव्यवस्था में निवेश लाभकारी हो जायेगा। विश्व अर्थव्यवस्था की वर्तमान गतिशीलता के लिए जहॉ एक ओर विकासशील देशों द्वारा उठाये गये आर्थिक सुधार एव उदारीकरण के कार्यक्रम जिम्मेदार है वहीं दूसरी ओर अधिकाधिक लाभ कमाने की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की इच्छा भी इसके लिए जिम्मेदार हैं, लेकिन विश्व अर्थव्यवस्था की गतिशीलता एव व्यापकता के बावजूद यह सवाल अब भी प्रासगिक बना है कि विकास कैसे हों?

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से घरेलू उद्योगों को कोई खतरा नहीं :

उदारीकरण के लागू होने से अब तक देखे जा रहे थे कि बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा इसका प्रभाव लघु उद्योगों पर दोषपूर्ण रूप से पडेगा किन्तु ऐसा नहीं है। किये गये सर्वे के अनुसार जो बिन्दु उभर कर सामने आये हैं वे स्पष्ट रूप से इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उदारीकरण से लघु उद्योगों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेंगे जबकि नकारात्मक बिन्दुओं की सख्या बहुत कम है।

यही नहीं नकरात्मक बिन्दु भी यही सिद्ध करते हैं कि उदारीकरण को और विस्तारित करने की जरूरत है ताकि उसमे लघु उद्योगो को पूरी तरह से समाहित किया जा सके। इस तरह किये गये सर्वे से यह बात स्पष्ट हुई है कि कुल मिलाकर उदारीकरण को समग्र आर्थिक अवधारणा के तौर पर देखा जाना चाहिए जिसका उद्देश्य बगैर किसी खेमे बाजी के सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र का विकास है। किये गये सर्वे से पता चलता है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के आगमन लघु एव कुटीर उद्योगो या घरेलू उद्योगो के प्रति आठ बिन्दुओ पर चर्चा करना अति आवश्यक है जिन्हे उदारीकरण के बाद लघु उद्योगो पर पडे प्रभावों के सन्दर्भ मे अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है।

1 प्रतिस्पर्धा में वृद्धि, 2 निर्यात आदेशो मे वृद्धि, 3 गुणवत्ता मे वृद्धि, 4 उत्पादो की श्रृखला मे वृद्धि, 5 नये सयुक्त उद्यमो की स्थापना, 6 उत्पादकता मे वृद्धि, 7 प्रक्रियाओ मे पारदर्शिता, 8 उत्पादन लागत मे कमी।

प्रतिस्पर्धा को देखते हुए लघु उद्योगो ने दो बातो पर ध्यान दिया- 1 उत्पादन लागतों मे कमी, 2 गुणवत्ता में सुधार। घरेलू उद्योगो को व्यापार मे सफलता पाने के लिए यह आवश्यक है कि कच्चे माल मगाने के पहले यह अवश्य देखना चाहिए कि जो हम माल का आदेश देने जा रहे है वह कच्चा माल हमारे लक्ष्य की पूर्ति कर रहा है या नहीं।

दूसरी बात जिस व्यक्ति से वस्तु मॅगा रहे है। वह जिस प्रकार की वस्तु की पूर्ति कर रहा है वह हमारे लक्ष्य के अनुरूप है या नहीं। कोषों की व्यवस्था को देखते हुए यह ध्यान देना चाहिए कि जो भी कच्चा माल खरीदा जाय, वह मौसमी प्रवृत्ति को देखते हुए बृहत मात्रा मे क्रय करना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि थोक मात्रा मे माल खरीदने पर माल में कुछ छूट तथा अन्य सुविधा मिलने की उम्मीद रहती है। इससे लागत में कमी आयेगी तथा अच्छी किस्म की वस्तुए हम तैयार करके बाजार मे भेजेंगे। जिससे हम बाजार में प्रतिस्पर्धा करके अपनी वस्तुओं को बाजार में बेंचने के लिए खरे उतरेगे। क्योंकि यदि किसी वस्तु को तैयार करने में प्रति इकाई लागत कम होगी, जाहिर है कि दूसरे ब्राण्ड की तुलना की अपेक्षा हमारी वस्तु बाजार में सबसे पहले बिकेगी इस प्रकार धीरे-धीरे बाजार में हम अपनी ब्राण्ड की वस्तु के प्रति प्रभुत्व या एकाधिकार स्थापित कर लेगें। बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के आगमन से प्रतिस्पर्धा बढेगी, लेकिन इसके साथ-साथ हमारी वस्तुओं के गुणवत्ता में भी सुधार होगी। जिससे हम अपनी वस्तुओं को केवल अपने देश में ही नहीं बल्कि अपना बाजार विदेशों में भी स्थापित कर सकेंगे। घरेलू उद्योगों को चाहिए कि उत्पादन लागतों में कमी, गुणवत्ता में सुधार ये दोनों बातें अपने एजेंडें में सबसे ऊपर रखना चाहिए।

उदाहरण स्वरूप– उदारीकरण के प्रभावो के बारे मे चर्चा करते हुए मशहूर 'अग्नि' ब्राण्ड के रसोई व घरेलू उपकरण बनाने वाली कम्पनियॉ चादसेस एप्लायन्सेज प्राइवेट लिमिटेड के प्रबन्ध निदेशक आर सी नागिया ने कहा है कि उदारीकरण के फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा बढी है तथा गिनी-चुनी कम्पनियो और ब्राण्डो का एकाधिकार टूटा है। अग्नि की लोकप्रियता के पीछे सिर्फ राज गुणवत्ता का है। चूँकि श्री नागिया एक तकनीकी व्यक्ति है। इसलिए उन्हे पता था कि गैस की चूल्हे की 'नाब का अदरूनी पीतल का पुर्जा कितना महत्वपूर्ण होता है। आज बाजार में अग्नि ब्राण्ड' के गैस, स्टोप, कुकिग रेन्ज ओटी जी लाइटर, इलेक्ट्रिक आयरन, सैड विच मेकर आदि की प्रतिष्ठित ब्राण्डो की सूची मे देखा जाता है। अग्नि की गुणवत्ता से प्रभावित होकर इटली तथा नाइजीरिया के फर्मों ने सयुक्त उद्यम स्थापित करने के प्रस्तावना श्री नागिया को भेजे हैं।

इस तरह वह दिन दूर नहीं जब अग्नि ब्राण्ड के उत्पाद यूरोपीय देशो मे बेनेगे और बेचेगे। अभी अग्नि उत्पाद दक्षिण अफ्रीका व बाग्लादेश को निर्यात हो रहे है। खाद्य प्रसस्करण उद्योग तेजी से विकास की ओर अग्रसर है। हर साल इसमें 30 प्रतिशत की दर से विकास हो रहा है उदारीकरण का दौर शुरू होने के बाद उस क्षेत्र के निर्यात व्यापार मे दो सौ प्रतिशत की वृद्धि होना एक महत्वूपर्ण घटना है।

तालिका - 71
ससाधित खाद्य पदार्थो का निर्यात

(मूल्य लाख रूपये में)

मद	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97
ससाधित फल व सब्जियॉ (अखरोट समेट)	193 91	263	318 16	409	479	460
पशु उत्पाद	248 21	314	345 79	448	686	814
अनाज उत्पाद (बासमती और गैर बास-मती चावल समेत)	1376 0	1767	2504 00	3576	3501	4121
समुद्री उत्पाद	247 88	285	512 05	411	1043	1642
कुल	**2821 0**	**3527**	**4960 00**	**6124**	**10661**	**10916**

N N.S. - 5164

स्रोत *नेशनल न्यूज सर्विस, 1996-97*

फल और सब्जियों के उत्पादों ने बीस प्रतिशत की विकास दर अर्जित की है। चाय, दूध (भारत में सात करोड टन) दूध का उत्पादन होता है, फल (साढे तीन करोड टन का उत्पादन),

वेजीटेबुल (साढे छ करोड टन) अण्डे (दो करोड अस्सी लाख), चावल गेहूँ, केला और आम (एक करोड टन) तथा कैटल ऐसी वस्तुए है जो एडवाण्टेज इण्डिया, श्रेणी मे शामिल है। इन खाद्य वस्तुओ मे पूरी दुनिया मे भारत का पहला या दूसरा स्थान है। भारत के प्रसस्करित खाद्य बाजार में अमेरिका का 20 प्रतिशत विदेशी निवेश है उसके बाद थाइलैण्ड और नीदरलैण्ड है। देश के इस महत्वपूर्ण खाद्य प्रसस्करण उद्योग मत्रालय अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों को कुशलता के साथ सुलझाने का प्रयास किया है और वे भारत को खाद्य प्रसस्करण उद्योग के क्षेत्र में और आगे ले जाने का इरादा रखते है। मेरे विचार से खाद्य प्रसस्करण उद्योग उदारीकरण के बाद तेजी से आगे बढ रहा है किन्तु निवेशको को ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार की प्रक्रिया जटिल है। इस क्षेत्र में निवेश बढाने के लिए सरकार ने जुलाई 1991 के बाद जब से उदारीकरण का सिलसिला शुरू हुआ है तब से जून 1997 तक खाद्य प्रसस्करण उद्योग के क्षेत्र में सयुक्त उद्यम लगाने, विदेशी सहयोग, औद्योगिक लाइसेंस तथा शत प्रतिशत निर्यात परक इकाइयो ने कुल 983 प्रस्तावों की स्वीकृति प्रदान की है।

इन परियोजनाओं में कुल 17130 करोड रूपये का निवेश हुआ जिसमें विदेशी निवेश 7886 करोड रूपये का है। इसी अवधि के दौरान औद्योगिक उद्यमिता के 4098 प्रस्तावों में 64 276 करोड़ के निवेश का मार्ग प्रशस्त हुआ। सरकार ने खाद्य प्रसस्करण उद्योग के क्षेत्र में निवेश को बढावा देने के लिए अनेक नीतिगत कदम उठाये है। इनमे मुख्य तौर पर खास कदम इस प्रकार है -

1 अलकोहलिक बिवरेज को छोडकर खाद्य प्रसस्करण के अधिकाश उद्योग को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया है।

2 आइसक्रीम और बिस्कुट को आरक्षण मुक्त कर दिया गया जो पहले लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित था।

3 विदेशी निवेशकों उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत तक विदेशी निवेश प्रस्तावों की स्वत स्वीकृति।

4 लगभग 7 2 लाख रूपये का प्रौद्योगिकी शुल्क का भुगतान करके प्रौद्योगिकी तथा विपणन की स्वत स्वीकृति।

5 घरेलू बिक्री पर 5 प्रतिशत और निर्यात पर आठ प्रतिशत रायल्टी शुल्क की अनुमति।

निर्यात के क्षेत्र में सुधार की बहुत अधिक सभावनाए हैं और अनेक कमजोरियों के चलते भारत ने अपनी पूरी क्षमता का अभी तक अनुभव नहीं किया है। मै सोंचता हूँ कि हमारी पूरी शक्ति इस तथ्य पर निर्भर है कि भारत पूरी दुनिया में फल तथा सब्जियों का उत्पादन करने वाला दूसरा सबसे बडा देश है। भारत में चार करोड अस्सी लाख टन फल का और 6 करोड 80 लाख टन सब्जियों का

उत्पादन होता है। हमारे पास विभिन्न प्रकार के फलो तथा फसलो के उत्पादन की क्षमता है और तीसरी जो सबसे बडी विशेषता हमारे पास है वह है कम लागत पर प्रशिक्षित मानव शक्ति।

दूसरी ओर हमारी कुछ समस्याए भी है। प्रौद्योगिकी का अभाव, निवेश का अभाव, सरकारी पारदर्शी नीति का अभाव और इसके साथ ही उस क्षेत्र के लिए व्यावसायिक रूप से सक्षम मानव ससाधनो के विकास की भी आवश्यकता है, जो विश्व बाजार का कुशलता के साथ मुकाबला कर सके।

यदि हम वर्ष 1997-98 के अप्रैल से जुलाई महीनों के निर्यात ऑकडों का पिछले वर्ष की इसी अवधि से तुलना करे तो यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रसस्करित फल और वेजीटेबुल निर्यात 18 3 प्रतिशत,एनिमल प्रोडक्ट्स 11 6 प्रतिशत और अन्य प्रसस्करित खाद्य पदार्थ 78 3 प्रतिशत बढा है जबकि बासमती और गैर बासमती चावलो सहित खाद्यान्नों का निर्यात 19 प्रतिशत गिरा है। इस समय खाद्यान्न निर्यात 4585 करोड रूपये का हुआ जो अन्य वस्तुओं के कुल निर्यात से अधिक है।

भारत में खाद्य प्रसस्करण इकाइयो की स्थापना और उसमें निवेश के मामले में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का ट्रैक रिकार्ड बहुत अच्छा नहीं रहा है। शुरूआती दौर में अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का रिस्पास उत्साहजनक था किन्तु बाद के दौर में अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ मैदान छोडकर चली गयी।

सयुक्त उद्यमों, विदेशी सहयोग, औद्योगिक लाइसेंस, शतप्रतिशत निर्यातपरक इकाइयों की स्थापना के लिए कुल स्वीकृत 983 करोड रूपये का निवेश किया जिसमे 1949 करोड रूपये का विदेशी निवेश है। इन इकाइयों के जरिये लगभग 87 हजार लोगों को रोजगार मिला है। मछली प्रसस्करण डीप सी फिशिग और एक्वाकल्चर के क्षेत्र में सर्वाधिक 73 इकाइयॉ स्थापित की गयी।

कुल 209 परियोजनाओ में से 118 इकाइयों की स्थापना बहु राष्ट्रीय और अन्य विदेशी कम्पनियो द्वारा की गयी जिनकी कुल लागत 3355 करोड रूपये है इनमें पेप्सी, कोका कोला, साउथ एशिया होल्डिग्स, केलाग एण्ड कम्पनी, मैकडोनाल्ड कारपोरेशन पिज्जाहत इण्टरनेशनल, के एफसी, मार्स, परफेटी, सीग्राम, कारगिल रिगले, हेनिज, हीरम वाकर, जैसी अतर्राष्ट्रीय ब्राण्ड की कम्पनियॉ भी शामिल हैं।

ऐसी कम्पनियॉ जब तक अपनी दुकानें नहीं खोल लेती या उनको मजूरी नहीं मिल जाती तब तक हम सीधे तौर पर उससे जुडे रहते है। एक बार जब कागजी कार्यवाही पूरी हो जाती है तब मत्रालय का वहॉ से नियत्रण समाप्त हो जाता है। जो भी कम्पनियाँ अपने उत्पाद लेकर यहाँ आ रही है उससे मौजूदा इकाइयों से कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। उदाहरण के लिए कार्न फ्लैक्स को ही लीजिए।

जब से बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ इस क्षेत्र में आयी है तबसे मोटे अनाजों की माग बढी है और इससे भारतीय किसानों को मोटे अनाजों की पैदावार बढाने में सहायता मिली है। जहॉ तक पारम्परिक खाद्य का सवाल है मैं नहीं समझता कि उसमें कोई प्रतिस्पर्धा है। पेप्सी भुजिया को लेकर काफी शोरगुल हुआ था कि हल्दीराम की भुजिया को चुनौती दे रही है। यहॉ कोई मुकाबला नहीं और इससे घरेलू बाजार को कोई खतरा नहीं। विनिवेश से विश्व स्तर के उद्यमी या कम्पनियॉ भारत के बाजारों में आयेगी। सम्भव है कि बिस्कुट और अन्य उत्पादों के लिए गठबन्धन भी हो किन्तु इस प्रस्ताव को कैबिनेट ने अभी हाल ही में स्वीकृति प्रदान की है। आगे क्या कारवाई करनी है अभी इसके बारे में निर्णय करना है। जब भी कोई गठबन्धन होगा तो उसमे अन्य मत्रालय भी शामिल होंगे, जैसे वित्त मत्रालय, वाणिज्य मत्रालय आदि।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि सरकार ने माडर्न फूड्स को बेचने या उसके पूर्व विनिवेश का निर्णय नहीं किया। कैबिनेट ने 50 प्रतिशत ही विनिवेश का ही फैसला किया है। मत्रालय ने 50-50 प्रतिशत के सयुक्त उद्यम का प्रस्ताव किया है। इसका सीधा असर ढाई हजार पुराने कर्मचारियों पर भी पडेगा। वर्ष 1993-94 में समुद्री उत्पादों का निर्यात 2,44,000 टन हुआ था जिसकी कीमत 2,5 03 62 करोड रूपये थी। वर्ष 1996-97 में यह बढकर 3,49,730 टन हो गया (जिसकी कीमत 4,04,5 35) करोड रूपये हैं। मछुआरों के गुटो के बीच आन्दोलन को देखते हुए सरकार ने डीप सी फिशिग नीति के बारे में सस्तुति करने के लिए एक कमेटी का गठन किया। इन्हीं सिफारिशों के आधार पर नयी डीप सी फिशिग नीति 1991 के सामने लाया गया। नयी नीति के तहत अभी किसी प्रस्ताव को स्वीकृति नहीं प्रदान की गयी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से भारतीय उद्योगों के सरक्षण से मेरा आशय इससे है कि स्वदेशी उद्योगो को ऐसा क्षेत्र दिलाना चाहिए जिससे वे अपना कार्य ठीक ढग से कर सकें अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि वहॉ समस्त प्रकार के साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जिससे भारतीय उद्योगों को विकास करने में कोई कठिनाई न हो। भौतिक एव मानवीय ससाधन उपलब्ध होने के साथ ही यह भी देखना चाहिए कि सरकार की नीतियॉ घरेलू उद्योगों के पक्ष में होना चाहिए, उनको समय-समय पर उनके विकास के लिए पूँजी एव साधनों की समयानुसार आवश्यकता पडने पर सुलभ कराना जिससे कि अच्छी किस्म की वस्तुए बाजार में उपलब्ध करा सके। जिससे घरेलू उद्योगों के सामानो को विदेशी प्रतिस्पर्धा के लायक बनाया जा सके। उदारीकरण के दौरान इसके लिए प्रयास किये गये किन्तु यह सरक्षण उन्हें नहीं मिला। दूसरा आशय यह है कि इन उद्योगों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा से बचना चाहिए क्योंकि इससे भारतीय उद्योग को नुकसान होगा।

इस देश को विदेशी कम्पनियों के उत्पादों का 'डम्पिग ग्राउण्ड' नहीं बनने देना चाहिए। गुजरात की बीएमटी सहित रासायनिक इकाइयाँ इसका उदाहरण है किन्तु सरकार की ओर से कोई कारवाई नहीं की गयी। तीसरी बात निर्यात की मात्रा को लेकर है। साफ तौर पर जाहिर है कि निर्यात के क्षेत्र में हम बहुत अच्छा नहीं कर रहे हैं और इसके लिए हमे कारण ढूढने की जरूरत है। यह पता लगाना होगा कि इसके पीछे कोटा, शुल्क आदि जिम्मेदार है या कुछ औद्योगिक देशों की रणनीतियाँ जो हमें पीछे ढकेलना चाहती है।

मेरे विचार से भाजपा और सहयोगी दल की साझा सरकार बनने से इसका देश की आर्थिक नीति पर वर्तमान समय में कोई प्रभाव नहीं पडेगा। जहाँ तक नीति अथवा फ्रेमवर्क की बात है चाहे वह घरेलू अथवा वैश्विक प्रतिबद्धता से सम्बन्धित हो तो उसके क्रियान्वयन में कोई समस्या नहीं उत्पन्न होगा।हमारे पास ऐसे अनेक उदाहरण है जहाँ साझा सरकारे व्यवस्था का अग है। हमारे मामले में यह अपने तरीके का तीसरा अनुभव है। फ्रेच अर्थव्यवस्था या इटली की अर्थव्यवस्था का उदाहरण ले सकते है युद्धोत्तर यूरोपीय आर्थिक व्यवस्था अपनी प्रगति की ओर बढती रही और सरकारे आती-जाती रही। इसलिए हमें किसी प्रकार के भय की जरूरत नहीं।

भाजपा की नीति यह है कि विदेशी कम्पनियों को प्रोत्साहन मे कटौती किये जाने की अपेक्षा घरेलू उद्योगों को अत्यधिक प्रोत्साहन देना है। पश्चिमी कम्पनियों के पास तो अकूत सम्पत्ति और धन है। साफ्ट ड्रिक उद्योग का ही उदाहरण ले लीजिए। कोका और पेप्सी जब भारत में आये तो कैसी स्थिति उत्पन्न हुई। पूरे भारतीय बाजार पर ही इन दोनों कम्पनियों ने कब्जा कर लिया। पिछले वर्ष कोका कोला का मुनाफा 4 13 बिलियन डालर हो गया जबकि भारत में साफ्ट ड्रिक का कुल बाजार 3000 रूपये से भी कम है। ऐसी स्थिति में घरेलू कम्पनियाँ कैसे टिक पायेंगी।

इसके बारे मे मेरा यह विचार है कि विदेशी कम्पनियों को सुविधाओं से वचित करने के बजाय स्वदेशी उद्योगो को पर्याप्त प्रोत्साहन देना जरूरी है वैसे भी यदि घरेलू बाजार पूरी तरह से स्वतन्त्र रहता है तो विदेशी कम्पनियाँ बहुत आसानी से भारतीय कम्पनियों पर अपना प्रभुत्व जमा लेंगी। ऐसे उपभोक्ता सामग्री वाले बाजार में भारतीय कम्पनियों को सरक्षण देने की आवश्यकता है।

सरकारी सरक्षण प्रदान करने के सम्बन्ध में पहली प्राथमिकता तो उन क्षेत्रों को दी जानी चाहिए जो ऋणता की स्थिति का सामना कर रहे हैं। इनमें तमाम लघु क्षेत्र के भी उद्योग है वहाँ निवेश की अधिक आवश्यकता है। जहाँ नौकरियाँ अधिक विकसित हो सकती है आर्थिक नीतियों का

निर्धारण करते समय बेरोजगारी की स्थिति को पर्याप्त रूप से ध्यान देना चाहिए। लगभग चार करोड बेरोजगार लोग रोजगार कार्यालय मे पजीकृत है। इसी प्रकार ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रो मे दस करोड से अधिक लोग बेरोजगार है। इसी के चलते हम तमाम तरह के सामाजिक तनाव झेल रहे हैं। मध्यम और उच्च मध्यम वर्ग के लोग वस्तुओं की गुणवत्ता को लेकर ज्यादा परेशान रहते है। ऐसे बहुत से लोग है जो इस दलील के साथ सरक्षण हटाने की माग करते हैं कि ऐसा होने से प्रतिस्पर्धा बढेगी और इससे वस्तुओ की गुणवत्ता में सुधार आयेगा। परिणामस्वरूप उपभोक्ता विश्व की सर्वोत्तम वस्तुए प्राप्त कर सकेगा। यह सब बातें महत्वपूर्ण है परन्तु कोई देश यह नहीं देखना चाहेगा कि उसके यहॉ के लोग भुखमरी के शिकार हो। इसलिए देश में जो भी कार्यक्रम चलाये जायें उस पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

भारतीय कम्पनियों को सरक्षण और प्रोत्साहन देने की बात काफी खुशनुमा बयान प्रतीत होता है जिसे आज तक लागू नहीं किया जा सका। दूसरी ओर कोका और पेप्सी को देश से बाहर तो जाने के गभीर परिणाम सामने आयेगे। इससे रोजगार की स्थिति पर काफी प्रभाव पडेगा। भारतीय कानून में यह कहा गया है कि ऐसी स्थिति में विदेशी कम्पनियों के लिए यही उपयुक्त होगा कि वे देश के बाहर चले जाय या तो फिर अपनी इक्विटी घटाकर 49 प्रतिशत तक लाये। कोका और पेप्सी के प्रवेश से एक नजारा यह देखने को भी मिला है कि इन दोनों कम्पनियों ने देश में डाफ्ट ड्रिक के क्षेत्र में कार्यरत अनेक छोटी-मोटी कम्पनियो को ही खरीद लिया। मुझे इसका कोई कारण नहीं दिखता है कि इस प्रकार की छोटी-मोटी प्रौद्योगिकी पर आधारित उद्योगों के क्षेत्र में इन विदेशी कम्पनियों को प्रवेश की अनुमति कैसे दे दी गयी है। दूसरी ओर इसका भी मुझे कोई कारण समझ में नहीं आता कि उच्च प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों में इन कम्पनियो को क्यों नही अनुमति दी गयी। एक बात और कि विदेशी कम्पनियो के समझौते और उनके क्रियान्वयन में भी अन्तर है। सरकार को इस मामलें की जॉच करनी चाहिए।

मेरे विचार से क्षेत्रों को पहचानने का कार्य समुचित रूप से किया जाना चाहिए। स्वतन्त्र बाजार का आशय यह नहीं है कि सरकार रेफरी का कार्य करें और कोई भी बाहरी आये और हमारे मैदान पर फुटबाल खेलना शुरू कर दें। घरेलू उद्योगों की खुशहाली के लिए सरकार को अवश्य ही हस्तक्षेप करना चाहिए। यहाँ तक कि अमेरिका के राष्ट्रपति अपने यहाँ की कम्पनियों के हितों की रक्षा के लिए हस्तक्षेप करते हैं। एक समय ऐसा था जब हम विश्व बैंक से ऋण के लिए बातचीत कर रहे थे तो उस समय पेप्सी को भारत में प्रवेश दिलाने के लिए मेरे ऊपर दबाव डाला गया। विश्व बैंक पेप्सी का

एजेन्ट नहीं है,लेकिन मेरे देशवासियो के प्रति यह कहा गया कि ऋण की स्वीकृति के लिए भारत मे पेप्सी का प्रवेश जरूरी है। उस समय हमारे देश के राजनेताओ ने कहा कि उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे अमेरिकी कम्पनियों के प्रवेश पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है चाहे वह भारतीय रेलवे के लिए परियोजनाए क्यों न हो, किन्तु कुछ ऐसे क्षेत्र जरूर होने चाहिए जो भारतीय उद्योगों के लिए सुरक्षित हो।

मैं व्यक्तिगत तौर पर ऐसा नहीं अनुभव करता कि जिस प्रकार से विनिवेश हो रहा है वैसा होना चाहिए। मैं सोचता हूँ कि विनिवेश की समीक्षा की जानी चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश तथा निजीकरण दोनों के लिए ही आयोग बनना चाहिए। कुल मिलाकर सार्वजनिक उपक्रमों में जो धन जाता है वह करदाताओं का ही धन होता है।

जो भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ हमारे यहॉ व्यापार करने के लिए आयें उन्हें कानून के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि घरेलू कम्पनियों के लिए जो कार्य क्षेत्र बनें उसमें उन्हें प्रवेश नहीं करना चाहिए। तीसरा कोर क्षेत्र निर्यात का है जहॉ विशेष रूप से ध्यान देना जाना चाहिए। मै यह भी स्पष्ट करना चाहता हूॅ कि मैं स्वदेशी समर्थक जरूर हूॅ परन्तु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विरोधी नहीं। मौजूदा विकास क्रम को रेखाकित और उसकी मुख्य प्रवृत्ति को उद्घाटित करने के लिए विशेषज्ञ इन दिनो भूमडलीकरण, उदारवाद, सुधारवाद पुनर्गठन आदि शब्द समूहों का धडल्ले से इस्तेमाल करते पाये जाते हैं। ये शब्द भारत में 90 के दशक से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक पैमाने पर प्रयुक्त होने लगा था और अब वे सामाजिक-आर्थिक चिन्तन के शब्द कोष के अपरिहार्य शब्द बन गये है। ऐसा इसलिए है क्योकि वे सामाजिक विकास की कुछ वस्तुपरक प्रक्रियाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। इन वस्तु परक प्रक्रियाओं को विशेषज्ञ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही रूपों को देखते रहे है- एक सिलसिला जो आज भी जारी है। जो लोग पूर्व एशिया के मौजूदा सकट से जोडकर इन्हें देखने परखने की कोशिश कर रहे हैं उनके नजदीक सामाजिक विकास की यह प्रक्रिया मुख्य रूप से नकारात्मक है। इसके विपरीत जो लोग इसे अन्य नजीरों से जोडकर देखने-परखने का प्रयास करते रहे हैं उनकी नजरों में यह प्रक्रिया सकारात्मक है।

भारतीय उद्योगपति अजय पिरामल निश्चित रूप से दूसरी श्रेणी के लोगों में शुमार है। उन्हें कुशल सौदेबाज माना जाता है जिसकी मुख्य ताकत बदलते परिवेश के साथ अनुकूलन में निहित मानी जाती रही है और आज भी मानी जा रही है। उदाहरणस्वरूप-भारतीय उद्योगपति अजय पिरामल ने दवा उद्योग में जो लबी छलांग लगायी है। उसे हर दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा रही है। इस त्वरित

विकास के लिए अजय की असाधारण अनुकूलन क्षमता के अलावा सौदेबाजी की कला में उसकी जबरदस्त महारत को भी जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। कम्पनियो के विकास-क्रम के विशेषज्ञों ने इस उद्योग समूह की पुनर्गठन क्षमता का वस्तु परक मूल्याकन करते हुए इस समूह ने यह भविष्यवाणी की है कि यह पुनर्गठन की एक और प्रक्रिया के आरभिक दौर से गुजर रहा है। पुनर्गठन क्रय मे इस समूह ने छोटी इकाइयो के अधिग्रहण के रास्ते पर कदम बढाने के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के भागीदार की अपरिहार्यता को भी अहमियत दी है।

अधिग्रहणो की प्रक्रिया पिरामल के लिए काफी लाभप्रद साबित हुई है। उन्हे इस क्रम में 1600 लोगो का ऐसा कार्यबल मिला है जिन्होने अपने कार्य मे विशेषता हासिल की है। इतना ही नहीं कम्पनी का दावा है कि इसी प्रक्रिया के तहत उसे 2500 केन्द्रो का वितरण नेटवर्क भी प्राप्त हुआ है। ये दोनों ही बाते व्यापक व्यावहारिक एव व्यापारिक विकास की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इसी क्रम में सामान्य उत्पादन की परम्परा को दर किनार करके विशेष उत्पाद विभाग अस्तित्व मे आये और विकसित हुए है जिसे सहज स्वाभाविक और प्रत्याशित माने जाने के बावजूद एक ऐसी उपलब्धि के रूप मे देखा जा रहा है जिसका निर्णायक महत्व है।

कम्पनी के सूत्रो का दावा है कि निकोलस को बहुराष्ट्रीय कम्पनियो से भी अनेक उत्पाद मिल रहे है इन कम्पनियो में हाफ मैनल रोचे और बोहरिंगर मैनहीम का विशेष रूप से जिक्र किया जा रहा है। इसी क्रम मे पीतमपुर और मध्य में विश्वस्तरीय निर्माण सुविधाओं का जिक्र भी किया जारहा है। कहा जा रहा है कि इन निर्माण केन्द्रों का स्तर हर दृष्टि से उन्नत है और ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की उत्पादन शर्तों और अपेक्षाओ के सर्वथा अनुरूप साबित होंगे।

बहुराष्ट्रीय निगमे भारतीय अर्थव्यवस्था में आकर कार्य करे क्योंकि हमारे देश में पूँजी का अभाव है इसलिए हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए कि जिस देश में पूँजी की अल्प मात्रा हो, वहाँ पर हमें पूँजी प्राप्त करने के लिए ऐसे उद्योगों को आमन्त्रित करना चाहिए जो देश मे रोजगार, तकनीकी, गुणवत्ता, यातायात सुविधा आदि का विस्तार कर सकें। इन सब मदों की जरूरतें बहुराष्ट्रीय निगम या बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ करती है क्योंकि ये विकसित देश की कम्पनियॉ होती है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सम्बन्ध में कुछ ऐसे नियम बनाना चाहिए जिससे हमारे भारतीय उद्योगों को सरक्षण मिल सकें। ये नियम इस प्रकार होना चाहिए जैसे -

बहुराष्ट्रीय निगमों को बड़े उद्योगों के सम्बन्ध में कार्य करना चाहिए, न कि छोटे उद्योगों में

कार्यरत उद्योगो के सम्बन्ध मे कार्य करना चाहिए, जिससे उनकी पूॅजी एव तकनीकी का सही ढग से उपयोग हो सके। छोटे उद्योगों से हमारा तात्पर्य कुटीर उद्योग या ऐसे उद्योग से है जो हमारे देश में बहुत पहले से वस्तुओं का निर्माण कर रही है उसे बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा न बनाने पर रोक लगानी चाहिए। इसके साथ-साथ जो छोटे उद्योगो से अपना पेट-पालते हैं। उन सभी व्यवसायों एव उद्योगो पर रोक लगानी चाहिए। बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना उन्हीं क्षेत्रो में स्थापित करने की अनुमति देनी चाहिए जो क्षेत्र पिछडा एव अविकसित होता है जिससे वहॉ यातायात, बिजली, परिवहन, आबादी एव रोजगार आदि की स्थापना हो सके। क्योंकि ये बहुराष्ट्रीय निगम विकसित देश की कम्पनियॉ होती है जो कि विकासशील देश में अपने उद्योगो एव तकनीकी को लगाकर लाभ का अधिकतम हिस्सा अपने यहॉ ले जाती है इसलिए इनके लाभ के सम्बन्ध मे यह नियम बनाना चाहिए कि लाभ का थोडा सा भाग केवल वे अपने देश मे ले जा सकती है। लाभ का अधिकतम भाग उसे उसी उद्योग में या देश के विकास में विनियोजन कर देना चाहिए।

जिस प्रकार उद्योग मे पूॅजी रक्त का सचार करती है उसी प्रकार ये बहुराष्ट्रीय निगमों के सम्बन्ध में यदि नीतियॉ देश के अनुकूल हों तो देश की अर्थव्यवस्था में रक्त की सचार को तीव्र गति प्रदान करती है। आज के व्यवसाय के लिए अत्यधिक आवश्यकता इस बात की है कि न करने से ज्यादा अच्छा हम कुछ करे, इसके लिए हम दूसरे देशों से पूॅजी एव तकनीक लेकर अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते हैं जिससे देश के विकास में अत्यधिक योगदान कर सकते हैं यही उदारीकरण का उद्देश्य है।

भारत सरकार की नीति इन बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीयकरण करने की थी। अत इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने कुछ अधिकार ले लिये जिनके अन्तर्गत उसने इन सभी 883 कम्पनियों से कहा था कि वे अपनी पूॅजी मे विदेशियों का हिस्सा 40 प्रतिशत करने का प्रयास करे।[1] अत 700 कम्पनियों ने अपनी पूॅजी में विदेशियों का हिस्सा 40 प्रतिशत कर दिया, लगभग 100 कम्पनियों का 51 प्रतिशत पर बने रहने की अनुमति दे दी गयी, लगभग 40 कम्पनियों को 74 प्रतिशत पर बने रहने की आज्ञा दे दी गयी, लेकिन कोका कोला व आई बी एम , इस प्रकार विदेशी हिस्सा कम करने को तैयार नहीं हुए। अत उन्होंने अपना व्यापार बन्द कर दिया, परन्तु अभी हाल में सरकार ने नीतियों में परिवर्तन किया है। औद्योगिक नीति 1991 के अनुसार 51 प्रतिशत की पूँजी की अनुमति सरकार द्वारा दी जा रही है इससे इन निगमों की क्रियाए भारत में बढ रही है। अनेक बहुराष्ट्रीय

---

1 मामोरिया, डॉ० चतुर्भुज एव जैन डॉ० एस सी भारतीय अर्थशास्त्र, पृष्ठ सख्या-153

निगम भारत मे आ गये हैं और उन्होने अपना व्यापार प्रारम्भ कर दिया है। कोका कोला कम्पनी जिसे पहले अनुमति न मिलने के कारण अपना व्यापार भारत में बन्द करना पडा था वह अब 17 वर्ष बाद पुन भारत मे आ गई है। भारत की औद्योगिक नीति 1991 व नवीन आर्थिक नीति के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमो का कारोबार भारत मे तेजी से बढने लगा है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'कोल ड्रिक्स' की समीक्षा ·

देश मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा अपने कोल्ड ड्रिक्स पिलाकर हमारी युवा पीढी को नशेडी बनाने का जो अभियान चलाया जा रहा है उसकी ओर मै अपना ध्यान आकार्षित करना आवश्यक समझता हूॅ।

कोल्ड ड्रिक में तात्कालिक स्वाद के अलावा और कोई भी पौष्टिक तत्व नहीं है। अपने देश मे अब तक कोल्ड ड्रिक के तत्वो के विषय के बारे मे कोई शोध नहीं किया गया था। अब अहमदाबाद के कज्यूमर एजूकेशन एड रिसर्च सेटर (सी आई आर सी) की प्रयोगशाला में इन सभी ब्राण्डों की जॉच करके पता लगाया है कि किस कोल्ड ड्रिक में क्या है और कितना है। जिन कोल्ड ड्रिक की जॉच की गई वे हैं कोका कोला, पेप्सी कोला, मिरिंडा, गोल्ड स्पाट, फैन्टा, सेवन अप थम्स अप, सिट्रा और टीम। इनमें लेड शीशा, जिक कापर, आर्सेनिक, कैडमियम, आयस, कैफीन, कैलोरी, शुगर और बेजोइक एसिड की मात्रा की जॉच की गई। इन सभी तत्वों की एक निर्धारित मात्रा के बारे में ब्यूरो आफ इडियन स्टैन्डर्ड (बी आई एस) और प्रोवेशन ऑफ फ्रूट एडल्ट्रेशन (पी एफ ए) ने कुछ निर्देश जारी कर रखे हैं जिनका सभी कोल्ड ड्रिक निर्माताओं को पालन करना अनिवार्य है। इस जॉच के बाद बी आई एस और पी एफ ए ने कोल्ड ड्रिक में लेड यानि शीशे की मात्रा की सीमा 0.5 पी पी एम निर्धारित की गयी है। जबकि अमीर देशो में यह सीमा 0 2 पी पी एम है।

शीशा की अधिक मात्रा शरीर में जाने पर न केवल नसों को नुकसान पहॅुचाती है बल्कि इससे रक्त की लाल कोशिकाए भी नष्ट होती है जिससे अतत ब्लड प्रेशर बढ जाने की शिकायत होती है, इस जॉच में यह सतोषजनक बात पता चला है कि पेप्सी, मिरिंडा, गोल्ड स्पाट और फैंटा में लेड की मात्रा 0 9 पी पी एम है जबकि अन्य सभी कोल्ड ड्रिक जिनका टेस्ट किया गया उनमें लेड नहीं था।

इसी प्रकार कोका कोला पदार्थों में इस्तेमाल होने वाला एक अन्य प्रमुख पदार्थ है कैफीन जो कम मात्रा में लिये जाने पर तो नुकसान नहीं पहुॅचाता लेकिन अधिक मात्रा में लेने पर बेचैनी, अनिद्रा और सिरदर्द जैसी समस्याए खड़ी कर सकता है। बी आई एस और पी एफ ए ने कोल्ड ड्रिक में

कैफीन की मात्रा अधिकतम 200 पी पी एम निर्धारित की है। कोका कोला, पेप्सी और थम्स अप मे इसकी मात्रा तो निर्धारित सीमा के अन्दर है।

ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ जब विदेशो के जागरूक उपभोक्ता को अपने शीतल पेय बेचती है तो उनमे इन सभी हानिकारक तत्वो की मात्रा काफी कम होती है। उदाहरण के तौर पर 1984 मे इग्लैण्ड में जब पेप्सी और कोका कोला मे कैफीन की मात्रा की जॉच की गई तो वह क्रमशत 47 और 48 पी पी एम ही निकली।

यह भी एक चिता की बात है कि कोल्ड ड्रिक में शुगर यानी चीनी की मात्रा कितनी होनी चाहिए इसके लिए बी आई एस और पी एफ ए ने कोई भी मानदड निर्धारित नहीं किए हैं। इससे अभिप्राय यह है कि कोल्ड ड्रिक निर्माता शुगर की मात्रा मनचाही डालने के लिए स्वतन्त्र है जबकि स्वास्थ्य का तकाजा है कि इसकी मात्रा निर्धारित होनी चाहिए। अधिक शुगर से मुँह में वैक्टीरिया ज्यादा पनपते हैं जो अतत दॉतों मे कीडे लगने का कारण बनते हैं। कोल्ड ड्रिक मे पाई जाने वाली कैलोरी मे पोषक तत्व बिल्कुल नहीं होते। इसमें खनिज (मिनरल), प्रोटीन या विटामिन नहीं होते जबकि इसके विपरीत सभी फलो के जूस मे मिनरल होते हैं। अधिक शुगर का अभिप्राय है अधिक कैलोरी और बिना पोषक तत्वो वाली यह कैलोरी मोटापा बढाने के सिवाय स्वास्थ्य में कोई और योगदान नहीं देती। इस टेस्ट में पाया गया कि सभी कोल्ड ड्रिक में शुगर की मात्रा 11 प्रतिशत से 14 प्रतिशत है। टेस्ट मे कैलोरी की मात्रा सबसे अधिक 56 और सबसे कम 44 पाई गई है।

इसी तरह यह भी देखा गया है कि कापर और जिक की निर्धारित सीमा के बारे में तो हमारे नियम कडे हैं, लेकिन आर्सेनिक के इस्तेमाल की सीमा मे ढिलाई है जबकि यह एक जहरीला तत्व है और इसकी अधिक मात्रा कई बीमारियॉ पैदा कर सकती हैं।

टेस्ट मे यह भी देखा गया है कि उन कोल्ड ड्रिक में फैंटा की डेढ लीटर की बोतल को छोडकर और किसी भी बोतल पर निर्माण और इस्तेमाल की अवधि के सीमा के बारे में नहीं लिखा गया था, जबकि विदेशों में इन कोल्ड ड्रिक निर्माताओं को यह सब लिखना अनिवार्य है। इस तरह साफ हो गया है कि हर तत्व के इस्तेमाल में भारतीय नियमों के ढ़िलाई के चलते यह बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ उपभोक्ता की अज्ञानता का लाभ उठाकर उसे अपनी सुविधा के अनुसार माल परोस रही है। सी आई आर सी अपने टेस्ट में इन कोल्ड ड्रिक की तुलना लस्सी, नारियल पानी, फलों के जूस और गन्ने के रस जैसे पारम्परिक पेय पदार्थों से करते हुए इन सभी को विदेशी पेय पदार्थो से बेहतर

बताया है, क्योकि इनमे कोई भी हानिकारक तत्व नहीं पाया गया।

टेस्ट के दौरान यह भी देखा गया कि ये कोल्ड ड्रिंक जितना जल्दी पी लिए जाए उतना कम नुकसान करते हैं क्योंकि धीरे-धीरे पीने से इनमें बैक्टीरिया अधिक पनपते हैं। साथ ही यह भी पता चला है कि अगर कोल्ड ड्रिंक के सीधे बोतल मे मुँह लगाकर पीने की बजाय पाइप (स्ट्रा) से पी जाए तो मुँह मे बैक्टोरिया कम पैदा होते हैं। सेंटर ने इस कोल्ड ड्रिंक में शीशा की मात्रा को और कम किये जाने और इस पर कडाई से अमल के लिए बी आई एस और पी एफ ए को लिखा है। साथ ही इनके निर्माण और किस तारीख तक इस्तेमाल करना उचित होगा। ऐसे विवरण भी कोल्ड ड्रिंक के ऊपर लिखे जाने के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को निर्देश देने को कहा है।

इन कोल्ड ड्रिंक मे इस्तेमाल होने वाले तत्वों मसलन कैफीन, लेड, आर्सेनिक की मात्रा और उनके पोषक तत्वो के बारे मे भी कोल्ड ड्रिंक के लेबल पर खुलासा किये जाने को सेंटर ने बी आई एस और पी एफ ए से आग्रह किया है। राजनैतिक दबावों के चलते ऐसे नियमों पर अमल करते कई बार बरसो लगते देखे गए हैं,लेकिन जब तक सरकार कोई कदम उठाए तब तक जागरूक नागरिक ऐसी टेस्ट रिपोर्टों के आधार पर ऐसे हानिकारक सामानों के बहिष्कार का फैसला कर इनके खिलाफ माहौल बनाने मे सक्रिय भूमिका तो निभा ही सकते हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का दुश्चक्र :

आदिकाल से ही कृषि जीवन का आधार रही है और किसान समाज का पालनहार रहा है लेकिन अग्रेजी हुकूमत से लेकर आज तक यानि पिछले 200 सालों से किसान लगातार गरीब होता गया है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज में किसानो से जोर जबर्दस्ती कर उन फसलों को पैदा करवाया जाता था जो इग्लैण्ड के कल-कारखानों मे काम आती थी।

अग्रेज अपना पेट भरने के लिए अन्न लूटकर इस देश से ले जाते थे। अग्रेजी राज्य में इस देश मे दो सौ बार अकाल पडा था। खेती पर किसानों की मिल्कियत को नकारते हुए अग्रेजों ने यहाँ देशी-विदेशी जमींदार स्थापित कर दिये थे। इन्हीं कारणों से किसानों ने आजादी के आन्दोलन में बढ-चढ कर हिस्सा लिया। देश को अग्रेजी दासता से मुक्त करवाया और आज न केवल देश भर की खाने की जरूरत किसान पूरी कर रहे हैं बल्कि दुनिया के जरूरतमदों को भी अनाज दे रहे हैं।

लेकिन खेतों में हमारी तरक्की और किसानों की खुशहाली दुनिया के व्यापारियों को नहीं सुहाती। वे चाहते हैं कि हम उनसे भीख माग कर खायें और हमारी खेती पर इनकी जमींदारी स्थापित

हो तथा किसान उनके यहॉ गुलामी मजदूरी करे। जिस तरह अग्रेजों को हमारे राजा-महराजा और जमींदार मद्द करते थे उसी तरह अब विदेशी व्यापारियो (बहुराष्ट्रीय कम्पनियो) की मद्द हमारी सरकार राजनेता, पूँजीपति और बडे सरकारी अधिकारी कर रहे हैं और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को खेती का कारोबार करने की इजाजत सरकार ने दे दी है। फसलो के बीजों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को पेटेंट अधिकार मान लिये गये हैं। विश्व व्यापार समझौता हमारी खेती-बाडी को ही लील जायेगा। बीजो पर किसानो की पुश्तैनी अधिकार रहा है। आज तो उन्नत किस्म के गेहूँ, चावल, दलहन और तिलहन के बीज है। उनको विकसित करने मे किसानों की हजारों साल की मेहनत और पारम्परिक ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है, परन्तु अब विश्व व्यापार सगठन समझौते के बाद किसान का यह अधिकार समाप्त हो गया है और बीजों पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का अधिकार मान लिया गया है। सोयाबीन, कपास आदि के बीज पर तो अमरीकी कम्पनी डब्लू आर ग्रेस एण्ड कम्पनी का पेटेण्ट अधिकार हो ही गया है, अन्य फसलो के बीजो पर भी विदेशी कम्पनियॉ कब्जा करना चाहती है।

कृषि व्यापार नियमो की वजह से किसान अब अगली फसल के लिए नए किस्म के बीज बचाकर नहीं रख सकेगे। आपस में इन बीजो का आदान-प्रदान नहीं कर सकेगे। पूरे देश में प्रतिवर्ष 8 लाख टन बीजों की आवश्यकता होती है। इसी बीज के व्यापक बाजार पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की ऑख लगी हुई है, जो बीज नियत्रण के रास्ते पूरी कृषि व्यवस्था पर कब्जा करना चाहती है। बीज पर नियत्रण खोने के साथ ही किसान की यह आजादी कि वह क्या बोए क्या काटे खो जाएगी।सम्पूर्ण भारत की कृषि व्यवस्था धीरे-धीरे किसानो के हॉथों से निकलकर मुनाफाखोर विदेशी कम्पनियों के हाथो मे चली जाएगी।

कृषि उत्पादन बढाने के लिए छोटे और मझौले किसानों को मद्द देने के लिए सरकार की तरफ से खाद, बिजली, पानी तथा बीजों पर सब्सिडी (राज्य सहायता) दी जाती है। गैट (विश्व व्यापार सगठन) समझौते के बाद इस पर व्यापक असर पडा है। अत खेती किसानी दिनों दिन मँहगी होती जायेगी। एक ओर तो खाद, बिजली, पानी महगे होंगे तो दूसरी ओर बीज पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा होने की स्थिति में किसानों को महगे बीज मिलेगें। पेप्सी कोला नामक कम्पनी टमाटर के बीज 25000 रूपये किलो बेंच रही है। इन कम्पनियों के बीज 80-80 गुना तक मँहगें होते हैं।

नए किस्मों के बीजों के साथ रासायनिक खाद और कीटनाशकों की भारी खुराक देनी पडती हैं। इन्हें भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ ही बेंचती हैं। एक तरह से आधुनिक बीज एक दुश्चक्र है जो खेती को

पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भर करती है। ऐसी स्थितियो मे छोटे और मझौले किसान खेती छोडने को मजबूर होगे। एक आकलन के अनुसार अगले दस वर्षों मे 25 प्रतिशत यानी लगभग 15 करोड किसान खेती-बाडी का काम छोडकर शहरो में अपनी रोजी रोटी तालाशेंगे, मजदूरी करेगे, रिक्शा खीचेगे। गदी बस्तियों में जहॉ हवा-पानी भी शुद्ध नहीं मिलता रहेगा। उनके बच्चे बीमारियों के शिकार होगे।

समझौते के बाद हमे विदेशों से खाद्यान्न मगाना जरूरी हो गया है। इसकी जरूरत हो या न हो अनुमान है कि हमें 1 करोड 84 लाख टन अनाज का अनिवार्य रूप से आयात करना होगा। मान लीजिए हमारे यहॉ गेहूॅ की भरपूर फसल हुई और उसी समय विदेशों से भी गेहूॅ आ गया तो क्या किसानो को बाजार में गेहूॅ का उचित दाम मिल पायेगा? अभी-अभी सरकार ने विदेशों से मॅहगी चीनी मगाने का सौदा किया है जिसे सरकार सस्ते भाव पर देश में बेचेगी। इसी चीनी पर सरकार लगभग 450 करोड रूपये अपने खजाने से देकर इस चीनी का मॅहगापन समाप्त करेगी। यदि यही पैसा गन्ने का उत्पादन बढाने के लिए किसानो को दिया जाता तो हमारे देश में चीनी का कोई कमी नहीं होती। इसी प्रकार सरकार ने गेहूॅ आयात अधिक दामों पर किया परन्तु किसानो को गेहूॅ का उचित मूल्य नहीं दिया। गैट समझौते (विश्व व्यापार सगठन) का यह असर तो होना ही था। इस तरह विदेशो से आयात किसानो को उत्पादन करने से रोकेगा।इसका नतीजा यह होगा, हमारी खाद्यान्न के मामले में विदेशो पर निर्भरता और देश की खेती चौपट हो जायेगी।

विदेशी कम्पनियॉ यही चाहती हैं कि खाने के लिए हम उनकी मेहरबानी पर निर्भर हो जाए, देश की खेती-बाडी चौपट हो जाए। किसान खेती-बाडी छोड दे तो अपनी जमींदारी स्थापित करने मे सहूलियत होगी। विदेशी कम्पनियॉ कहेगी कि तुम तो खेती कर नहीं सकते, जमीन खाली पडी है इसे हमें दे दो, हम यहॉ उन्नत किस्म की खेती करेंगे।

किसान भी मजबूर हो जायेगा तो अपनी जमीन इन विदेशी कम्पनियों को बेचेगा और ये हजारो एकड के फार्म बनाकर उस पर मशीनों से खेती करेंगी। भूमि हदबदी कानून इनके आडे आता है तो उसे भी बदलवा दिया जायेगा। एक विदेशी कम्पनी ने महाराष्ट्र सरकार से 50 हजार एकड जमीन ले ली है। इस प्रकार कर्नाटक सरकार ने भी एक विदेशी कम्पनी को 50 हजार एकड जमीन उपलब्ध कराई है। इस फार्म पर विदेशी कम्पनियाँ क्या पैदा करेंगे? गेहूँ, चावल और दाल पैदा नहीं करेंगी। इन्हें तो वे अपने देशों से लाकर यहाँ बेचेगी और यहाँ पैदा करेंगी अगूर, जिससे शराब बनती है, जानवरों का चारा-खली जिसकी यूरोप में बहुत मांग है। तम्बाकू जिससे विदेशी कम्पनियाँ सिगरेट

बनाती है चाय- काफी जिसका विदेशी कम्पनियॉ कारोबार करती हैं, नई किस्म के फल और सब्जियॉ जिन्हे डिब्बा बद कर विदेशो को बेंचा जा सके। जिन किसानों की जमीने विदेशी कम्पनियॉ खरीदेगी वे उनके यहॉ मजदूरी गुलामी करेगे। अग्रेजी हुकूमत में नील की खेती का किस्सा हम भूले नहीं है और वे अकाल भी नहीं भूले है। जो अग्रेजी जमाने मे लाखो लोगो को मौत की नींद सुलाते थे। फिर से क्या ऐसा ही नहीं होगा?

सरकार बहुत कह रही है कि उदारीकरण के बाद खाद्यान्न बाजार मे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से किसान को अपनी फसल का वाजिब मूल्य मिल सकेगा। दुनिया मे खाद्यान्न के व्यापार पर कारगिल, काण्टीनेटल, यूनी लीवर, पेप्सी, गोनसाओ जैसी कई बडी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा है और कीमते तय करने की ताकत इन्हीं के हॉथ में है।

कारगिल और काण्टीनेंटल, कारपोरेशन ने भारत से 60-100 डालर प्रति टन गेहूँ (240-400 रूपये प्रति क्विटल) खरीद कर अतर्राष्ट्रीय बाजार मे 230-240 डालर प्रति टन (1000 रूपये प्रति क्विटल) बेच दिया। जाडे के मौसम में तो 900-1000 रूपये प्रति क्विटल गेहूँ भारत में ही बिक गया। आलू की भी स्थिति ऐसा ही रही। पिछले वर्ष लाखों टन आलू खेतो में सड गया।

गैट समझौते के अनुसार पेटेंट कानून बनाने की कोशिश नरसिहराव की सरकार ने की और बाद मे सयुक्त मोर्चे की सरकार भी उसी रास्ते पर चली। अमरीका इस मुद्दे को लेकर बहुत नाराज था। अमरीकी मत्री भारत के दौरे पर दौरे लगा रहे है कि किसी प्रकार नया पेटेण्ट कानून बन जाए। इस कानून के नतीजे निम्नलिखित होंगे -

1 एक रूप बीजो का प्रसार, कृषि विभिन्नता, बीजो और फसलों की विभिन्नता जो मौसम और स्थानीय जलवायु के हिसाब से होती है समाप्त हो जायेगी।

2 कृषि ससाधन किसानों से छिनकर बहुराष्ट्रीय उद्योगों के हाथ में हो जायेगा।

3 जरूरी अन्न उपजाने के स्थान पर कृषि भूमि का उपयोग अनावश्यक और नुकसान देह वस्तु पैदा करने में जैसे झींगा,मछली,शराब के लिए अगूर, तम्बाकू आदि।

4 घरेलू खाद्यान्न खपत में कमी और खाद्यान्न निर्यातों में वृद्धि।

विदेशी सहायक या अनुषंगी कम्पनियों, अल्पसख्य सहयोग कम्पनियों तथा शुद्ध तकनीकी सहयोग के रूप में विद्यमान है उन सबमें विदेशी अनुषगी कम्पनियों को वरीयता दी जाती है। कुछ भी हो हमारे देश के अन्दर बहुराष्ट्रीय निगमों ने महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रवेश किया है और अत्यधिक लाभ

अर्जित करके विदेशो को भेजे हैं। वर्ष 1948 मे इन निगमो का कुल निवेश मात्र 260 करोड रूपये था जो कि 1974 के अन्त मे 1791 करोड रूपये और 1978-79 मे बढकर 2401 करोड रूपया हो गया।[2] हमारे देश मे ब्रिटेन और अमेरिका के निगमो का ही वर्चस्व बना हुआ है।

आज भारत मे अनेक विदेशी कम्पनियॉ बहुत ही बेहतर स्थिति मे अपना कारोबार चला रही है और मुनाफा अर्जित कर रही है। ये बहुराष्ट्रीय निगम भारत ही नहीं वरन् अन्य विकासशील देशो मे लूट-खसोट की नीति अपनाये हुए है। कुछ महत्वपूर्ण कम्पनियॉ यथा पाण्ड्स चेहरे के लिए क्रीम बनाने वाली कम्पनी,वारेन टी चाय बेचने वाली कम्पनी, सीबा दवाई बनाने वाली कम्पनी, कालगेट, पालमोलिव दत मजन व दाढी बनाने का साबुन बनाने वाली कम्पनी, हिन्दुस्तान लीवर साबुन व डालडा घी बनाने वाली कम्पनी, ग्लैस्को, दवाई बनाने वाली कम्पनी गुडलक, नैरोलेक पेण्ट्स रग व वार्निश बनाने वाली कम्पनी आदि।

इसी प्रकार वृक्षारोपण मे जहॉ विदेशी हितों का इस उद्योग में अधिपत्य है, भारत मे 40 प्रतिशत चाय-उत्पादन उन स्टर्लिंग कम्पनियों के हॉथों में है जिन्होंने अपने को रूपया निवेश करने वाली कम्पनियो मे परिवर्तित कर लिया है लेकिन उन्हें विदेशी विनिमय अधिनियम के मार्गदर्शन के अधीन 74 प्रतिशत शेयर दिए जाने की अभी भी अनुमति नहीं दी गई है। चाय भारत के लिए पारम्परिक रूप से विदेशी विनिमय मुद्रा पैदा करने वाला एक उद्योग है और जो चाय अधिकाश रूप से निर्यात की जाती है, उसका उद्योग उन्हीं कम्पनियों के हॉथ में है। मैंने स्वय अपने अध्ययन के दौरान पाया कि दार्जलिग के सबसे अच्छे चाय बागान अब भी ब्रिटिश कम्पनियों के अधिकार में हैं। लोकसभा की लोक लेखा समिति ने अपनी 15वीं रिपोर्ट 1977-78 में यह बताया था कि भारत में चाय उद्योग किस प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के हॉथ में है, जिन्होनें देश को अपने विविध विदेशी मुद्रा की आय से न केवल वचित ही किया है, अपितु अपनी देय राशियों के सम्बन्ध मे राजकोष को भी लूटा है। इस सम्बन्ध में औद्योगिक लाइसोसिग समिति ने भी अपनी टिप्पणी की थी। भारत में दियासलाई उद्योग जो कि विकेन्द्रित क्षेत्र में होना चाहिए, उसका भी बडा भाग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों विमकों के हॉथ में ही है, जो कुल उत्पादन के 60 प्रतिशत से अधिक भाग को उत्पादित करती है।[3]

बहुराष्ट्रीय निगम लाभ कमाने के उद्देश्य से अति पूँजी प्रधान प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। वे ऐसी प्रौद्योगिकी के प्रसार पर जोर देते रहे हैं जो भारतीय दशाओं के अनुकूल नहीं रही। बहुराष्ट्रीय

---

2 *मिश्र, जगदीश नारायण, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ सख्या-946*

3 *मिश्र, जगदीश नारायण भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ संख्या-947-948*

निगमे शोध अन्वेषण हेतु प्रयोगशालायें अपने मूल देश मे स्थापित करती हैं। बहुराष्ट्रीय निगम शोध अन्वेषण की लागत और उस पर रायल्टी विकासशील अर्थव्यवस्थाओ से अपने शाखा कार्यालयो और अनुषगी इकाइयो के माध्यम से वसूल करते हैं। इन निगमो द्वारा हस्तान्तरित प्रौद्योगिकी ऊर्जा के गैर-नवकरणीय स्रोतों पर निर्भर है, जो अत्यन्त खर्चीली प्रकृति की है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगम विद्यमान उत्पादन ढॉचे को और आर्थिक सरचना को अत्यधिक हॉनि पहुँचाते हैं। वे एक वर्ग विशेष की आय बढाकर उनके लिए ही उत्पादन करके अर्थव्यवस्था में आर्थिक और सामाजिक अन्तराल बढा देते हैं। समाज का सम्पन्न वर्ग इन बहुराष्ट्रीय निगमो के उत्पादन के उपभोग से अपने को गौरवान्वित अनुभव करने लगते हैं। इसका लाभ उठाकर बहुराष्ट्रीय निगमो ने हमारे समाज के सम्पन्न वर्ग के लोगों पर अपना भावात्मक अधिकार स्थापित कर लिया है। इसके कारण परिस्थिति कुछ इस प्रकार बन गई है कि बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा आरोपित शर्तों पर ही उनके उत्पादन प्रभाव व आधिपत्य के नीचे आने के लिए हम लालयित रहते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमो के प्रति यह निर्भरता वस्तुत समाज के उच्च और मध्यम वर्ग की इच्छाओं और आकाक्षाओं का पश्चिमी देशों के प्रति उन्मुख होने का परिणाम है। पश्चिमी उपभोगवादी विचारधारा और पूँजी बहुल विज्ञापनो ने इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने मे सहायता की है। आज समाज के अधिकाश उच्च वर्ग के परिवारों की स्थिति इस प्रकार हो गई है कि प्रात काल से सायकाल तक के जीवन व्यवहार में वे बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्पादनों के प्रयोग की अधिकता और सतत्ता को निम्नवत् प्रदर्शित किया है। उच्च और मध्यम वर्ग का व्यक्ति जब उठता है, कोलगेट टूथ ब्रस पर कोलगेट क्रीम फैलाता है (कोलगेट पामोलिव), लिपटन कम्पनी यूनीलीवर नियत्रित द्वारा वितरित और पैंकिग की गयी चाय पीता है, पामोलिव शेविग क्रीम और इरस्मिक ब्लेड का प्रयोग करता है, इण्डियन लीक टुबैको डेवलपमेंट कम्पनी द्वारा निर्मित सिगरेट को विमको दियासलाई द्वारा सुलगाता है और सोते समय बहुराष्ट्रीय निगम की औषधि का प्रयोग करता है। इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र मे बहुराष्ट्रीय निगमों ने प्रवेश कर लिया है और अब भारत में एक शोषक के स्थान पर कई विदेशी शोषक हो गये हैं जो प्रात काल से लेकर सोते समय तक शोषण करते रहते है।

बैंकों और वित्तीय सस्थाओं को अधिक सक्षम बनाने के लिये उन्हें विदेशी सस्थाओं के साथ प्रतियोगिता में उतरना अच्छी बात है पर अगर इसका एशियाई विकास बैंक के अनुसार पूर्वी एशिया की अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष कई चुनौतिया प्रकट हो रही हैं तथापि उन्हें मैक्सिको सरीखा खतरा नहीं है। ऐसा कहने की बैंक को आवश्यकता पड़ी, यह अपने में प्रमाण है कि ऐसी सभावनाए विद्यमान हैं। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इन देशों की परिस्थिति गड़बड़ा क्यों रही है? इन देशों की घरेलू बचतें अत्यन्त ऊँची है और विदेशी निवेश भी बड़े पैमाने पर हुआ है। ये देश वे सभी नीतिया अपना रहे है,

जिनकी सस्तुति एशियाई तथा विश्व बैंक कर रहे है। फिर गडबडी की आशका क्यो ? वास्तव मे विदेशी निवेश और विदेशी ऋणो की प्रक्रिया में समानता है। भारी मात्रा में ऋण लेने से मैक्सिको जैसे दक्षिणी अमेरिका के देशो की हालत बिगड गयी। पूर्वी एशिया के देशो की हालात भारी मात्रा मे विदेशी निवेश के कारण बिगड रही है। एशियाई बैंक के रपट से ही इस प्रवृत्ति के प्रमाण मिलते है।।

बैंक की द्विवार्षिक रपट के अनुसार चीन मे 1995 मे सकल घरेलू बचत दर 42 2 प्रतिशत थी जबकि निवेश 39 5 प्रतिशत हुआ। 12 7 प्रतिशत की बचत का चीन ने निर्यात किया है। ऊपर से 34 अरब डालर का विदेशी निवेश हुआ। जब निवेश के लिए घरेलू बचत ही पर्याप्त थी तो विदेशी निवेश की आवश्यकता कहॉ से बन पडी। बताया गया है कि वहॉ की सार्वजनिक इकाइयों को भारी घाटा लग रहा है। सरकार का बजट घाटा मात्र 1 2 प्रतिशत है, परन्तु सार्वजनिक इकाइयों के घाटे को सम्मिलित कर लेने के बाद यह 8 प्रतिशत हो जाता है। 39 5 प्रतिशत निवेश, 1 2 प्रतिशत बजट घाटे के लिए तो उनकी 42 2 प्रतिशत की घरेलू बचत पर्याप्त थी, परन्तु 8 प्रतिशत के सम्मिलित घाटे के लिए नहीं।[4] इस घाटे की भरपाई के लिए चीन की सरकार के पास धन नहीं है, अत अपनी बचत से घाटा भरा गया और विदेशी निवेश किया गया, अन्त में प्रभाव दक्षिणी अमेरिका के ऋण के समान ही पड रहा है। अन्तर सिर्फ इतना है कि वहॉ ऋण लेकर सरकारी नेता खा पी गए थे, चीन मे निवेश लेकर सार्वजनिक इकाइयॉ खा पी रही है। मैक्सिकों में ऋण पर व्याज का भार बना रह गया था चीन मे विदेशी निवेश पर लाभाश का भार बना रह जायेगा।

इडोनेशिया में सरकारी कर्मचारियों के वेतनों मे 10 प्रतिशत की बढोत्तरी कर दी गई। उनके पेशन फण्ड की भी देनदारी बढ रही है। विदेशी निवेश से जो उन्हें विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है। उसका उपयोग मशीनरी आयातित करने के लिए कम व चावल तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओ के आयात करने के लिए अधिक किया जा रहा है। 1993 मे निर्यातों की तुलना में उनके आयात सकल घरेलू उत्पाद के 1 3 प्रतिशत से अधिक थे। 1995 में ये बढकर 4 प्रतिशत हो गये थे। आयातो मे वृद्धि तेजी से हुई और निर्यातों में धीमी। ऊपर से विदेशी निवेशकों ने लाभाश बडे पैमाने पर भेजा है। इन कारणो से उनका बाहरी सतुलन बिगड रहा है, परन्तु यह बिगडाव प्रत्यक्ष नहीं दिखता क्योंकि भारी मात्रा मे विदेशी निवेश भी हो रहा है अर्थ यह हुआ कि सरकारी कर्मचारियों का पोषण किया जा रहा है, आयातित वस्तुओं का उपभोग बढाया जा रहा है और विदेशी निवेशक लाभाश बडे पैमाने पर बाहर भेज रहे है। इन सब के लिए उनके पास पैसा नहीं।

अत जो धन नए विदेशी निवेश के माध्यम से आ रहा है उसका उपभोग इन खर्चों की भरपाई

---

4 *दैनिक समाचार दैनिक जागरण, 19 फरवरी 1997, पृष्ठ संख्या-6*

के लिए किया जा रहा है। आयात तथा लाभाश प्रेषण से जो विदेशी मुद्रा में कमी आई उसकी पूर्ति नए विदेशी निवेश से की गई। यह उसी तरह हुआ कि ऋण पर ब्याज अदा करने के लिए और ऋण ले लिया गया। मैक्सिको मे भी ऐसा हुआ था। भारी मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं का आयात हुआ था और इसकी अदायगी ऋण लेकर की गई थी। भाडा उस दिन-फूटा जब और ऋण उपलब्ध न हुआ। ऐसा ही इडोनिशिया मे हो सकता है।

पूर्वी एशिया के देशों मे सर्वाधिक खुली अर्थव्यवस्था मलेशिया की है। उसकी हालत भी बिगडी हुई है। एशियाई विकास बैंक ने बताया है कि वहॉ के बैंकों ने जनता को उपभोक्ता वस्तुओं के क्रय के लिए आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराना चाहिए दूसरी तरफ विदेशी निवेशकों ने लाभाश बडे पैमाने पर अपने देशो को वापस भेजा। 1995 में मलेशिया में विदेशी निवेश 4 3 अरब डालर हुआ और 6 अरब डालर लाभाश बाहर भेजा गया, नतीजा यह हुआ कि 1982 के बाद पहली बार उनके आयात अधिक और निर्यात कम हुए। बाहरी सतुलन बिगड रहा है। वर्तमान मे इस बढती हुई खपत तथा लाभाश प्रेषण की भरपाई दो स्रोतों से की जा रही है। एक विदेशी निवेश दूसरा सार्वजनिक इकाइयो का वर्गीकरण एव निजीकरण। निष्कर्ष यह हुआ कि घरेलू खपत बढ रही है और उसकी भरपाई विदेशी निवेश से की जा रही है। मैक्सिको में भी घरेलू खपत की भरपाई ऋण लेकर की गयी थी। थाइलैण्ड मे सगठित श्रमिको के वेतन में भारी बढोत्तरी हुई है। नतीजा यह हुआ कि जनता ने बचत करना कम कर दिया। सरकार द्वारा टैक्स लगाकर बचत और जनता द्वारा खपत अधिक की जा रही है। श्रमिकों के बढते वेतन के कारण अनेक उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में खडे नहीं रह पा रहे हैं, लेकिन खपत बढ रही है साथ-साथ आयात भी। 1995 में आयातों मे 28 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि निर्यातो मे 25 प्रतिशत की। बाहरी सतुलन पर दबाव बन रहा है। वर्तमान मे इसकी भरपाई विदेशी निवेश से की जा रही है। कुल मिलाकर समस्या यह है कि बचत नहीं बढ रही है। इस कमी की भरपाई वर्तमान में विदेशी निवेश से की जा रही है।

यह थी कहानी पूर्वी एश्यिा की चार प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं की। ये सभी तथ्य एशियाई विकास बैंक द्वारा दिये गये है। पर अलग बात है कि बैंक इन्हें गभीर नहीं मानता और इन देशों को फिर भी सलाह देता है कि वे विदेशी निवेश तथा निर्यात के प्रति खुलापन बनाए रखें। उन्हें मैक्सिको जैसी समस्या की आशका नहीं होनी चाहिए परन्तु बैंक की यह दलील गले नहीं उतरती। वास्तव में विदेशी ऋण तथा विदेशी निवेश की प्रक्रिया में समानता ही है। मूल बात यह है कि दोनों के लाभ भी निवेश वापस ले जाने को तत्पर रहते हैं अतर सिर्फ इतना है कि ऋण का लाभांश अनिश्चित होता है, अधिक भी हो सकता है और कम भी हो सकता है। मूल समानता यह है कि मेजबान देश से धन बाहर

भागता है।

दूसरी समानता यह है कि ऋण और निवेश दोनो से ही घरेलू खपत मे वृद्धि को ढका जा रहा है। मैक्सिको को सरकार ने ऋण लेकर सार्वजनिक कर्मचारियो की भर्ती की और उॅचे वेतन दिये, खपत बढ गई, ऋण खडा रह गया। भरपाई करने के लिए लाभ के स्रोत पर्याप्त मात्रा मे नहीं बने। पूर्वी एशिया में भी ऐसा ही हो रहा है। विदेशी निवेश के कारखाने भले ही लगे हो, परन्तु उनके लाभाश अदायगी का भार भी बढ रहा है। सरकारें अपना घाटा नियन्त्रित नहीं कर रही हैं। आयात तेजी से बढ रहे है और तुलना मे निर्यात कम हो रहे हैं। इन सब बिसगतियों को विदेशी निवेश से मिली रकम से ढका जा रहा है, लेकिन कब तक? मैक्सिको में यही प्रक्रिया तब तक चलती रही जब तक नए ऋण उपलब्ध होते रहे परन्तु उस दिन तबाही मच गई, जब नए ऋण मिलना बद हो गये। उसी प्रकार वर्तमान मे इन देशो की यह प्रक्रिया चालू रह सकती है। वास्तविकता तो तब सामने आएगी जब नया निवेश आना बन्द हो जायेगा।

एक तरफ इन देशों की उपरोक्त बिगडती परिस्थिति है, दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि इनकी विकास दरे 6-10 प्रतिशत के बीच बनी हुई है। इसे भी नकारा नहीं जा सकता। इस गुत्थी को कैसे सुलझाया जाए। इसे सुलझाएगा समय। मैक्सिको 60 तथा 70 के दशक मे उदाहरण की तरह पेश किया जा रहा है। अब 90 के दशक में परिणाम सामने आये है। अत यदि 90 के दशक मे पूर्वी एशिया को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा रहा है तो इसके परिणामों को भी सामने आने के लिए समय तो देना होगा, लेकिन सदेह नहीं कि ये अर्थव्यवस्थाए किस ओर बढ रही है। सभी में एक ही प्रक्रिया चल रही है। अनियन्त्रित सरकारी खर्च, बढती घरेलू खपत, लाभाश प्रेषण मे वृद्धि और उनकी भरपाई करने के लिए विदेशी निवेश पर निर्भरता अर्थात परिस्थिति का सही अनुमान तो 10 से 20 साल बाद ही लगेगा।

कछुए और खरगोस की दौड है। भारत गछुए की तरह चलता है। 5000 वर्षों के उतार-चढाव को हमने देखा है इसलिए हमारी चाल धीमी है। विदेशी निवेश हमारे सरकारों को चाहने के बारे में भी नहीं आ रहा है। इसके लिए विदेशी निवेशक को अनेक धन्यवाद। हम आप तो यही कर सकते हैं कि विदेशी निवेश के उभरते हुए दुष्परिणामों के प्रति सजग रहे। हो सकता है कि जब तक हम विदेशी निवेश को आकर्षित करने की स्थिति में आए तब तक यह गुब्बारा फूट चुका हो और हम बच जाए। मतलब वित्तीय अराजकता और असुरक्षा है तो लोगों को यह समझौता खारिज करने में देर नहीं लगेगी। एक स्पष्ट खाका बनाने से न सिर्फ हमारी अदरूनी हालत सुधरेगी अपितु विश्व व्यापार सगठन में हम अच्छी सौदेबाजी करने की स्थिति में होंगे।

हैरत की बात है कि इस मुद्दे का अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञो की कोई समिति तक नहीं बनाई गई है। मरोकश समझौते पर भारत के दस्तखत करने के तीन साल बाद अब जाकर दो समूह (बहुस्तरीय निवेश और प्रतियोगिता नीति) पर गठित किये गये हैं। प्रधानमत्री द्वारा गठित विशेषज्ञ समूह के सदस्य जी वी रामकृष्ण कहते है 'समझौते की सीमाओ और उसके असर को लेकर यहॉ काफी मतभेद है'। यहीं रवैया रहा तो हमे भारतीय वित्तीय क्षेत्र मे प्रतियोगिता से मुँह चुराने के लिए फिर उसी राजनैतिक अस्थिरता के औजार का इस्तेमाल करना पडेगा।

समझौते के बाद क्या होगा-

1. नई सरकार को विदेशी कम्पनियों के लिए बीमा क्षेत्र को खोलने के बारे मे फैसला करना होगा। इस फैसले पर अमेरिका, जापान, यूरोपीय सघ की नजर रहेगी।
2. विदेशी बैको को भारत में ज्यादा बडा बाजार मिलेगा।
3. दूसरे देशो के लिए अपना बाजार खोलने के मामले में भारत अब कोई भेदभाव नही कर सकेगा।
4. अगर अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों को ज्यादा फैलने की अनुमति न दी गई तो भारत के निर्यात पर बुरा असर पडेगा।

8
निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष एवं सुझाव

किसी भी शोधकार्य का मूल उद्देश्य यह होता है कि प्रस्तावित विषय से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यो का सग्रहण करें और तथ्यों का विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण करें और उन विश्लेषणों से प्राप्त निष्कर्षों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करें। अत किसी भी शोधकार्य का निष्कर्ष सम्पूर्ण अध्ययन का एक सार रूप होता है जिससे सामान्य व्यक्तियों को विषय वस्तु से परिचित कराने में सुविधा होती है। इसलिए निष्कर्ष पूर्व के अध्याय में प्रस्तुत विवरण व विश्लेषण का सार रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का विषय "बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सन्दर्भ में उदारीकरण नीति की उपादेयता" से सम्बन्धित है। उदारीकरण के चार मूल सिद्धान्त हैं, इन्हें प्राप्त करके कोई भी देश अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत कर सकता है। ये हैं उत्पादकता बढाना, कार्य क्षमता में वृद्धि, गुणवत्ता मे श्रेष्ठता हासिल करना और टेक्नोलाजी उन्नयन। अस्सी के दशक में ब्रिटेन की निवर्तमान प्रधानमत्री श्रीमती मार्गेट थैचर ने निजीकरण को प्रोत्साहन प्रदान करके विश्व के लिए आर्थिक सुधार का श्रीगणेश किया। इस सुधार की हवा से ब्रिटेन ही नहीं, अपितु सपूर्ण यूरोप, दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका और एशिया भी प्रभावित हुए। नवम्बर, 1995 तक विदेशों में भारत के 592 सयुक्त उद्यम थे, जिनमें से 185 ने कार्य करना आरम्भ कर दिया था और 407 कार्यान्वयन की विभिन्न अवस्थाओं में थे। 185 सयुक्त उद्यमों में से 104 (56 प्रतिशत) उत्पादन के क्षेत्र में है, जिनमें हल्का इजीनियरिंग सामान, वस्त्र तथा सम्बद्ध उत्पाद, रसायन, औषधि, खाद्य उत्पाद, चमडे और रबड की वस्तुए, लोहा और इस्पात, व्यापारिक वाहन, लुगदी और कागज और सीमेंन्ट उत्पाद आदि का निर्माण हो रहा है।[1] गैट उत्पादन क्षेत्र में होटल, रेस्तरा, व्यापार एव विपणन, परामर्श सेवाए, इजीनियरी और निर्माण कार्य प्रमुख हैं। 185 सयुक्त उद्यमों में भारतीय पूँजी (इक्विटी) की कुल मात्रा लगभग 221 86 करोड रूपये की है। अधिकतर सयुक्त उद्यम दक्षिण और पूर्वी एशिया के पड़ोसी देशों में स्थित है। इसके बाद ब्रिटेन, अमरीका, पश्चिम एशिया और अफ्रीका का स्थान आता है। अमरीका चाहता है कि भारत अमरीकी बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों को कारगर सरक्षण प्रदान करें यदि भारत अमरीका की 'बौद्धिक सम्पदा अधिकार' सम्बन्धी अवधारणा को स्वीकार कर लेता है, तो इससे न सिर्फ देश में औषधियों के मूल्यों में भारी वृद्धि होगी, अपितु सम्पूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाँथों में चली

---

1 भारत, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ, 1996, पृष्ठ सख्या-530

जाएगी।

अमरीका भारत पर 'उत्पाद पेटेन्ट' कानून को लागू करने के लिए दबाव डाल रहा है। इन कानूनों को लागू करने का सीधा सा अर्थ है, देश की आर्थिक हितों की अनदेखी कर देनी। उत्पादक पेटेंट कानून के अन्तर्गत उत्पाद को विकसित करने वाला ही अपने उत्पाद का उत्पादन करने और बिक्री करने का अधिकारी होता है। उसकी अनुमति के बिना अन्य कोई इस उत्पाद का उत्पादन तथा विक्रय नहीं कर सकता। इसके विपरीत भारत में अपनाये जा रहे 'उत्पाद प्रक्रिया पेटेंट' कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत किसी उत्पाद की उत्पादन प्रक्रिया पर ही अन्वेषक का बौद्धिक सम्पदा अधिकार होता है। कोई भी दूसरा उत्पादक बिना पूर्वानुमति के इस प्रक्रिया से उत्पादन नहीं कर सकता, लेकिन इस प्रकार से उत्पादित की जाने वाली वस्तु के लिए वैकल्पिक उत्पादन प्रक्रिया अपनाई जा सकती है। यदि भारत द्वारा 'उत्पाद पेटेंट' प्रावधानों को स्वीकार कर लिया जाता है तो देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गिरफ्त में आ जाएगी। कृषि एव पशुपालन, इलेक्ट्रानिक्स, कम्प्यूटर, इजीनियरिंग तथा औषधि उद्योग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मोहताज हो जायेंगे। सर्वाधिक दयनीय दशा तो भारतीय कृषकों की होगी। जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा तैयार किये गये अधिक उपज देने वाली प्रजातियो के बीजो से उत्पादित फसल से प्राप्त बीजों का पुन प्रयोग नहीं कर सकेंगे, उन्हे प्रत्येक बार इन्हीं कम्पनियो से ही नए बीज क्रय करने के लिए बाध्य होना पडेगा।

15 अप्रैल, 1994 को मराकाश मे विश्व समुदाय द्वारा प्रशुल्क एव व्यापार पर सामान्य समझौता 'गैट' के डकल प्रस्ताव को विधिवत स्वीकार कर लिए जाने के बाद विश्व अर्थव्यवस्था विशेष रूप से विकासशील देशों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की पकड और भी अधिक मजबूत हो गयी है। प्रशुल्क एव व्यापार की नवीन व्यवस्था के व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार-ट्रिप्स के अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से अनेक ऐसे अधिकार प्राप्त हो गए हैं, जिनका प्रयोग करके वे विकासशील देशों के नागरिकों का आर्थिक शोषण कर सकती है। दवाइया हो या अधिक उपज देने वाली प्रजातियो के बीज, मशीनें हो या नवीन औद्योगिक उत्पाद मौलिक रूप से बनाये गये औद्योगिक अभिकल्प हो या फिर सूक्ष्म जीव गैर जैव तथा सूक्ष्म-जैव प्रणालियों आदि सभी के मौलिक खोजकर्ता को इनके उत्पादन का एकाधिकार प्राप्त हो गया है। अब इन मौलिक आविष्कारकों की पूर्वानुमति प्राप्त किए बिना कोई भी अन्य उत्पादक इनका उत्पादन नहीं कर सकता और अनुमति प्राप्त करने के लिए ऊँचे रायल्टी का भुगतान करना होगा। इन समस्त मामलों में विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को पहले से ही एकाधिकार प्राप्त है और आगे भी प्राप्त रहेगा। इस व्यवस्था का

दुष्परिणाम यह होने वाला है कि विकासशील देश नयी दवाइयों, नए बीजों, नयी औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक होने के कारण इनका उपयोग ही नहीं कर पायेगे। एक अनुमान के अनुसार नयी व्यवस्था लागू हो जाने के बाद भारत में दवाइयो की कीमतों में 40 से 100 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाएगी। इसी प्रकार भारतीय कृषक बिना विदेशी कम्पनियो की अनुमति के अपने खेतों में अधिक उपज देने वाले बीजो का प्रयोग नहीं कर सकेगा। उसे हर बार नया बीज खरीदना होगा जो पेटेंट के कारण अत्यधिक मँहगा होगा। डकल प्रस्ताव में व्यापार सम्बन्धी निवेश उपाय-ट्रिप्स को बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ का सुनहरा स्वप्न कहा जा रहा है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सदस्य देश घरेलू एव विदेशी निवेश सम्बन्धी भेदभाव को समाप्त कर देंगे अर्थात सदस्य देशों को विदेशी निवेश में आने वाली रूकावटो को समाप्त करना होगा। इस प्रकार अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अनेक प्रकार की सुविधाए प्राप्त करके विकासशील देशों मे भारी मात्रा में पूँजी निवेश करेगी और मोटा लाभ अर्जित करके अपने मूल देशों को ले जाएगी।

अर्थव्यवस्था के गत्यात्मक स्वरूप को बनाए रखने के लिए कीमतों में थोडी बहुत वृद्धि होते रहना तो आवश्यक है। यह वृद्धि ही निवेशकर्ताओं को नवीन निवेश करने एव उत्पादकों को अपनी गतिविधियों का विस्तार करने के लिए एक उत्प्रेरक का कार्य करती है, लेकिन जब कीमतें, राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि से भी अधिक तेजी से बढने लगती है तो सामान्य आय वाले नागरिकों को जीवन कष्टमय होने लगता है ऐसी स्थिति मे सरकार का यह कर्त्तव्य होता है कि तेजी से बढती कीमतो को नियन्त्रित करने के उपाय करें उसके लिए उद्योग एव व्यापार को पूँजी प्रवाह जारी रखते हुए सकल मौद्रिक ससाधनों को नियन्त्रित करके, राजकोषीय घाटा न्यूनतम स्तर पर रखकर, कम आपूर्ति वाली वस्तुओं का आयात करके कीमतों को नियन्त्रित किया जाना चाहिए।

आज विश्व एक अति गभीर दौर से गुजर रहा है। जहॉ कुछ देश मदी एव बेरोजगारी के दलदल में फॅसकर अपने अस्तित्व के लिए सघर्ष कर रहे हैं, तो वहीं तृतीय विश्व के विकासशील देश निर्धनता, कुपोषण एव बेरोजगारी के कुचक्र में फँसे हुए है।। ये देश अपने विकास हेतु सतत् प्रयत्नशील है। भारत भी इन्हीं देशों में से एक है। भारत के लिए आज सबसे प्रमुख आवश्यकता यह है कि वह अपनी समस्याओं, बाधाओं, प्राकृतिक ससाधनों के दोहन के स्तर एव उनकी उपलब्धताओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय लक्ष्यों एव प्राथमिकताओं का निर्धारण करें और उन नीतियों का क्रियान्वयन करें, जो उसे अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर उच्चता प्रदान करती है आज जबकि देश में उदारवादी नीतियों के साथ निजी क्षेत्र को अधिक दायित्व सौपने का अच्छा वातावरण तैयार हो गया है, तो मंदी की मार से

त्रसित विकसित देशों से बेहतर सम्बन्धों को अत्यधिक उपलब्धि परक बनाया जा सकता है। चूँकि विकसित देशो की दृष्टि भारत के विस्तृत बाजार पर है, तो ऐसे में औद्योगिक क्षेत्र के दरवाजे प्रतिस्पर्धा के लिए खोल देने के निर्णय के साथ कई सावधानियॉ अपनाए जाने की भी आवश्यकता है। आज भारत निर्यात से जो कुछ भी अर्जित करता है, उससे कहीं अधिक आयातों में गवॉ देता है। देश मे निजी क्षेत्र को बढावा दिये जाने तथा भारी मात्रा में विदेशी पूँजी विनियोग के बाद भारतीय बाजार के अधिकाधिक प्रतिस्पर्धा हो जाने से स्थिति में निश्चित रूप से परिवर्तन आएगा। ये परिवर्तन देश की निर्धनता को दूर करने मे कितने सहायक होंगे, यह तो भविष्य के गर्भ मे छिपा हुआ है।

भारतीय अर्थव्यवस्था इस समय विश्व की छठवीं अर्थव्यवस्था के रूप मे उभरी है। इसका स्वरूप कुछ विशिष्ट प्रकार का है। प्राकृतिक ससाधनों की विपुलता, अत्यधिक दक्ष श्रम, उत्पादित वस्तुओ की खपत के लिए बहुत बडा बाजार, पूँजी की कमी तथा पूँजी निर्माण की धीमी गति, उपभोग का नीचा स्तर, बेरोजगारी, निर्धनता की व्यापकता से मुक्त भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत सरचना के निर्माण में औद्योगिक नीतियों 1956, 1977 आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात सम्बर्द्धन की नीति के तहत सरक्षण एव आर्थिक सहायता के माहौल मे घरेलू उद्योगों को जीवित रहने की आदत ने भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व बाजार से अलग-थलग कर दिया है। घरेलू इकाइयों मे न तो लागतों को कम करने का कोई प्रयास किया है और न गुणवत्ता में सुधार लाने की दिशा में कोई कदम उठाया है। जबकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पैर जमाने के लिए इन दो तत्वों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। देश मे विदेशी कम्पनियों के आगमन के साथ विदेशी पूँजी, अत्याधुनिक उत्पादक टेक्नोलाजी तथा दुर्लभ कच्चा माल आता है। जो परोक्ष रूप से घरेलू इकाइयों को भी विकसित होने के अवसर प्रदान करता है। रोजगार के नवीन अवसर सृजित होते हैं तथा निर्यातों को बढावा मिलता है। इन उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए ही वर्ष 1991 मे घोषित औद्योगिक नीति मे विदेशी पूँजी के आगमन के द्वार खोल दिए गए हैं। इसके साथ-साथ घरेलू उद्योगो को भी खुलकर खोलने के अवसर प्रदान किए गए हैं। उदारीकरण तथा आर्थिक सुधारो के वातावरण में नवीन औद्योगिक नीति की सार्थकता इस बात में निहित है कि इन नीतियो के साथ सरलीकृत तथा उदार आयात-निर्यात नीति व करागत सुधारों का लाभ उठाते हुए भारतीय उद्योग स्वय को इस सीमा तक सक्षम बनाए कि वह घरेलू स्तर पर ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विदेशी उत्पादकों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मुकाबला कर सकें। इन नीतियों मे दी गयी रियायतों का प्रयोग अनुसधान एव विकास कार्यों पर विशेष ध्यान देकर लागत को कम करने तथा गुणवत्ता में सुधार करने के लिए किया जाना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अपनी परीक्षणशालाए तथा शोध विकास के पृथक प्रभाग हैं खाद्य सरक्षण तथा उपभोक्ताओं की रूचि के

अनुकूल नये-नये डिब्बा बद उत्पाद तैयार करने के लिए खोजबीन का कार्य करते रहते हैं।

कम्पयूटर साफ्टवेयर का निर्यात काफी सीमा तक तकनीकी गुणवत्ता एव विपणन प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित तथा लागत एव गुणवत्ता के पैमाने पर यदि भारतीय साफ्टवेयर इकाइयों को आका जाए तो उनका स्थान विश्व में बहुत ऊँचा है। इस कारण ही विकसित देशों में स्थित बहुराष्ट्रीय कम्पनियो मे भारत अत्यधिक सक्षम और प्रतियोगी इजीनियरी मानव-शक्ति की अच्छी साख है। भारत की 20 से अधिक साफ्टवेयर कम्पनियों ने अतराष्ट्रीय उच्च गुणवत्ता का प्रतीक 'आई एस ओ -9000' सर्टिफिकेशन प्राप्त कर लिया है तथा शेष 67 कम्पनियॉ इसे प्राप्त करने की दिशा में विभिन्न स्तरों पर अग्रसर है। भारत विश्व में साफ्टवेयर के क्षेत्र मे सबसे अधिक सार्टिफाइड कम्पनियों वाला देश बन जाएगा। विश्व मे साफ्टवेयर निर्यात के क्षेत्र में आयरलैंण्ड के बाद भारत का दूसरा स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे कम्प्यूटर साफ्टवेयर निर्यात के क्षेत्र में भारत के अन्य प्रमुख प्रतिस्पर्धी देश ताइवान, एव सिगापुर हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य देश इजराइल, फिलीपींस, हागकाग, मैक्सिको, हगरी, तथा चीन भी इस दिशा में तेजी से प्रगति कर रहे है। 1986-87 मे भारत से केवल 50 करोड रूपये मूल्य के साफ्टवेयर का निर्यात किया गया था जो 1996-97 में बढकर 4000 करोड रूपये हो गया।

इलेक्ट्रानिक ट्रेड एण्ड टेक्नोलाजी डेवलपमेंट कारपोरेशन का गठन विदेशों में इलेक्ट्रानिक व्यापार मे वृद्धि और प्रमुख क्षेत्रों में टेक्नोलाजी के विकास के लिए किया गया। इसने भिवानी मे कम्प्यूटर और रगीन टेलीविजनों के चेसिस बनाने के लिए एक इकाई ली है। निगम ने 1993-94 में निर्यात मे काफी वृद्धि की। इसने यूरोप मे निर्यात के लिए रगीन टी वी सेट बनाने की इकाइयाँ स्थापित की। 1994 मे अप्रैल से दिसम्बर के दौरान इसने जर्मनी को 6400 रगीन टी वी सेट निर्यात किए। निगम ने इलेक्ट्रानिक सूचना माध्यमो के जरिये शिक्षा देने का 'मार्गदर्शन' नाम का कार्यक्रम शुरू किया है। उचित कीमत पर वीडियो कैसटों के जरिए स्कूली पाठ्यक्रम, व्यापारिक शिक्षा, विज्ञान और टेक्नोलाजी सम्बन्धी सामान्य ज्ञान आदि उपलब्ध कराया जाता है। निगम ने गॉधीनगर के साफ्टवेयर टेक्नोलाजी पार्क का पूरा प्रबन्ध भी अपने हाथ में ले लिया है। बडे कम्प्यूटर प्रतिष्ठानों, साफ्टवेयर केन्द्रो और व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए इसने 'मिनी स्टोर्स' योजना प्रारम्भ की है। निगम ने मौजूदा प्रौद्योगिकियो को उन्नत बनाने के लिए तकनीकी जानकारी प्रदान करने, मौजूदा प्रक्रियाओं की क्षमता मे सुधार लाने और उद्योग की उभरती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप नई स्वदेशी प्रौद्योगिकिया विकसित करने जैसे उपायों के माध्यम से देश के औद्योगिक विकास में तेजी लाने में सहयोग दिया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जोडने के उद्देश्य से सरकार द्वारा लागू

की गई औद्योगिक, आर्थिक एव व्यापारिक नीतियो तथा आमूल परिवर्तन के अनुरूप परिषद की प्रयोगशालाओ ने अपनी प्राथमिकताओ को बदला है। औषधि, कृषि रसायन, तेलशोधन लकडी के स्थान पर उपयोग की जाने वाली सामग्री, जल शुद्धिकरण उपकरणो तथा अवशिष्ट उपचार जैसे अनेक क्षेत्रो मे टेक्नोलाजी का सफलतापूर्वक हस्तान्तरण किया गया है। प्रयोगशालाओ ने अमरीका की पार्क डेबिस, टू प्वाएट तथा जापान की मितसुई जैसी बहुराष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कपनियों के साथ सहयोग के समझौते किए है।

उदारीकरण की नीतियो के फलस्वरूप उद्योगो की नई आवश्यकताओ के अनुरूप प्राथमिकताओं के पुनर्निर्धारण तथा अनुसधान एव विकास कार्यक्रमो को नया रूप देने के उद्‌देश्य से आठवीं योजना मे अनेक कदम उठाए गए हैं उद्योगों के सोथ सम्पर्क को और सुदृढ करने की दिशा में उठाए गए इन कदमो के फलस्वरूप प्रायोजित अनुसधान कार्यक्रमो और परामर्श से प्राप्त होने वाली राशि 1987-88 मे 34 करोड रूपये था। ई टी एण्ड टी विकास निगम की तकनीकी जानकारी पर आधारित अनुमानित वार्षिक उत्पादन 1987-88 मे 650 करोड रूपये से बढकर 1993-94 मे 2250 करोड हो गया। इसके अलावा वैज्ञानिको ने 1993-94 मे करीब 2100 शोध पत्र प्रकाशित किए और 210 पेटेट फाइल किए। जिनमे से भारत मे 198 तथा विदेशो में 18 थे।[2] निगम ने दवाओ और औषधियो मे भारत को न केवल आत्मनिर्भर, बल्कि निर्यातक देश बनाने में अग्रणी भूमिका निभाई है।

विदेशो मे इस प्रकार के सगठनो के बीच सहयोग बनाये रखने के उद्‌देश्य से अनेक वर्षों से द्विपक्षीय एव बहुपक्षीय सहयोग के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इस समय 30 देशों की 40 एजेन्सियों के साथ सहयोग समझौतो पर अमल हो रहा है, जिनमें से 14 विकसित और 18 विकासशील देश है। परिषद राष्ट्रमडल विज्ञान परिषद, एशिया में विज्ञान सहयोग एशोसिएशन यूनेस्को, औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक अनुसधान सगठनों के विश्व सघ, कनाडियन इटरनेशनल डेवलपमेट रिसर्च सेंटर, सार्क तथा सयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालयों की गतिविधियो में भी भाग लेती है। सरकार की उदार नीतियों के सन्दर्भ मे निगम ने अब अतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सहयोग कार्यक्रमों को अतर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिक सहयोग, कार्यक्रमों का रूप देना शुरू कर दिया है।

विदेशों में रह रहे भारतीय विशेषज्ञों को भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास मे सहयोग मिल सके, इसके लिए निगम दो कार्यक्रम चलाती है। ये हैं - टोकटेन (प्रवासियों से ज्ञान का हस्तारण) और इनटिस्ट (विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में प्रवासी भारतीयों से सम्पर्क) इन कार्यक्रमों

---

2 *भारत, सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार 1996 पृष्ठ सख्या-157*

के तहत विदेशो मे रह रहे भारतीय विशेषज्ञो को थोडे समय के लिए भारत बुलाया जाता है।

उदारीकरण की नीति ने देश भर मे भले ही उत्साह जगाया हो, लेकिन उत्तर प्रदेश बिहार मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे बडे हिदीभाषी राज्यो मे इसका कोई खास असर नहीं दिखाई दिया। ये राज्य आपेक्षित विदेशी पूँजी निवेश आकर्षित करने मे असफल रहे। इसका मुख्य कारण इन राज्यो मे राजनैतिक उथल-पुथल है। महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यो की तुलना में यहॉ ढॉचागत सुविधाओ की भारी कमी भी इस नाकामी की एक प्रमुख वजह है।

आर्थिक उदारीकरण के बाद बाजार का तो पूरा स्वरूप ही बदल गया है पिछले दस वर्षों मे, उपभोक्ताओ की खरीदारी की मानसिकता मे तो और भी तेजी से बदलाव आया है। इस दौर मे मॉग के अनुरूप उत्पाद बाजार मे उतारने वाली कम्पनियॉ ही सफलता का स्वाद चख पाई हैं, जिन्होने इस प्रवृत्ति को नहीं समझा या जान-बूझकर इसे समझने की कोशिश नहीं की उनके पॉव उखड गए। पैसे की उपलब्धता बढने से आम उपभोक्ता की बाजार में पहुॅच बढी और साइकिल खरीदने मे कई बार सोच-विचार करने वाला निम्नवर्गीय उपभोक्ता मोपेड और स्कूटर मोटर साइकिल के विकल्प को आसान मानने लगा। भूमण्डलीयकरण से देशो के बीच मे और देशो के अदर अमीर और गरीब के बीच विश्व अर्थव्यवस्था का ध्रुवीकरण हो गया है। जिन आर्थिक सुधारो से अर्थव्यवस्था में ऊपरी समाकलन दिखाई पडा, उसे कभी भी साफ हो जाने का खतरा भूमण्डलीयकरण से पैदा हो गया है। जैसा कि 1920 के दशक 1930 के दशक मे मदी के बाद की राजनैतिक घटनाओ ने आर्थिक विघटन पैदा किया जिसका खामियाजा गरीब तबके को ही भुगतना पडा, वैसा ही फिर हो जाने की परिस्थितियॉ बन रही हैं। भूमण्डलीयकरण के कारण जो तेजी से उदारीकरण हुआ है, उससे पैदा हुई ऊर्जा ने कुछ खास आम समूहो को ही फायदा पहुॅचाया है, नतीजतन आमदनी में गैर बराबरी बढी है और उत्तर और दक्षिण दोनो के देशों में ऐसा हुआ है। इसके कारण उद्योग से ऊपर वित्त हो गया है, निवेशकों से ऊपर साहूकार बन बैठे हैं। नतीजतन रोजगार तेजी से घट रहे हैं और आमदनी की सुरक्षा भी घट रही है। राष्ट्रीय उत्पाद कुछ लोगों के हॉथ से चले जा रहे हैं, पूॅजीनिवेश ठहर गया है और मुनाफे बढ रहे हैं। कुछ अल्पसख्यकों की बढती आमदनी को कोई सामाजिक औचित्य नहीं है। मुनाफे पूँजी निवेश में नहीं लग रहे हैं, यह बडी समस्या पैदा हो गयी है। ऐसा कोई कानून नही, जिससे दक्षिण की कमाई अपने आप विकसित देशों के आय स्तर तक पहुॅच जाए, जिससे वृद्धि और विकास से गैर बराबरी में स्वत कमी आ जाए। पूर्वी एशिया में तेजी से बढती अर्थव्यवस्था वितरण की समस्या हल नहीं कर पाई है।

भूमण्डलीयकरण मे असीमितता बहुत है जिन क्षेत्रो मे विकासशील देशो को तुलानात्मक बढत मिली हुई है उनमे भेदभाव बदला जा रहा है। विकसित देश टैक्सटाइल्स और कृषि क्षेत्रो मे जहॉ विकासशील देशो की बढत है सरक्षणवादी नीतियॉ अपनाते है। माल के व्यापार का उदारीकरण अन्य क्षेत्रो के मुकाबले ज्यादा तेज हुआ है उत्तर के श्रम बाजार की समस्याओ को सुलझाने के लिए दक्षिण के सामान पर सरक्षणवादी नीति लगाई गई है।

भूमण्डलीयकरण के कारण जो अतिरिक्त आय विश्व में पैदा हो रही है वह धनी वर्ग के पास ही जा रही है और मध्यम वर्ग खोखला होता जा रहा है। सट्टेबाजी साथ-साथ मुनाफाखोरी और बेरोजगारी दुनिया के स्तर पर बढ रहे हैं। चिन्ता की बात यह भी है कि पश्चिम की हिसा की अपसस्कृति का भूमण्डलीयकरण पूरी दुनिया मे तेजी से हो रहा है।

इस समय पूरी दुनिया मे भूमण्डलीयकरण, निर्यात आदि की चिता हो रही है। लोग भूल रहे हैं कि अर्थव्यवस्था का हृदय देश के अन्दर होता है और समीपवर्ती क्षेत्र मे ही जो खेल होता है, वही ठीक होता है। निर्यात का भूत सवार हो जाने पर ऐसी गलाकाट प्रतिस्पर्धा शुरू होती है जो आत्मघाती सिद्ध होती है।

यह सही है कि उदारीकरण नीतियो के परिणाम स्वरूप विदेशी पूँजी निवेश मे बहुत अधिक वृद्धि हुई है तथा मदी के दल-दल मे फसे सयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी, जापान, स्पेन तथा ब्रिटेन के उद्योगपति तथा पूँजी निवेशक भारत मे पूँजी निवेश के लिए आतुर दिखाई पड रहे हैं, लेकिन ये लोग केवल उन्हीं क्षेत्रो मे निवेश करना चाहते हैं, जहॉ लाभ की मात्रा अधिक है या जहॉ भारतीय कम्पनियॉ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। स्वीकृत किये गये प्रस्तावों मे ऐसे बहुत से प्रस्ताव हैं, जिनकी स्थापना का इससे अधिक कोई और औचित्य नहीं हो सकता कि वे इन नीतियों के अन्तर्गत प्रदान की गई सुविधाओं की आड मे किए गए हैं। चुइगम तथा टॉफी, पोटेटो-चिप्स, फल तथा नारियल के पानी, हेस्ताशिल्प, बोतलबन्द मिनरल वाटर, सुगन्धियॉ, प्रसाधन सामग्री होटल तथा रेस्टोरेन्ट आदि से सम्बन्धित अनेक प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने की ऐसे समय कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, जबकि भारत की एक चौथाई से अधिक आबादी निर्धनता रेखा से नीचे का जीवन व्यतीत कर रही है। भारत को आज ऐसे औद्योगीकरण एव पूँजी निवेश की आवश्यकता है, जो उसकी अवस्थापना को मजबूत करे, रोजगार के नए अवसरों का सृजन करे तथा निर्धनता के स्तर को कम करें, उपभोक्ता वस्तुओं के विनिर्माण को बढाए जाने से तो उपभोक्ता सस्कृति को ही बढावा मिलेगा, जो कम से कम वर्तमान परिस्थितियों में तो लाभकारी नहीं है।

आयात शुल्कों मे की गई भारी कटौती व बाहर से टिकाउ इलेक्ट्रानिक्स सामान तथा अन्य वस्तुओ को लाने की छूट देने से भारत मे ऐसी अनेक वस्तुए लाई जाने लगी है, जिनका उत्पादन देश मे ही हो रहा है। ऐसा कर देने से अब घरेलू उत्पादको को आयातित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करनी पडेगी। निश्चित रूप से यह उपाय ऐसे नहीं है, जिससे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सके और देश की औद्योगिक प्रगति को गति प्रदान की जा सके। भारत विश्व के विकसित देशों के लिए एक बहुत बडा तथा आकर्षक बाजार है और विश्व की बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ यही चाहती हैं कि वे भारत के औद्योगिक एव आर्थिक विकास मे कोई सार्थक भूमिका का निर्वाह किए बिना अपनी वस्तुए और विशेष रूप से उपभोक्ता वस्तुए बेचने में सफल हो जाए। विदेशी पूँजी निवेश के नाम पर यदि इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा विदेशी उत्पादकों को सुविधाए प्रदान करके भारत में उपभोक्ता वस्तु उद्योग मे पैर जमाने का अवसर प्रदान किया जाता है तो इससे भारतीय उपभोक्ता वस्तु उद्योग चौपट हो सकता है, जो देश हित मे नहीं है। भारत के औषधि उद्योग को आशका है कि आयात की सुविधा बढ जाने तथा विदेशी पूँजी निवेश के विस्तार से कुछ ही वर्षों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ भारतीय कम्पनियो मे उत्पादन घटाकर अपने मूल देश मे तैयार की जाने वाली दवाएँ भारत में लाकर बिक्री करने लगेगी। इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में निर्मित उत्पादन क्षमता का उपयोग घटने लगेगा।

भारत सरकार उदारीकरण, की नीतियॉ विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव मे आकर लागू कर रही है और ये सस्थाए निश्चित रूप से सयुक्त राज्य अमरीका तथा जी-7 समूह के अन्य देशों के प्रत्यक्ष-परोक्ष दबाव में कार्य करने लगी है। भारत एव तृतीय विश्व के अन्य विकासशील देशो पर अपनी अर्थव्यवस्थाओ के लिए मुक्त व्यापार नीति अपनाए जाने के लिए जोर डाला जा रहा है ताकि इसका लाभ उठाकर विकसित देशों के उत्पादक इन देशों के बाजारों में अपने अति-उत्पादन का राशि पतन कर सके तथा अपने उद्योगो को मदी के दलदल से निकाल सकें। दूसरी ओर जापान और पश्चिम यूरोप के सभी देशो ने अपने उद्योगों को सरक्षण प्रदान करने के लिए अनेक कानून बना रखे हैं ऐसी परिस्थितियो मे उदारीकरण की नीतियों का प्रभाव घातक भी हो सकता है।

विगत वर्षों में आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात सवर्धन हेतु भारतीय उद्योगों को अनेक प्रकार के सरक्षणो, अनुदानों एव रियायतों का लाभ मिलता रहा है। दूसरे इन्हें किसी भी स्तर व पर विदेशी निर्माताओं से प्रतिस्पर्धा भी नहीं करनी पडी है। इन परिस्थितियों का ही यह परिणाम है कि भारतीय उद्योग सरक्षण तथा रियायतों की बैसाखियों पर चलने के आदी हो गए हैं। नवीन वातावरण में स्थिति यह है कि भारत के घरेलू उद्योग स्वयं तो सभी प्रकार की रियायतें प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन

दूसरी ओर ये विदेशी उत्पादकों, विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा नहीं करना चाहते। ये चाहते हैं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतियोगिता के लिए सक्षम बनने का मौका उन्हें दिया जाना चाहिए। इसके लिए कुछ वर्षों तक उन्हें नई नीतियों के तहत सरक्षण मिलना चाहिए। इतना ही नहीं, वे करों तथा शुल्कों में और अधिक रियायतें तथा सरकार से सब्सिडी मिलने की आशा करते हैं। नवीन उदारवादी नीतियों के तहत अभी तो निर्बाध रूपसे विदेशी पूँजी निवेश होता जा रहा है तथा भारी मात्रा मे विदेशी पूँजी भारत में लाए जाने की सभावनाए भी प्रबल हो गई है, लेकिन इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है कि जब इन निवेशों पर अर्जित लाभाश विदेशी मुद्रा के रूप मे देश से बाहर जाएगा तो भारत के अन्दर विदेशी मुद्रा के कोषो पर दबाव बढेगा तथा रूपये की स्थिति कमजोर होगी।

विश्व-स्तर पर जो आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं या हो रहे हैं, उनसे भारत भी अछूता तो नहीं रह सकता। सोवियत सघ का विघटन, जर्मनी का एकीकरण, इजरायल एव पी एल ओ तथा अन्य मध्य पूर्व देशों के बीच सुधरते सम्बन्ध, आर्थिक दृष्टि से यूरोप का एकीकरण, जापान तथा यूरोपीय देशो का सयुक्त राज्य अमरीका से छिडा अघोषित आर्थिक युद्ध तथा विकसित देशों में मदी का दौर आदि कुछ ऐसी घटनाए है जिनके परिप्रेक्ष्य मे भारत की आर्थिक नीतियों में उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना लाभकारी हो सकता है बशर्ते की इन नीतियों का कार्यान्वयन भारत की आन्तरिक परिस्थितियों, समस्याओं, ससाधनो की उपलब्धता तथा दोहन की सभावनाओं को ध्यान में रखकर किया जाए। ये नीतियॉ ऐसे समय मे प्रारम्भ की गई थी, जबकि स्वय भारत पर आर्थिक सकट के बादल छाए हुए थे। इन नीतियो के कुछ आशाजनक परिणाम दिखाई भी पडने लगे हैं तथा अर्थव्यवस्था पुन विकास पथ पर अग्रसर है, लेकिन नीति निर्माताओं को यह ध्यान में रखना होगा कि हर चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होती। इसलिए वे इन नीतियों का कार्यान्वयन भारतीय हितो को ध्यान मे रखकर ही करे।

पिछले कुछ वर्षो से स्वदेशी शब्द को तोड-मरोडकर अपने राजनीतिक व आर्थिक सुविधा के लिहाज से परिभाषित किया जा रहा है। धर्मनिरपेक्षता व साप्रदायिकता की तरह स्वदेशी भी राजनेताओ के लिए सत्ता की सौदागरी का औजार बन गया है। कोई शक नहीं कि कुछ समय के बाद उचित धर्मनिरपेक्षता की तर्ज पर उचित स्वदेशी का प्रादुर्भाव हो। स्वदेशी की अवधारणा सर्वप्रथम 1905 में आई, जब अग्रेजों द्वारा बगाल विभाजन के निर्णय के विरूद्ध सडकों पर जनसैलाब उमड़ पडा था। स्वतन्त्रता सघर्ष के दौरान महात्मा गॉधी तथा उनके पूर्व के राष्ट्रीय नेताओं ने स्वदेशी का ब्रिटिश

हुकूमत के खिलाफ एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया था। स्वदेशी से तात्पर्य था, अपने देश मे अपने लोगो द्वारा बनाए गए सामान को प्रोत्साहन देना तथा विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार करना। तब स्वदेशी राष्ट्रीय गौरव व आत्मनिर्भरता का प्रतीक थी और इसके प्रति जनता मे अगाध श्रद्धा थी। आजादी से पूर्व स्वदेशी मुख्यत एक राजनीतिक शब्द था, जिसका अर्थशास्त्र से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। आज की उदारीकृत अर्थव्यवस्था मे इसे उसी रूप मे लागू नहीं किया जा सकता। आज दुनिया एक गॉव मे तब्दील होती जा रही है, जिसमे कोई भी देश अपनी आवश्यकताओ के लिहाज से पूर्णत स्वतन्त्र नहीं रह सकता।

भारत का निर्माण निश्चय ही भारतीयों के द्वारा होना चाहिए, लेकिन देश के विपुल प्राकृतिक व मानवीय ससाधन के त्वरित दोहन व उपयोग के लिए विदेशी पूँजी व आधुनिक तकनीक की जरूरत है। विख्यात अर्थशास्त्री अर्जुन सेन गुप्ता के अनुसार, आठ प्रतिशत की विकास दर हेतु लगभग दस अरब डालर प्रतिवर्ष की दर से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की आवश्यकता है। उनका मानना है कि आगामी पॉच वर्षों में 'सभी को शिक्षा' के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करीब 8000 करोड रूपये प्रतिवर्ष चाहिए।

यदि हम बचत दर 30 प्रतिशत तक बढा लें और कर ढॉंचे को सशक्त करने मे सफल हो जाए, तो भी कोई विदेशी पूँजी व तकनीक के महत्व से इनकार नहीं कर सकता। दुर्भाग्य से कुछ लोगो मे विदेशी पूँजी के प्रति सदेह बरकरार है। वास्तव मे विदेशी निवेश के प्रति सदैव अनुचित धारणा रही है। कुछ वर्ष पूर्व तक विदेशी निवेश को सारी बीमारियो की दवा कहा जाता था, परन्तु आज खासकर दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के हाल के मुद्रा सकट के बाद इसे सारे मर्जों की जड समझा जाने लगा है। सच्चाई यह है कि कोई भी निवेश मूलत अच्छा या बुरा नहीं होता। यह हम पर निर्भर करता है कि हम इसका इस्तेमाल कैसे करते हैं। यदि विदेशी पूँजी को विवेक से प्रयुक्त करें, तो सुखद परिणाम मिलेगे, लेकिन यदि इसका हर दृष्टिहीन निवेश या दुरूपयोग किया जाए तो नतीजे हानिकारक होंगे। मलेशिया, दक्षिण कोरिया आदि देशो के साथ यही हुआ। अप्रत्यक्ष निवेश में भी कोई खतरा नहीं है, जिसे मैक्सिको की अर्थव्यवस्था के रातोरात पतन का कारण माना जाता है। यदि केन्द्रीय बैक के पास पर्याप्त व सतुलित विदेशी मुद्रा है, तो अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश कई मायनों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से ज्यादा अच्छा है। यह निर्मम सत्य है कि हमारी अर्थव्यवस्था मुश्किल में है, किन्तु इसके लिए सरकार की फिजूलखर्ची, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार, दूर दृष्टिहीन आर्थिक नीतियाँ आदि जिम्मेदार हैं, न कि अल्प मात्रा में आई विदेशी पूँजी। सर्वेक्षण करने से प्रतीत लगता है कि सरकार प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में ही विदेशी पूँजी चाहती है तथा गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में उसका इरादा

इसे हतोत्साहित करना है। मगर जो सरकार तमाम अतर्विरोधों से ग्रस्त है और जिसमे हर शख्स अपनी जरूरतो के मुताविक स्वदेशी के अर्थ निकालने के लिए आजाद है, वहॉ यह देखना होगा कि स्वदेशी का क्रियान्वयन किस रूप में होता है। भारतीय जनता पार्टी व मित्र दलो के राष्ट्रीय एजेडे में प्राथमिकता व गैर प्राथमिकता वाले क्षेत्रो के बीच कोई विभाजन रेखा नहीं है। पिछली सरकारो की कोशिशो के बावजूद विदेशी निवेशको की प्राथमिकता सूची में भारत कहीं नही है। सिर्फ चीन में पिछले साल करीब 62 अरब डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ। उसके मुकाबले भारत मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मात्र पॉच अरब डालर हुआ था। उसमे दो राय नहीं कि हमें ढॉचागत व सामाजिक विकास, नई तकनीक, उत्तम गुणवत्ता का उत्पादन और निर्यात क्षमता में वृद्धि के लिए बडी मात्रा में धन चाहिए। पर सरकार के पास पर्याप्त मौद्रिक कोष नहीं है और हमारे उद्योगपति इन क्षेत्रो में या तो निवेश करना नहीं चाहते या वे निवेश करने की स्थिति में नहीं है। ऐसे मे यह उम्मीद करना निरर्थक है कि कोई विदेशी हमारी शर्तों पर हमारे लिए धर्मशालाए खोलेगा। उद्योगपति चाहे देशी हो या विदेशी, विनियोग किसी उद्योग में तभी करता है, जब उसे मुनाफा नजर आए। फिर मूलभूत ढॉचे के विकास में निवेश करना कोई अधिक लाभ का सौदा भी नहीं है,जब तक सरकार कुछ रियायतें न दे। इस प्रकार के निवेश मे धन की वापसी देर से होती है और तब तक परिस्थितियॉ प्रतिकूल होने का भय रहता है।

दूर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से देश में राजनीतिक अस्थिरता का माहौल बना हुआ है और आर्थिक नीति पर राजनीतिज्ञों में सहमति नहीं बन पाई है। हम लाख कहें कि हमारे पास फलता-फूलता मध्यम वर्ग है, बडा बाजार है, सस्ता श्रम व गतिशील लोकतात्रिक व्यवस्था है, किन्तु वास्तविकता यह है कि हम आज भी अपने शर्तों व जरूरतों के अनुसार विदेशी पूॅजी आकृष्ट करने की स्थिति मे नहीं है। राष्ट्रीय एजेडा इस बात पर मौन है कि सरकार किन नियमों के तहत् विदेशी निवेशको से बात करेगी, साथ ही जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ पहले से ही उपभोक्ता वस्तुओ व गैर प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे कार्यरत है, उनका क्या होगा। हालाकि वित्त मत्री ने आश्वस्त किया है कि उनकी यथास्थिति बनी रहेगी। स्वदेशी को लेकर बेवजह भ्रमित करने से बेहतर है कि हम ऐसी स्थितिया बनाए, जिनमें विदेशी निवेशक हमारी आवश्यकतानुसार निवेश करने के लिए आगे आए। इनके लिए एक पारदर्शी व ईमानदार व्यवस्था विकसित करनी होगी, जिसमें निवेशकों के प्रस्तावों पर शीघ्र निर्णय हो। इसके लिए सरकार को नये नियम एव अच्छे वातावरण स्थापित करना होगा, जिससे विकास कार्यों को गति मिलें। इसके लिए राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर भ्रष्टाचार से भी निपटना बहुत जरूरी है। समय की माग है कि हम न्यायोचित व दक्ष कानून व्यवस्था, नौकरशाही व न्यायिक प्रणाली में सुधार, सामाजिक समरसता तथा राजनीतिक स्थिरता की दिशा में कठोर निर्णय

लें।

आर्थिक नीतियों के नए सूत्रधार यशवत सिन्हा का स्वदेशी सिद्धान्त है, घरेलू उद्योगो के मध्य प्रतिस्पर्धा व आतरिक उदारीकरण, लेकिन यदि इससे सरक्षणवाद को बल मिलता है जैसा कि आशकाए व्यक्त की जा रही हे, तो यह बडी मेहनत से शुरू किये गये आर्थिक सुधारों से पीछे हटना होगा। यदि भारतीय उद्योग, अपनी धरती पर विदेशी कम्पनियों की चुनौती स्वीकार नहीं कर सकते, तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की गलाकाट प्रतियोगिता में वे कैसे टिक पायेगे? फिर स्वदेशी की आड में भारतीय उपभोक्ता को सर्वोत्तम गुणवत्ता व उचित मूल्य से कब तक वचित रखा जायेगा। बहुराष्ट्रीय निगमो से भयभीत हुए बिना हमें घरेलू उद्योगों को मजबूत बनाना होगा। उनका सुरक्षा कवच तोडकर उन्हें खुली प्रतियोगिता के लिए प्रोत्साहित करना है।

आज के दौर में स्वदेशी का अभिप्राय बहुराष्ट्रीय निगमों से समान व सम्मानीय समझौते की कला सीखना है, अपनी सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों में विदेशी पूँजी, तकनीक व विचारों को आमन्त्रित कर उनका जनकल्याण के लिए सदुपयोग करना है। सक्षेप में विश्व के जिस किसी भी देश मे, जहॉ कहीं भी जो कुछ हमारे फायदे का है, उसे पहचानना, उसे हमारे देश में आने देना तथा उसके मार्ग मे अवरोध खडे न करना ही इस समय स्वदेशी है।

भारत को मिली विदेशी सहायता की मात्रा बहुत अधिक है। इससे देश के पूँजी-निर्माण में बडा योगदान प्राप्त हुआ है और घरेलू बचत के साथ जुडकर इससे निवेश दर को बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। दूसरा तथ्य जो सबसे महत्वपूर्ण है वह यह है कि विदेशी सहायता का बहुत बडा भाग आधारिक सरचना के निर्माण, औद्योगिक विकास और मूलभूत धातु-उद्योगों के विकास मे प्रयुक्त किया गया है। इसके अलावा कृषि विकास और खाद्यान्न-आयात के लिए भारी मात्रा मे विदेशी सहायता का उपयोग किया गया है।

दु ख की बात यह है कि वर्तमान मे प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता का एक बडा भाग ऋणों के भुगतान में व्यय हो जाता है। विदेशी सहायता का अधिकाश भाग निबद्ध ऋण के रूप में है, इससे ऋण परिशोधन का भार बढने के साथ ही विकास कार्य भी अधिक मॅहगा हो गया है। चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता लागू कर दिये जाने से अब ऋण एव ब्याज के पुनर्भुगतान हेतु विदेशी विनिमय सरकार को भी खुले बाजार की दरों पर ही प्राप्त करना होगा, जिसमें रूपये का विनिमय दर कमजोर होने पर भारी कठिनाई सामने आ सकती है।

आधारभूत उद्योगों की स्थापना, पेट्रोलियम पदार्थो के उत्पादन परिवहन एव सचार शक्ति के साधनों आदि पर किये जाने वाले व्यय से आर्थिक विकास मे अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्राप्त हो रही है। इन क्रियाओं से आर्थिक गतिशीलता उत्पन्न हुई है और देश में पूँजी निर्माण तथा निवेश दर में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। विदेशी सहायता का कृषि क्षेत्र में उपयोग कर हम कृषि उत्पादन बढाने मे भी सक्षम हुए हैं और खाद्यान्नों के आयात पर व्यय की जाने वाले बडी राशि की बचत कर सके हैं। इस प्रकार विदेशी सहायता ने भारत के आर्थिक और औद्योगिक विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसमे बहुत से देशों और विश्व सस्थाओं का योगदान रहा है। यहॉ यह उल्लेख करना समीचीन जान पडता है कि विदेशी सहायता सर्वथा श्रेयष्कर नहीं होती, इसके हानिकारक पहलू भी है, जैसे राजनीतिक दबाव, सहायता का अनिश्चितता, सहायता का प्रतिबन्धित प्रयोग, पहल शक्ति का अवमदन और बढता हुआ ऋण-भार आदि। ऐसी स्थिति में भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह विदेशी सहायता पर निर्भरता बनाए रखने के बजाए अपने आन्तरिक साधनों से आर्थिक विकास की गति को बढाए और उन्हीं योजनाओं पर ऋण प्राप्त करने की चेष्टा करे, जिन्हें भारत स्वय अपने विकास के लिए आवश्यक समझता हो। ऋणों का भुगतान ब्याज और मूलधन के साथ करना होता है। इससे भी विकास कार्यों की लागत बढ जाती है और शुद्ध लाभ में कमी आती है।

अत ऋणों परनिर्भरता की विवशता को कम कर आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रयास ही अधिक उचित होगा। विदेशी पूँजी निवेश के मामले में भारत का दृष्टिकोण समय के साथ-साथ बदलता रहा है। 1960 के दशक तक फूॅक-फूॅक कर कदम रखने की नीति अपनाई गई। अगले दशक में चयनात्मक और प्रतिबन्धात्मक नीति के आधार पर विदेशी पूँजी निवेश हेतु कुछ द्वार खोले गये, लेकिन 1980 के दशक मे विदेशी पूँजी केमहत्व को ध्यान में रखकर कठोर नियमों को सरल और शिथिल किया गया ताकि सन्देह का वातावरण दूर हो सके और विदेशी निवेशक आकार्षित हो सके। वर्तमान नीति अतीत से बिल्कुल भिन्न है। अब उदारीकरण और पारदर्शिता के सहारे प्रत्यक्ष निवेश सहित सभी प्रकार की विदेशी पूँजी के अधिकाधिक अन्तर्वाह हेतु सक्रिय प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन हमें स्मरण रखना होगा कि सिर्फ उदारीकरण की नीति ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकार्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। बाजार का आकार, आधारिक सरचना का विकास, लागत के तत्व, सामाजिक शक्ति एव सुरक्षा, राजनीतिक स्थायित्व, स्वच्छ प्रशासन तथा अन्य अनुकूलताए भी विदेशी पूँजी के अबाध अतर्वाह के लिए आवश्यक है। भारत की विदेशी निवेश नीति अन्य देशों से कम उदार नहीं है किन्तु अन्य घटकों की असन्तोषजनक दशाओं के कारण हम दूसरे विकासशील देशों के मुकाबले पिछड रहे हैं। भारत में आर्थिक सुधारों तथा उदारीकरण से अभी तक जितना भी वास्तविक प्रत्यक्ष निवेश हुआ है,

उसमे से अधिकाश निवेश उपभोक्ता वस्तुओ के मामले में हुआ है, जिसने देश मे स्थापित उद्योगो को ही प्रतिस्थापित किया है। अब तक का अनुभव तो यही बता रहा है कि जो भी विदेशी कम्पनियॉ यहॉ आ रही है वे न तो आधुनिक उत्पादन प्रौद्योगिकी लाई है और न ही उत्पादन के नवीन क्षेत्रों में प्रवेश करके रोजगार के अतिरिक्त' अवसर ही सृजित कर सकी है। कतिपय विदेशी कम्पनियों की भी यह नीति एव योजना है कि वे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के साथ-साथ परियोजना के लिए शेष ससाधन भारतीय पूॅजी बाजार से जुटाएगी।ऐसा यदि आधारिक सरचना वाले क्षेत्र में किया जाता है तो वह देश के लिए लाभदायक हो सकता है और यदि इस प्रकार की पूॅजी विदेशी शराब, चॉकलेट, सिनेमा निर्माण या कासीनों निर्माण आदि के लिए जुटाई जाती है तो यह देश के लिए घातक ही है क्योकि इससे वह दुर्लभ पूॅजी जो प्राथमिकता क्षेत्रों मे जा सकती थी, गैर प्राथमिकता क्षेत्रों में खप जाएगी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पचास वर्षों के भीतर भारत के आर्थिक ताने-बाने में व्यापक तौर पर परिवर्तन आ गया है। नेहरूवादी समाजवादी परिकल्पना तथा गॉधीवादी ग्राम स्वराज की परिकल्पना का स्थान मनमोहनवादी बाजारी अर्थव्यवस्था तथा चिदम्बरवादी बिना भेदभाव वाली पूॅजीवादी अर्थव्यवस्था की परिकल्पना ने लिया है। इसके तहत भारत में काफी बडी मात्रा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आकर्षित करने के लिए विदेशी निवेशकों को हर प्रकार की सुविधाए प्रदान की जा रही हैं। सैद्धान्तिक रूप से यही कहा जा रहा है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को केवल उच्च प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो में अनुमति दी जाएगी, लेकिन विगत वर्षों में जिस प्रकार से केन्टकी फ्रायड चिकन, फ्रूट जूस, काफी, चाय, टॉफी तथा चुइगम, सिनेमा कॉम्पलेक्स (वार्नर ब्रदर्स), टेलीविजन सॉफ्टवेयर तथा मनोरजन उद्योग का विकास (यूनाइटेड इण्टरनेशनल होल्डिग्स), करो का विनिर्माण (दायबू,बीएम डब्ल्यू, मर्सिडीज, फिएट,) सिगरेट, स्नैकस तथा पेय (फिलिप मोरिस) आदि भारत के बाजार में प्रवेश कर रहे है। उससे तो यह प्रतीत होता है कि उच्च प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की स्वीकृति देने का सरकार का दावा खोखला है। विदेशी कम्पनियों की रूचि अधिक जोखिम वाले उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रो की ओर कम तथा अधिक प्रतिफल तथा लम्बे चौडे बाजार वाले उपभोक्ता वस्तुओ के क्षेत्रो मे अधिक है। सरकार के राजनैतिक तथा नौकरशाही नीतिकारों को भली-भॉंति समक्ष लेना चाहिए कि यह स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कहीं से भी हितकर नहीं है।

सत्तर के दशक तक भारत सरकार द्वारा बहुराष्ट्रीय निगमों को भारत में परिचालन की अनुमति प्रदान किये जाने की आलोचना की जाती थी, क्योंकि निगम अपनी भारतीय अनुषगियों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा के सदेहास्पद मूल्य के नाम पर किए गए 'प्रधान कार्यालय खर्च' जैसी मदों

के अन्तर्गत अपने मूल देशों को भारी राशिया प्रेषित करते थे। जब हमारा देश विदेशी मुद्रा के सकट से जूझ रहा था तो लगभग 8000 मिलियन रूपये वार्षिक के प्रेषणो ने समस्या खडी कर दी थी। आज इन प्रेषणो की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं है क्योकि आज व्यावसायिक विशेषज्ञता मे भारत की स्थिति काफी अच्छी है। आज बहुराष्ट्रीय निगमों को हमारे देश के लाभाश एव लाभ प्रत्यावर्तन और अन्य लेन दोनों से सम्बन्धित नियमों का अनुपालन करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं होना चाहिए। क्योकि भारत सरकार विभिन्न अवधियो वाली कर राहते और रियायती विद्युत दरों जैसी सुविधाएँ प्रदान कर रही है। भारतीय उद्योग को विश्वस्तरीय व्यवसायी के रूप मे उभरना भी बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए उत्साहवर्धक है।

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अपनी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में सुधार करने के लिए भारत को अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रो में नि सन्देह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की आवश्यकता है, लेकिन इसे बहुराष्ट्रीय निगमों के षडयन्त्र का शिकार नहीं बनना चाहिए। बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ व्यवहार करते समय हमे एक से अधिक कारणों से सतर्कता बरतनी चाहिए। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ जब तक उचित एव निष्कपट व्यवहारों से लाभ कमाती है तब तक उसमें कुछ भी गलत नहीं है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लोकतान्त्रिक कार्य विधि अपनानी चाहिए। उन्हें अपने निर्णय लेने के अधिकारों को अपने विभिन्न देशो की सत्ताओ में प्रत्यायोजित कर देना चाहिए।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को इन सत्ताओं और उद्यमों को एक साथ मिलकर उनके प्रबन्धन के सभी स्तरो पर स्थानीय व्यक्तियो के रोजगार की प्राथमिकता देनी होगी। उनके द्वारा पोषक देशों (जैसे भारत) के निर्यात सम्बर्द्धन और विविधीकरण में भी योगदान दिया जाना आवश्यक है।

पोषक देशो को यह ध्यान रखना चाहिए कि बहुराष्ट्रीय निगमों का परिचालन उनके हितो के विरूद्ध न हो और उनकी दिशा दोनो पर ही नियन्त्रण रखना चाहिए। भारत मे बहुराष्ट्रीय निगमो और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का प्रवेश कतिपय वास्तविकताओं पर आधारित होना चाहिए। भारत की दृष्टि से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश निर्यात उत्पादन के लिए भी किया जाना चाहिए। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के साथ नवीनतम प्रौद्योगिकी भी प्रयुक्त की जानी चाहिए।

बहुराष्ट्रीय निगमों को अतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वविनियमन की शर्तों को सोंचना चाहिए। पोषक देशो मे अपने कार्यकलापों के परिवेशगत विस्तार का ध्यान रखना चाहिए। अत. भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुराष्ट्रीय निगमों को देश के कानूनो का सख्ती से अनुपालन करना चाहिए क्योंकि उदारीकरण की

नीति बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को कोई उच्च्य सुविधायुक्त विशेषाधिकार प्रदान नहीं करती है। बहुराष्ट्रीय निगम देश के कानूनो की जानबूझकर अवज्ञा नहीं कर सकता क्योकि भारत सरकार एक अति जागरूक ससद एव राज्य विधान मडल के प्रति जबाबदेह है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियो की मुख्य विशेषता यह है कि वे कम्पनियॉ कोई भी निर्णय विश्वसन्दर्भ मे लेती है। बहुराष्ट्रीय निगम विश्व के सभी महादेशो मे है तथा ये कम्पनियॉ प्रत्येक आर्थिक क्रियाकलापो से जुडी रहती है। इन कम्पनियो के बारे मे सम्मिलित ऑकडा उपलब्ध नहीं है, परन्तु एक अध्ययन के अनुसार अभी विश्व मे 100 ऐसी निगमे है जो प्रत्येक वर्ष करीब 35 मिलियन डालर का उत्पादन करती है। इनमे से सर्वाधिक निगमे अमेरिका की है। एक पत्रिका ने 50 बडे अमेरिकी निगमो के बारे में विवरण प्रस्तुत किया है। इन निगमो का 40 प्रतिशत राजस्व चाय औषधि, कास्मेटिस्क, खाद्य उत्पाद, तेल खनन, गाडियॉ रसायन तथा खनिज के क्षेत्र से प्राप्त होता है।

बहुराष्ट्रीय निगमे एकाधिकार स्थापित करने के लिए व्यवसाय प्रारम्भ करने के समय अपनी वस्तुओ को लागत से कम मूल्य पर भी बेच देती हैं। जिससे घरेलू वस्तुओ की बाजार में माग कम हो जाती है तथा वे विदेशी वस्तुओ की प्रतिस्पर्धा से व्यवसाय से बाहर हो जाती है। जिससे घरेलू उद्योग नष्ट होने की स्थिति मे आ जाते हैं। फिर यही बहुराष्ट्रीय निगमे कुछ वर्षो के बाद अत्यधिक लाभ कमाने मे सफल हो जाती है।

बहुराष्ट्रीय निगमो के बारे मे जो आम धारणा बन गई है कि ये कम्पनियॉ सिर्फ शोषण करती है ऐसा पूर्णत सही नहीं है, क्योंकि विकास के क्षेत्र मे भी यह महत्वपूर्ण योगदान करती है। सिगापुर, हागकाग ताइवान तथा कनाडा मे बहुराष्ट्रीय निगमो के प्रवेश ने इन देशों की सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे बढोत्तरी कर दी है, परन्तु ये कार्य बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने हितों को ध्यान मे रखते हुए किया है, क्योकि अमेरिका के घरेलू बाजार में इन चीजों की बहुत माग है। भारत जैसे विकासशील देशों के सामने अब यह समस्या है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश से उत्पन्न होने वाले बुरे प्रभावों पर किस प्रकार नियन्त्रण पाया जाए। अन्य देशी कम्पनियों को भी इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अनुसरण करना चाहिए तथा उनके क्रियाकलापो और उन्नत प्रौद्योगिकी से सीख लेनी चाहिए। जिन देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अपनी कम्पनियॉ स्थापित करती हैं, उन देशों की सरकारों को श्रमिकों को अधिक मजदूरी देने हेतु प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। सभी सयुक्त सस्थानों में विदेशी कम्पनियों के साथ विशेष अनुबन्ध होना चाहिए। इसी के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से अधिक शुल्क वसूल करना चाहिए,

जिससे कि पूरे देश के लोग लाभान्वित हो सके सिर्फ कम्पनी के कर्मचारी ही नहीं। साथ ही अधिक वसूल किए गए राजस्व का उपयोग आम लोगों की सुविधाओ के लिए करना चाहिए।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियो पर यह शर्त भी लगा देनी चाहिए कि वे अपनी कम्पनियॉ पिछडे इलाको मे भी स्थापित करे, जिससे कि क्षेत्रीय असतुल कम हो सके। चूँकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के लिए अतर्राष्ट्रीय स्तर पर आचार सहिता निर्धारित नहीं की गई है। इस कारण से सम्बन्धित देशों को इसके लिए आचार सहिता निर्धारित कर देनी चाहिए तथा समय-समय पर इन कम्पनियो के कार्य कलापो का अवलोकन भी करते रहना चाहिए।

सुझाव

वर्तमान समय विश्व व्यापार सगठन का समय है। इससे अलग रह करके विश्व अर्थव्यवस्था मे अपने को स्थापित करना उतना ही कठिन है, जितना कि मानव जीवन का बिना आक्सीजन के। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि विदेशी कम्पनियो का भारत मे प्रवेश वर्जित कर किसी भी अर्थव्यवस्था को आगे बढाना सम्भव नहीं हो सकता, परन्तु हमे इनके द्वारा किये जाने वाले क्रिया कलापो के परिणामस्वरूप उन हानिकारक परिणामो पर विशेष ध्यान देना होगा, जिससे हमारी अर्थव्यवस्था का सुचारू रूप से सचालन हो सके और इनके हानिकारक प्रभावो से बचा जा सके हमने विदेशी कम्पनियो के भारत मे प्रवेश के परिणामस्वरूप पडने वाले प्रभावो के प्रतिसुझावों को निम्न दो भागो मे बॉटकर विश्लेषण किया जो इस प्रकार है -

विदेशी कम्पनियो के आगमन के फलस्वरूप भारत को प्रभावित करने वाले सकारात्मक सुझाव :

वर्तमान समय में जो विश्व व्यापार सगठन की सदस्यता ग्रहण किये हुए है, उन अर्थव्यवस्थाओं मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी सहयोग को प्राप्त करने में कम कठिनाइयों का सामना करना पडता है। विश्व व्यापार सगठन का प्रथम उद्देश्य यही है कि विभिन्न देश अपने यहॉ मुक्त व्यापार नीति अपनाये और बिना भेदभाव के विदेशी पूँजी का आवागमन सुनिश्चित करें। यदि हम इस व्यवस्था का अनुसरण करते हैं। तो नि सकोच रूप से विश्व समुदाय द्वारा विभिन्न प्रकार के सहयोग समय-समय पर कठिनाइयों में प्राप्त करना सभव होगा।

विदेशी कम्पनियों के आगमन के फलस्वरूप विदेशी तकनीक व प्रौद्योगिकी का प्रवेश सुनिश्चित

है जिसके परिणामस्वरूप विशेषकर भारतीय उद्योग जगत मे तकनीकी जानकारी उच्च होने की सभावनाए बढ जाती हैं जिसके कारण उत्पादक गुणवत्ता मे सुधार होने की तथा तकनीकी रूप से मशीनो का उपयोग बढने की प्रबल सभावनाए भी विद्यमान है जिनके द्वारा निर्मित वस्तुए उच्च गुणवत्ता की होगी तथा विदेशी तकनीक व प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण सरलतापूर्वक सम्पन्न हो सकेगा, जिसके परिणाम स्वरूप यह सभावना प्रबल होती है कि भारतीय उद्योगो का विकास अत्यधिक तीव्र गति से होगा।

विदेशी कम्पनियो के आगमन से भारतीय उद्योगो को प्रतिस्पर्धात्मक बनाने की क्षमता विकसित करनी होगी, यदि प्रतिस्पर्धा में उन्हे भविष्य मे टिके रहना है तो अपने उत्पाद की गुणवत्ता बनाने तथा उचित मूल्य निश्चित करना होगा। यदि प्रतिस्पर्धा मे वे सफल हो गये तो हम केवल भारत मे ही नहीं अपितु विदेशो मे भी अपनी उत्पाद को विश्व बाजार मे बेच सकते है। इससे भारतीय उद्योग भविष्य मे अत्यधिक बेहतर स्थिति मे होगा। जिससे हमारे उद्योगो की क्षमता बढेगी और हम विदेशो मे अत्यधिक पूँजी निवेश करके वहॉ से लार्भाजन के रूप मे विदेशी पूँजी को स्वदेश मे लाने के प्रति सक्षम होगे। भारतीय उत्पादो का प्रतिस्पर्धात्मक युद्ध होना स्वाभाविक रूप मे स्पष्टत दिखाई दे रहा है। यदि अर्थशास्त्र के प्रतिस्पर्धात्मक सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर, इस प्रतिस्पर्धा का विश्लेषण करे तो हम इस स्तर पर पहॅुचते है कि भारतीय उद्योगो को अपना उत्पाद उच्च गुणवत्ता युक्त एव सस्ते दर पर वस्तुए उपलब्ध करानी होगी।

विदेशी कम्पनियों के आगमन के फलस्वरूप वहॉ का नैतिक एव सामाजिक ढॉचे का स्वरूप किसी न किसी रूप में हमारे देश को प्रभावित करता हुआ दिखाई पड रहा है। इसमे कुछ अच्छी बातें जो विद्यमान है हमारे देश के लिए लाभप्रद हो सकती है। जैसे जापान की सामूहिक उत्पाद ढॉचा यदि जापानियो के द्वारा अपने यहॉ वस्तुओं का उत्पादन प्रत्येक घरों में होना सभव हुआ है तो हमारे यहॉ क्यो नही हो सकता? इसी प्रकार इन देशों की उच्च नैतिकता हमारे यहॅाँ आना सभव है। यदि प्रत्येक भारतीय को यह मालूम हो जाय कि जापान के ट्रेन से यात्रा करने वाला व्यक्ति अपने पास सुई तागा रखता है। ट्रेन की बर्थ की सीट यदि फटी हुई है तोउसे वह स्वय सिल देता है। तो यहॉ के लोग भी इस पद्धति को अपना सकते है। यह उनकी नैतिक जिम्मेदारी का अहसास कराता है। इससे राष्ट्रीय सम्पत्ति का होने वाली अपार क्षति में कमी आ सकती है तथा यह प्रक्रिया अपनाने से भी देश को लाभ

मिल सकता है। इसी प्रकार यहॉ घटने वाले अपराध जगत मे भी कमी आ सकती है। क्योकि अपराध जगत के जड मे जाकर यदि झाके तो उसमे आर्थिक त्रस्तता मूल कारण है। विदेशी कम्पनियो के आगमन के परिणामस्वरूप यहॉ के लोगो का आर्थिक विकास भी सम्भव होगा जिससे उनके नैतिक एव सामाजिक मूल्यो मे वृद्धि की सभावना भी बनती है और लोग अपराध जगत की ओर आकर्षित होने से रूक सकते है। विदेशी कम्पनियो के आगमन के परिणा मस्वरूप, भारत की भयकर रूप धारण करती बेरोजगारी की स्थिति मे सुधार होने की सभावनाए दिखाई पडती है। विदेशो से आने वाली बहुराष्ट्रीय निगम यहॉ के अनेक क्षेत्रो मे विभिन्न प्रकार के उद्योगो को स्थापित करके उनको विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करती है जिससे यहॉ के बेरोजगारो को आशा की किरण दिखाई पड रही है। यह सत्यता के नजदीक ही कहीं जा सकती है कि यदि उद्योग-धन्धो का विकास किसी क्षेत्र मे हुआ है तो इससे पूरे परिक्षेत्र मे रोजगार की सभबनाए बढी है और तमाम प्रकार के अन्य परिस्थितियॉ भी पैदा हो जाती है, जिससे बेरोजगारी कम होती है जैसे - बाजार व्यवस्था का विकसित होना। प्राय जहॉ पर औद्योगिक विकास हुआ है, वहॉ जनसमुदाय बढा है और जनसमुदाय के बढने से वहॉ पर व्यवस्था स्थापित हुआ है, जहॉ पर लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुए खरीद सकते है या अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकते है। प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति मे जब भारत अपने उद्योग-धन्धों का विकास कर लेगा तो इससे भारतीय बेरोजगारी को कम करने मे दोहरा लाभ हो सकता है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान मे रखे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बेरोजगारी को यदि दूर करना है तो उद्योग-धन्धो का विकास एक ब्रम्हास्त्र का स्वरूप है और इसके द्वारा बेरोजगारी को दूर करने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की जा सकती है जो विदेशी कम्पनियों के आगमन के द्वारा सम्भव होती प्रतीत हो रही है। जो भारत के लिए कुछ अच्छे परिणाम दे ऐसा सम्भव है। भारत अपने प्राकृतिक ससाधानो के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है। यदि हम अपने प्राकृतिक ससाधनों का सदुपयोग कर सकें तो विश्व जगत में अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ करने मे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं करेंगे। विदेशी कम्पनियों के आगमन के परिणामस्वरूप हम उच्च्य तकनीक के द्वारा अपने प्राकृतिक ससाधनों का उपयोग कर अपने को विकसित कर सकते हैं। अभी तक हम अपने प्राकृतिक ससाधनों से कच्चे माल के रूप मे वस्तुओं को विदेशो को निर्यात करते आ रहे है परन्तु विदेशी कम्पनियों के आगमन से यह सभव होता दिखाई दे रहा है कि हम अपने प्राकृतिक वस्तुओं को कच्चे माल के रूप में निर्यात न करके, इसका उपयोग परिपक्व रूप में वस्तुओं का निर्माण कर निर्यात करें तथा अपनी आवश्यकताओं

की पूर्ति करे।

विदेशी कम्पनियो के आगमन के फलस्वरूप हमारा विदेशी निर्यात बढ जाने की सभावनाए विद्यमान है क्योकि विदेशी कम्पनियो के द्वारा विदेशी तकनीक से निर्मित माल हमारे यहॉ के प्राकृतिक कच्चे माल से उत्पादित वसतुए विश्व बाजार मे उच्च गुणवत्ता की होने की सभावनाए प्रबल होती है, जिससे विदेशी निर्यात अधिकतम हो सकता है यदि ऐसा सभव हुआ तो लाभ का एक हिस्सा जो कर के रूप मे हमे प्राप्त होगा वह हमारी अर्थव्यवस्था को सुदृढता प्रदान करेगा जिससे हमारी अर्थव्यवस्था मे भुगतान सतुलन धनात्मक होने का मार्ग प्रशस्त होगा।

भारत को विदेशी सहायता विशेष परियोजनाओ को न लेकर सम्पूर्ण नियोजन के लिए लेनी चाहिए ताकि हम उस सहायता को किसी भी विकास कार्यक्रम में प्रयुक्त करने के लिए स्वतन्त्र हो। इसी प्रकार विदेशी सहायता को विशेष शर्तों या दबाव के साथ स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए अर्थात यह सहायता बन्धित न होकर अबन्धित होनी चाहिए। विदेशी सहायता को अल्पकालीन न होकर दीर्घकालीन होना चाहिए ताकि अनिश्चितता की स्थिति को दूर किया जा सके। तकनीकी सहायता का प्रयोग देश में तकनीकी सस्थानो के विकास में भी किया जाना चाहिए। यदि विदेशी सहायता का प्रयोग भारत मे उत्पादक और शीघ्र फल देने वाली योजनाओ के लिए किया जाय तो उसके भार को न्यूनतम किया जा सकता है। यह सुझाव भी महत्वपूर्ण है कि भारत को जहॉ तक सम्भव हो अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ से ऋण लेना चाहिए। देशों से ऋण लेते समय तटस्थता की नीति का पालन करना चाहिए। विकासशील देशो में यदि ऋणभार अधिक हो जाय तो उसे राहत प्रदान करने के कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए। उसके ऋणभार के एक भाग को माफ किया जाना आवश्यक है। सरक्षणवाद से मुक्ति के लिए विकसित देशो विकासशील देशो के निर्यातों पर लगे प्रतिबन्धों को एक बड़ी सीमा तक तत्काल समाप्त कर देना चाहिए ताकि ये राष्ट्र निर्यात वृद्धि के माध्यम से विकास वृद्धि और ऋण मुक्ति के दोहर उद्देश्य को एक साथ प्राप्ति कर सकें। विकासशील देशों के विकास पर ही विकसित देशों का भविष्य निर्भर है।

भारत को विदेशी पूँजी के प्रयोग से कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु इस तर्क से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि सिर्फ विदेशी पूँजी की सहायता से स्थापित उद्योग देश की ऐतिहासिक गरीबी मिटाने मे सफल होंगे। मुद्रा कोष द्वारा दिये गये ऋण से भारतीय अर्थव्यवस्था को राहत अवश्य मिली, किन्तु

ऐसे ऋण कोई असीमित वरदान नहीं है। यदि इनसे देश मे उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पायी तो उपलब्ध ऋण का ब्याज चुकाना भी मुश्किल हो सकता है। यह स्पष्ट है कि पिछले दशको मे विदेशी पूँजी की प्रकृति मे परिवर्तन के बावजूद उसका खतरनाक पक्ष समाप्त नहीं हुआ है। कई देशो में राजनीतिक अस्थिरता और वास्तविक अर्थ मे आर्थिक प्रगति के पीछे विदेशी पूँजी का हॉथ होने की पुष्टि समय-समय पर होती रही है। यह भी प्रमाणित तथ्य है कि प्रगति की धारा की निरन्तरता विदेशी पूँजी से नहीं बल्कि देश के लोगों के अपने उद्योग और उद्यम से प्राप्त होती है। विदेशी पूँजी को किसी हालत मे खुली छूट नहीं दी जा सकती। विदेशी सहायता के सन्दर्भ मे यह बात सदैव याद रखी जानी चाहिए कि "यह देश की अर्थव्यवस्था मे विकास को प्रारम्भ तो कर सकती है, किन्तु दीर्घकाल में विकास को नहीं बनाये रख सकती। उसके लिए तो हमे अपने घरेलू साधनो को ही जुटाना होगा"।

विदेशी कम्पनियों के आगमन के परिणामस्वरूप हमारे देश को एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी मिल सकता है कि जो क्षेत्र अभी तक अल्पविकसित रहे हैं, उन क्षेत्रो मे इन कम्पनियो को व्यवस्थित करके विकास की गति प्रदान की जा सकती है। हमारे देश मे आने वाली कम्पनियो को स्थापित करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये कम्पनियॉ कहीं उन विकसित क्षेत्रो मे स्थापित नहीं हो रही है। जहॉ औद्योगिक विकास पहले हो चुका है। इस बात को ध्यान मे रखकर प्रवेश की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए। जिससे देश मे स्थापित औद्योगिक असतुलन की स्थिति को दूर किया जा सके।

विदेशी कम्पनियों के आगमन के फलस्वरूप भारत को प्रभावित करने वाले नकारात्मक सुझाव -

हमारे देश में इस समय 515 दवाए ऐसी हैं जो बाजार में लगभग 8000 विभिन्न नामों से बिक रही हैं। इन दवाओं पर दुनिया के तमाम देशों में पाबन्दी लगायी जा चुकी है तथा इनके निर्माण और बिक्री को घातक अपराध घोषित किया जा चुका है। डाक्टरों और वैज्ञानिकों का कहना है कि ये दवाए प्राणघातक और आदमी के रक्त को प्रदूषित कर कैंसर, लकवा, अधापन, विकलागता जैसी भयकर बीमारियो को जन्म दे रही हैं तथा शरीर की रोग से लडने की क्षमता खत्म कर देती है। यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि दुनिया के अन्य तमाम देशों में 'जहर' घोषित की जाने वाली कुछ दवाऍ हिन्दुस्तान मे खुली बिक्री की इजाजत पा चुकी है। यहाँ कुछ ऐसी दवाओं के नाम दिये जा रहे हैं जो दूसरे तमाम देशो में`प्रतिबन्धित हैं, लेकिन हमारे यहाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बनायी और बेंची

जाती है। उन दवाओ मे से मुख्य रूप से मे एण्ड बेकर, सीबा बारोजवेलकम पार्क डेविस ज्योफ्रीमैनर्स, फाइजर, हेकस्ट, सैण्डोज ग्लैस्को, बूट्स कम्पनी, ईस्ट इडिया कम्पनी इत्यादि। इन दवाओ को बेचकर ये कम्पनियॉ देश का अरबो रूपया प्रतिवर्ष बाहर भेज रही है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ अब तय करने लगी हैं कि हम क्या खाये, किस तरह खाये और कितना खाये। बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ जो अपनी सडी गली खाद्य सामग्री से पूरे पश्चिमी समाज के स्वास्थ्य पर कहर ढा चुकी है, अब हमारे यहॉ अपना सारा ताम झाम लेकर मौजूद हैं। मैगी की चटनी और नूडल्स, पेप्सी और कोका के ठण्डे पेय, कैडबरी की आइसक्रीम नेस्ले की टाफी और चाकलेट, पेप्सी की चिप्स, पापड और भुजिया, कैलोग का कार्न फ्लैक्स, ब्रुक बाड की चाय, लिप्टन और आई टी सी का खाद्य तेल और घी। इन्हे खाकर हमारी जेंबे तो लुटेगी ही, हम अपने स्वास्थ्य के लिये नये सिरे से दवा बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के चगुल मे फॅस जायेंगे। यानी भारतीय अर्थव्यवस्था पर चौतरफा हमला हो रहा है।

इस बात को कहने और स्वीकार करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होना चाहिए कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियो ने तीसरी दुनिया मे अपने व्यापारिक लाभ के लिए झूॅठ का सहारा लिया है। लाभ के झूॅठे ऑकडे पेश करके उसे कम बताती हैं, कर चोरी करती हैं। ये कम्पनियॉ झूठे विज्ञापन भी करवाती है ये सितारे या खिलाडी को पैसा देकर उनसे झूॅठ बोलने को कहते हैं। भारत जैसी तीसरी दुनिया के देशो में ही इनका भडार हैं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तमाम शोध एजेन्सियॉ पहले से इन देशो मे कार्य कर रही हैं और चोरी छिपे हजारों वनस्पति प्रजातियॉ अपनी प्रयोगशालाओं में ले जा चुकी है और अब यदि नई पेटेन्ट प्रणाली के तहत ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ उन लाखो देशी नुस्खों और जडी बूटियो के औषधीय गुणों को अपने नाम पेटेन्ट करा लेती हैं तो हमारा क्या होगा? यह प्रश्न अति गम्भीर है। देश में हजारों सालों से सचित ज्ञान और अनुभव की पूॅजी को बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ लूट ले जाएॅगी और फिर हमको ही मुहमागी कीमत पर उपलब्ध करायेंगी।

यदि विदेशी कम्पनियों के आगमन के परिणामस्वरूप हमारे मौलिक या मूलभूत उद्योगों को प्रतिस्पर्धा करनी होगी तो हमें यह सदैव ध्यान रखना होगा कि हमारे मौलिक या मूलभूत उद्योग तकनीकी रूप से कम विकसित होने के कारण कहीं प्रतिस्पर्धा से बाहर तो नहीं हो रहे हैं यदि ऐसा होता है तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह हमारे लिए सर्वथा अनुचित होगा और हमें

विदेशी कम्पनियो के आगमन से पूर्व एक सुनियोजित रणनीति के तहत् अपने मौलिक उद्योगो को सुरक्षा कवच प्रदान करना होगा, जिससे भविष्य मे विदेशी कम्पनियो के आगमन के दुष्परिणामो से सुरक्षा प्रदान की जा सके।

हमे यह भी सदैव ध्यान रखना होगा कि विदेशो से आने वाले बहुराष्ट्रीय निगमो की कम्पनियॉ हमारे मूलभूत आवश्यकता की वस्तुओ के उत्पादन क्षेत्र मे आगमन तो नहीं है, यदि ऐसा होता है तो यह भी हमारे लिए अशुभ लक्षण होगा और इससे हमें सतर्क रहना होगा, क्योकि इनके द्वारा उत्पादित वस्तु हमारे लिए उपभोग की वस्तु होगी और ये भारतीय बाजार मे आसानी से छा जायेंगे जिसके परिणामस्वरूप पूॅजी बहिर्गमन का मार्ग प्रशस्त होगा और हमारे यहॉ की पूॅजी विदेशों मे सग्रहीत होगी। जिससे हम आर्थिक रूप से कमजोर होंगे तथा हमारे यहॉ भुगतान असतुलन की स्थिति पैदा हो सकती है। हमे सदैव ऐसी स्थिति से अपने को सुरक्षित रखने के लिए एक रणनीति के तहत् व्यवस्थित होना होगा, जिससे इन क्षेत्रो से इन्हे दूर रखा जाय या इनको बाजार प्रतिस्पर्धा मे स्वदेशी उद्योगो के द्वारा प्रतिस्पर्धा से इनको बाहर करने की क्षमता विकसित करनी होगी।

यदि हम विदेशी कम्पनियो के आगमन के फलस्वरूप प्राकृतिक ससाधनों का तीव्रतम दोहन करते रहे तो इसके अशुभ परिणाम भी सामने आ सकते हैं, क्योंकि हमारे खनिज भण्डार एक सीमित क्षमता के अन्तर्गत प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है, परन्तु निरन्तर दोहन होते रहने से इनकी समाप्ति का मार्ग प्रशस्त होगा और अपने प्राकृतिक ससाधनों से हॉथ धो सकते हैं जो सदा निरन्तर चलती रहने वाली अर्थव्यवस्था के लिए अनुचित होगा।

इसका एक नकारात्मक पहलू यह भी है कि प्रकृति अपने साथ छेडछाड़ अधिक मात्रा मे बर्दाश्त नहीं करती। प्राकृतिक प्रकोप भयानक रूप मे सामने आ सकता है, जो हमारी अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इसलिए हमें सदैव यह भी ध्यान रखना होगा कि हम अपने प्राकृतिक ससाधनो का उचित मात्रा में प्रयोग करें, अनुचित मात्रा में दोहन न करें।

इतिहास का हम यदि अनुसरण करें, तो विदेशी कम्पनियों के आगमन से हमें सतर्क रहना होगा। इनके आगमन के परिणामस्वरूप पूॅजी बहिर्गमन की सभावनाए प्रबल है। प्राय यह देखा गया है कि इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपयोग देश में ही होने लगता है और ये कम्पनियाँ अत्यधिक मात्रा में लाभ प्राप्त कर अपने देश को भेजने लगती है, जिससे स्वदेशी पूँजी विदेशी हाँथों में एकत्र हो

जाती है और भारत को आर्थिक गुलामी की तरफ ले जाने की सभावना व्यक्त करता है। यदि ऐसा सम्भव हुआ तो देश के लिए यह सदैव हानिकारक सिद्ध होगा इसलिए विदेशी कम्पनियो के आगमन के परिणामस्वरूप हमे पूर्व मे एक कार्य योजना तैयार रखनी होगी, जो ऐसी विषम परिस्थितियो से हमें छूट रख सके। इसी के साथ मुझे यह भी ध्यान देना होगा कि इन विदेशी कम्पनियो द्वारा किसी प्रकार का कहीं राजनैतिक हस्तक्षेप तो नहीं किया जा रहा है। कभी-कभी ये विदेशी कम्पनियॉ स्वदेशी राजनीति मे हिस्सा लेने लगती है और किसी ऐसी राजनीतिक दल का समर्थन कर उसे सत्ता तक पहुॅचाने का काम करती है , जो उनके राजनैतिक रूप से हितकर होती है और उनको विभिन्न प्रकार की छूट प्रदान करने के कार्यों मे लिप्त होती है, जिसके परिणाम स्वरूप उन कम्पनियो के द्वारा प्रशासनिक हस्तक्षेप बढते हुए सत्ता के गलियारो से होते हुए हमारे नागरिको पर अप्रत्यक्षत शासन करना प्रारम्भ होना सुनिश्चित होता है। इसलिए मुझे यह ध्यान रखना होगा कि इन कम्पनियो के क्रियाकलापो के द्वारा किसी प्रकार का राजनैतिक एव प्रशासनिक हस्तक्षेप कभी सभव न हो सके नहीं तो हमे अधिक मात्रा मे कष्ट उठाना पड सकता है।

विदेशी कम्पनियो के द्वारा उनके साथ-साथ वहॉ कि सामाजिक रीति-रिवाज भी आयातित होता है। जो प्रत्येक देश के लिए वहॉ कि भौगोलिक स्थिति पर आधारित होता है और प्रत्येक देश के लिए लाभकर सिद्ध नहीं हो सकता, परन्तु लोग अधी दौड मे बिना उसकी वास्तविकता जाने उसे अपनाने लगते है। जैसे उदाहरण के रूप मे यदि देखे तो हमें मुसलमानों के इतिहास पर नजर डालना पडता है और प्रथम बार मुस्लिम आक्रमणकारियो के साथ आने वाले रीति-रिवाजो पर ध्यान देना होता है। अरब देशो के लिए एक दातून कई दिन करते रहने की मजबूरिया होगी, क्योकि वहॉ दातून की उपलब्धता आसानी से सभव नहीं है, परन्तु वहॉ से आने वाले मुसलमानो ने यहॉ भी कई दिन तक एक दातून करते रहने की परम्परा डाली, जबकि यहॉ दातून की प्रचुरता विद्यमान है। हमें सदैव इन प्रकार की रूढियो से बचना होगा। विदेशो के उन्हीं रीति-रिवाजों को अपनाना होगा जो यहॉ कि भौगोलिक वातावरण के लिए सभव होगा। इसी क्रम में हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक देश की पहनावा-ओढावा वहॉ के भौगोलिक वातावरण पर निर्भर करता है। जहॉ पर उनकी विद्यमानता है। प्रत्येक देश के रीति-रिवाज, रहन-सहन, पहनावा-ओढावा वहॉ की भौगोलिक वातावरण द्वारा सुनिश्चित हुआ है इसलिए वहॉ के (विदेशी) रीति-रिवाजों को अपनाने के फलस्वरूप कहीं ये हमारे यहाँ नकारात्मक प्रभाव तो नहीं छोड रहे हैं।उदाहरणस्वरूप जैसे- कम कपड़े पहनना यूरोपीय देशों के

निवासियो के लिए भौगोलिक वातावरण की आवश्यकता हो सकती है परन्तु हमारे यहॉ यह नैतिक पतन की ओर ले जा सकता है। इसलिए हमें यह सदैव ध्यान देना होगा कि कहीं विदेशी कम्पनियों के माध्यम से आयात होने वाली सस्कृति के द्वारा हमारे यहॉ का सास्कृतिक एव सामाजिक ढॉचा तो प्रभावित नहीं हो रहा है। यदि ऐसा सभव हुआ तो हमे विशेष रूप से कई प्रकार की दिक्कते हो सकती है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं कि विदेशी कम्पनियो के आगमन के परिणाम स्वरूप होने वाली हानियों की सभावनाओं का पता लगाकर उनके निदान की सुनियोजित ढग से व्यवस्था की जाये तो देश का विकास सम्भव होगा और हमारे यहॉ अल्पविकसित या अक्षुण्य रहे क्षेत्रो को औद्योगिक गति प्रदान कर विकसित करने में सहायता उपलब्ध हो सकती है।

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

लेखक	पुस्तक	प्रकाशन एव सन्
मामोरिया, डॉ० चतुर्भुज एव जैन, डॉ० एस सी	भारतीय अर्थशास्त्र	साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1997
त्रिपाठी, डॉ० बद्री विशाल	भारतीय अर्थव्यवस्था	किताब महल, इलाहाबाद 1997
दत्त, रूद्र एव सुन्दरम के पी एम	भारतीय अर्थव्यवस्था	एस चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली 1992
मिश्र, जगदीश नारायण	भारतीय अर्थव्यवस्था	किताब महल, इलाहाबाद 1996
ग्रोवर, बी एल यशपाल	आधुनिक भारत का इतिहास	एस चन्द एण्ड कम्पनी लि० नई दिल्ली, 1994
शर्मा, एल पी	मध्यकालीन भारत	लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
रामचन्द्रम, के एस	भारतीय अर्थव्यवस्था	वेस्टविल पब्लिशिग हाउस नई दिल्ली, 1995
राय, प्रो एल एम	महान राष्ट्रों का आर्थिक विकास	नव विकास प्रकाशन, पटना-6, 1990
राय,प्रो एल एम	भारत का आर्थिक विकास	नव विकास प्रकाशन, पटना-6,1990
राय, प्रो एल एम	आर्थिक विकास के सिद्धान्त एव नियोजन	नव विकास प्राकाशन, पटना-6,1990
दत्त, रजनी पाम	आज का भारत	दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, 1977
अग्रवाल, ए एन	भारतीय अर्थव्यवस्था	विश्वा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
पाण्डेय, डॉ० जय नारायण	सिन्धु सभ्यता	प्रामानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद 1996
महाजन, विद्याधर	मध्य, कालीन भारत	एस चन्द एण्ड कम्पनी लि०, 1993
दत्त, रमेश चन्द	भारत का आर्थिक इतिहास भाग-1	प्रकाशन विभाग, 1981
सिघई, डॉ० जी.सी.	भारत की आर्थिक समस्याए	साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1996
एलहस, देवकीनन्दन, एलहस, वीना एवं वैश्य, एम.पी.	साख्यिकी के सिद्धान्त	किताब महल, इलाहाबाद, 1997-98

शुक्ल एव सहाय, डॉ० एस एम एव डॉ० शिवपूजन	साख्यिकी के सिद्धान्त	साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा 1998
MISHRA, S K & PURI, V K	INDIAN ECONOMY	Hımalaya Publıshıng house, 1997
SHARMA, DEVENDRA	GATT TO WTO	Seeds of Despaır , Konark Publıshers, Pvt Ltd , 1995
SHARMA,A D & GEETIKA	GATT - WTO	The New World , Economıc Order, Kıtab Mahal, 1995

REPORT AND SURVEY :

Bharat, Govt of Indıa, 1996

Economıc Survey, 1994-95, 1997-98

Survey of Indıan Industry, The Hındu, 1997

Survey of IndıanAgrıculture, Hındu, 1997

World Development Report, The World Bank, 1991,1992,1993

पत्र - पत्रिकाएं :

1 कुरुक्षेत्र

2 योजना

3 जनसत्ता

4 दैनिक जागरण

5. हिन्दुस्तान

6 आज

7 अमर उजाला

8. *Business Indiia*

9 *Economic Times*

10. *Financial Express*

11. *Hindustan Times*

12 *Weekly*

कुल विदेशी सहायता

(करोड रूपये मे)

वर्ष	प्राधिकृत सहायता ऋण अनुदान ऋण अनुदान		जोड (2+3)	उपयोग मे लायी गयी सहायता		जोड (5+6)
1	2	3	4	5	6	7
1990-91	7601 3	522 1	8123 4	6170 0	534 3	6704 3
1991-92	11805 8	901 8	12707 6	10695 9	919 1	11615 0
1992-93	13082 1	1011 7	14093 8	10102 2	879 6	10981 8
1993-94	11618 8	2415 1	14033 9	10895 4	885 6	11781 0
1994-95	12384 3	1045 8	13460 1	9964 5	916 0	10880 5
1995-96	10833 2	1330 0	12163 2	9958 6	1063 6	11022 2
1996-97	14208 8	2932 6	17141 4	10892 9	1085 6	11978.5

स्रोत -*सहायता लेखा और लेखा परीक्षा प्रभाग,अर्थिक कार्य विभाग, वित्त मत्रालय 1996-97 पृष्ठ सख्या -97*

विदेशी मुद्रा भण्डार

प्रारक्षित भण्डार

माह	सोना टन (करोड रूपये में)		एस डी आर (मिलियन करोड रूपये)		विदेशी मुद्रा (करोड रूपये में)	जोड (3+5+6) (करोड रूपये में)
1	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*
अप्रैल	397 5	14190 1	19 2	94 0	81075.5	95359 6
मई	397 5	14152 9	2 0	10 0	86377.5	100540 4
जून	397 5	14054 3	2 4	11 8	90983.2	105049.3
जुलाई	397 5	13320 3	27 4	132 8	92882 4	106335 5
अगस्त	397 5	13554 8	50 8	252 0	95935.2	109742 0
सितम्बर	397 5	13414 9	22 0	108 4	92981 8	106505 1
अक्टूबर	397 5	13637 1	22 0	110 6	95499.2	109246 9
नवम्बर	396 2	13552 7	1 0	5.3	94044.2	107602.2
दिसम्बर	396 2	13012 6	57 4	304 1	93978 0	107294 7
जनवरी	396.2	12904.5	46.5	243.3	95146 1	108293 9
फरवरी	396.2	13412.2	2 8	15 0	94530 9	107958 1
मार्च	396.2	13394 0	0.8	4 1	102506 7	115904 8

स्रोत्र *भारतीय रिजर्व बैंक 1997-98 पृष्ठ सख्या 69*

भारत मे विदेशी व्यापार की दिशा

(प्रतिशत मे)

क्र० स०		आयात		निर्यात	
		1994-95	1995-966	1994-95	1995-96
1	आर्थिक सहयोग विकास सगठन	51 4	58 7	58 7	55 7
	जिसमे (O E C D)				
	क यूरोपीय आर्थिक समुदाय	24 8	26 6	26 7	26 5
जिसमें -					
1	बेल्जियम	4 2	4 6	3 8	3 5
2	फ्रास	2 1	2 3	2 2	2 3
3	जर्मनी	7 6	8 6	6 6	6 2
4	यूनाइटेड किगडम	5 4	5 2	6 4	6 3
	ख सयुक्त राज्य अमरीका	10 1	10 5	19 1	17 4
	ग जापान	7 1	6 1	7 7	7 0
2	पेट्रोलियम निर्यातक देश सगठन	21 1	20 9	9 2	9 7
	जिसमे (O P E C)				
1	ईरान	1 9	1 6	0 6	0.5
2	इराक	0 0	0 0	0 0	0 0
3	कुवैत	5 2	5 4	0 5	0 4
4	सऊदी अरब	5 5	5 5	1 7	1 5
3	पूर्वी यूरोप	2 4	3 4	3 6	3 8
	जिसमें				
1	रसिया	1 8	2 3	3 1	3 3
4	विकासशील देश	20 2	18 3	23 9	25 7
1	अफ्रीका	2 9	2 3	2 5	3 4
2	एशिया	14 6	14 4	20 1	21.3
3	लेटिन अमरीका और कैरोबियन	2 7	1 6	1 3	1 1
5	अन्य	4 9	5 0	4 6	5 1
	योग	**100 0**	**100 0**	**100.0**	**100 0**

स्रोत *आर्थिक समीक्षा भारत सरकार, 1996- पृष्ठ सख्या-89*